सामर्थ्य
समृद्धि
और
शान्ति

लेखक—
रामचन्द्र वर्मा ।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ६४ वाँ ग्रन्थ।

सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति।

सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक लेखक

डॉ० ओरिसन स्वेट मार्डेनकी

Peace, Power and Plenty का

भावानुवाद।

अनुवादकर्त्ता,

श्रीयुक्त बाबू रामचन्द्र वर्मा।

प्रकाशक,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

आषाढ, वि० सं० १९८४।

जून, १९२७ ई०।

मूल्य डेढ़ रुपया।] [सजिल्दका दो रुपया।

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Hindi Granth
Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Girgaon, Bombay
& Printed by M. N. Kulkarni, Karnatak Press,
318 A, Thakurdwar, Bombay.

निवेदन ।

इस समय संसारके अधिकांश क्षेत्रोंमें नवीन विचार-लहरियाँ उठ रही हैं। बहुतसे पुराने विचारोंकी असारता सिद्ध होती जा रही है और उनका स्थान नवीन प्रकारके विचार ले रहे हैं। विशेषतः अमेरिका इस ओर और भी शीघ्रतासे अग्रसर हो रहा है।

हमारे यहाँ भारतवर्षमें तो बहुत दिनोंसे भाग्यवादी चले ही आ रहे हैं; पर इधर कुछ दिनोंसे पाश्चात्य देशोंकी परिस्थितियाँ भी कुछ ऐसी विलक्षण हो रही हैं कि वहाँ भी बहुतसे भाग्यवादी उत्पन्न होने लग गए हैं। जबसे पाश्चात्य देशोंमें आधिभौतिक उन्नति आरम्भ हुई है, जबसे वहाँके लोगोंमें और सब प्रकारकी उपासनाओं तथा उन्नतियोंका स्थान केवल लक्ष्मीकी उपासना तथा आर्थिक उन्नतिने ले लिया है और जबसे वहाँ स्वार्थ-साधनका सिक्का जमा है तबसे वहाँकी अधिकांश जनता दिनपर दिन परम दुखी होती जा रही है। इस समय पाश्चात्य देशोंमें घोर विषमता देखनेमें आती है। एक ओर तो थोड़ेसे ऐसे धन-कुबेर दिखाई देते हैं जिन्हें धन रखनेकी जगह नहीं मिलती और दूसरी ओर बहुत अधिक संख्या ऐसे दरिद्रोंकी दिखाई देती है जो दिन रात कठोर परिश्रम करनेपर भी भरपेट भोजन नहीं पा सकते। एक ओर तो ऐसे सम्पन्न हैं, जिनके पास सैकड़ों मकान बल्कि बड़े बड़े प्रासाद हैं और दूसरी ओर करोड़ों ऐसे निर्धन हैं जिनके पास घोर शीत और वर्षामें क्षण भर विश्राम करनेके लिए एक टूटी झोंपड़ी भी नहीं है। बहुतसे दरिद्रोंको थोड़ेसे धनवानोंका भीषण दासत्व करना पड़ता है और उनके संकेतपर तरह तरहके नाच नाचने पड़ते हैं। वहाँ सम्पत्ति तो अवश्य बहुत बढ़ गई है; परन्तु उस सम्पत्तिसे जनसाधारणको कोई विशेष लाभ नहीं हो रहा है। जो कुछ लाभ हो रहा है वह समाजके एक विशिष्ट वर्गका ही हो रहा है। समाजका शेष बहुत बड़ा अंश सदा बहुत ही दुखी और चिन्तित रहता है। किसी प्रकारकी उन्नति

करना तो दूर रहा अधिकांश लोग अपनी उदरपूर्त्तिका भी कोई ठीक ठीक मार्ग नहीं पाते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि उनका सारा उत्साह नष्ट हो जाय, यदि वे अपने जीवनसे उदासीन हो जायँ, अनेक प्रकारके पाप और दुराचार और यहाँ तक कि आत्महत्या भी करने लग जायँ तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

इसी प्रकारके लोगोंकी बहुत अधिक संख्या देखकर अमेरिकामें एक नवीन विचार-धारा चल पड़ी है। इस विचार-धाराके सिद्धान्त आदि ऐसे हैं जो निरुत्साह तथा निर्जीव दीन-दुखियोंमें नवीन उत्साह तथा नवीन जीवनका संचार करते हैं। इस शाखाके लोगोंका मूल सिद्धान्त यह है कि लोगोंको कभी निराश नहीं होना चाहिए, सदा उत्साहित रहना चाहिए, सबके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए और इस प्रकार समस्त संसार—समस्त मानव समाज—की उन्नति करनेमें सबको योग देना चाहिए। इस शाखाके लोग परमात्मापर पूरा पूरा विश्वास रखते हैं और आत्माको उसीका अंश समझते हैं। फलतः वे यह भी कहते हैं कि जो आत्मा स्वयं उस परमात्माका अंश है उसके लिए न तो कभी निराश या दुखी होनेकी आवश्यकता है और न उसके लिए संसारमें कोई कार्य असम्भव है। ये लोग यह भी कहते हैं कि जिस प्रकार मनुष्यको कभी दुखी होनेकी आवश्यकता नहीं है, उसी प्रकार उसे रोगी होनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है। परमात्माने हमारे शरीरमें ही ऐसे तत्त्व उत्पन्न कर दिए हैं, जो हमारे शरीरके रोग भी दूर करते रहते हैं और उसके टूटे-फूटे अंशोंकी मरम्मत भी करते रहते हैं। तात्पर्य यह कि मनुष्य शारीरिक, आर्थिक और नैतिक दृष्टिसे स्वयं पूर्ण है और यदि वह प्राकृतिक नियमोंका ठीक ठीक पालन करे, तो न तो वह रोगी हो सकता है, न दुखी हो सकता है और न दरिद्र रह सकता है। इस प्रकारके नवीन विचारोंका प्रचार करनेके लिए अमेरिकामें सैकड़ों पुस्तकें, पुस्तिकाएँ, मासिक पत्रिकाएँ और समाचारपत्र आदि प्रकाशित होने लग गए हैं। इस प्रकारके साहित्यका वहाँ बहुत शीघ्रतासे प्रचार हो रहा है और उसका बहुत कुछ शुभ फल भी देखनेमें आता है।

अमेरिकाके श्रीयुक्त डा० ओरिसन स्वेट मार्डेन इस शाखाके एक बहुत बड़े प्रवर्तक और लेखक हैं। आपने इन नवीन और उत्साहपूर्ण विचारोंसे भरी हुई पचीसों बहुत अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित की हैं जिनका अमेरिका तथा युरोपमें बहुत अधिक आदर है। भारतवर्षमें भी इन पुस्तकोंके कुछ विशिष्ट

और स्वतन्त्र संस्करण प्रकाशित हुए हैं और उनके अनुवाद भी अनेक देशी भाषाओंमें हो गए हैं। हिन्दीमें भी डा० मार्डेनकी कई अच्छी अच्छी पुस्तकोंके अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं जिनका हिन्दी पाठकोंने अच्छा आदर किया है*। उन्हीं डा० मार्डेनकी सुप्रसिद्ध पुस्तक Peace, Power and Plenty× के आधारपर हिन्दीमें यह पुस्तक प्रस्तुत करके पाठकोंकी सेवामें उपस्थित की जाती है। आशा है, हिन्दीके पाठक भी इन नवीन विचारोंसे यथेष्ट लाभ उठावेंगे और अपनी आत्मिक, नैतिक, ऐहिक और शारीरिक उन्नति करके सब प्रकारसे सुखी होंगे।

काशी ज्येष्ठ शुक्ला २, सं० १९८४	निवेदक रामचन्द्र वर्म्मा।

---

* स्वेट मार्डेनकी भाग्य-निर्माण, दिव्य जीवन, दरिद्रतासे बचनेके उपाय, और सफलताका मार्ग ये चार पुस्तकें हमारी जानी हुई हैं। इनके सिवाय संभव है, उनकी और भी कुछ पुस्तकें हिन्दीमें हो गई हों। —प्रकाशक।

× जिस समय यह पुस्तक प्रकाशित हुई, उस समय इसकी इतनी अधिक माँग हुई—लोगोंने इसे इतना अधिक पसन्द किया कि लगभग दो वर्ष तक अमेरिकामें हर महीने इसकी एक एक आवृत्ति प्रकाशित होती रही और फ्रान्स, इँग्लैण्ड, जर्मनीमें जो आवृत्तियाँ निकलीं, वे जुदा ही। —प्रकाशक।

विषय-सूची

सामर्थ्य समृद्धि और शान्ति ।

१–शरीर और मन ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलमुक्तं कलेवरम् ।

—भावप्रकाश ।

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।

—कालिदास ।

वास्तवमें मन और शरीरमें कुछ भी भेद नहीं है। जिस प्रकारके परमाणुओंसे मन बना है, ठीक उसी प्रकारके परमाणुओंसे यह शरीर भी बना है।

—विवेकानन्द ।

हमारा यह शरीर हमारे मनको ढकने और उसकी रक्षा करनेवाला ऊपरी कवच है। वास्तवमें मन और शरीरमें किसी प्रकारका भेद नहीं है। जिस प्रकार सीपके अन्दर रहनेवाले प्राणीका उसके ऊपरी प्रावरण, सीपके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, ठीक उसी प्रकार मनका भी शरीरके साथ सम्बन्ध होता है। इसी प्रकारका शंख जातीय एक और छोटा कीड़ा होता

है, जो इधर उधरसे कुछ सृष्ट पदार्थ लेकर अपनी पीठपर अपने रहनेके लिए घर बनाता है। वही घर मानो उसका शरीर होता है। उन दोनोंमें गुणका कोई भेद नहीं होता, केवल रूपका भेद होता है। ठीक यही बात हमारे मन और शरीरके सम्बन्धमें भी है। जब एक बार यह बात अच्छी तरह हमारी समझमें आ जाती है तब फिर हम यह भी अच्छी तरह समझने लगते हैं कि मनका शरीरपर और शरीरका मनपर क्या प्रभाव होता है। हमारे जड़ शरीरकी रचना करनेवाले तत्त्व, जड़ और दृश्य हैं और उन्हीं तत्त्वोंके सूक्ष्म और अदृश्य स्वरूपसे हमारे सूक्ष्म शरीरकी रचना हुई है। इसलिए इन दोनोंमें केवल इतना ही भेद है कि इनमेंसे एक दृश्य है और दूसरा अदृश्य। साधारण पानी जड़ और दृश्य स्थितिमें होता है और उसीसे बननेवाली भाप सूक्ष्म और अदृश्य होती है। पानी और भापमें जो अन्तर होता है वह गुणमूलक नहीं होता, केवल रूपमूलक होता है। ठीक यही बात हमारे शरीरकी भी है। हमारे जड़ शरीर और सूक्ष्म शरीरमें कोई ऐसा भेद नहीं है जो गुणमूलक हो। इसी लिए मनका सदा शरीरपर और शरीरका सदा मनपर प्रभाव हुआ करता है। जब शरीरमें ज्वर या इसी प्रकारका और कोई विकार उत्पन्न होता है, तब हमारा मन भी ज्वरित और उदास हो जाता है। और जब हमारे मनको किसी प्रकारका कष्ट होता है या उसमें कुछ उदासी आती है, तब हमारा शरीर दुःखी और उदास हो जाता है।

सर्कसमें काम करनेवाले खिलाड़ियोंका सदाका यह अनुभव है कि जब कोई खेल करनेके कारण उनको किसी प्रकारकी बहुत कड़ी पीड़ा होती है अथवा जब वे यों ही कभी बीमार पड़ते हैं, तब यदि उन्हें रंगभूमिमें आना पड़ता है और वहाँ आकर वे बैंड बजता हुआ सुनते

हैं, तो वे मानो उस समय अपनी सारी पीड़ा या रोग बिलकुल भूल जाते हैं, और अनेक प्रकारके ऐसे आश्चर्यजनक कौशल दिखलाने लगते हैं जिनमें शरीरको बहुत अधिक कष्ट होता है। उस समय उनके मनमेंसे इस बातका विचार बिलकुल निकल जाता है कि हमारे पैरमें बहुत दर्द है और अभी पाँच ही मिनट पहले हमसे अच्छी तरह चला भी नहीं जाता था। उस समय सिवा खेल दिखलानेके और किसी प्रकारका विचार उनके मनको छू भी नहीं जाता।

अपने कार्यके प्रति प्रेम, उच्चाकांक्षा और दर्शकोंकी उत्सुकता आदि बातोंके योगसे अच्छे नट भी अपने शारीरिक कष्टों और रोग आदिको तुरन्त भूल जाते हैं और अपना कार्य सदाकी अपेक्षा और भी अच्छी तरह कर दिखलाते हैं।

अच्छे अच्छे वक्ताओं, कथा कहनेवाले पौराणिकों और गवैयों आदिका भी ऐसा ही अनुभव है।

चाहे हमारी इच्छा हो, और चाहे न हो पर उग्रतर और अपरिहार्य आवश्यकतामें ही इतनी अधिक शक्ति है कि उसके सामने सामान्य शारीरिक वेदनाएँ और कष्ट तत्काल दूर हो जाते हैं। कभी कभी कोई ऐसा विकट प्रसंग आ जाता है कि हम समझने लगते हैं कि इससे पार पाना असम्भव है। इतनेमें वह विकट अवसर आ भी पहुँचता है। उस समय जब हमें प्रत्यक्ष रूपसे उस विकट अवसरका सामना करना पड़ता है, तब हम अपने हृदयकी उस आवश्यकताकी अमोघ और चक्रवर्तिनी शक्तिका अनुभव करने लगते हैं। हम लोगोंमेंसे प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें एक अदृश्य और सुप्तप्राय शक्ति रहती है। वही शक्ति ऐसे अवसरोंपर खड़बड़ाकर जाग उठती है, झपटकर हमारी सहायता करनेके लिए आगे बढ़ती है, और उसीके बलसे हम चटपट

कोई ऐसा दुष्कर कार्य भी कर दिखलाते हैं, जो हमें पहले बिलकुल असम्भव जान पड़ता था ।

यदि हम ध्यानपूर्वक देखेंगे तो हमें जान पड़ेगा कि सर्कसमें काम करनेवाले खिलाड़ी, नट, उपदेशक तथा इसी प्रकारके और ऐसे लोगोंके लिए जो सदा अपना काम समान भावसे और निरन्तर किया करते हैं, सहसा कभी यह कहनेका अवसर ही नहीं आता कि आज बिलकुल लाचार होनेके कारण हम अपने कामपर नहीं आ सकते । नौकरीपेशा लोग पहले चाहे छुट्टियाँ आदिके लिए कितने ही उत्सुक क्यों न रहते हों, पर, जब बड़ी बड़ी तातीलें या छुट्टियाँ उनके सामने आ जाती हैं, तब उनके कारण उनकी तबीयत बिलकुल उकता जाती है, और उनके मनमें एक तरहकी घबराहट पैदा होने लगती है । मतलब यह कि काम करनेवाला आदमी जल्दी खाली रह ही नहीं सकता । खाली होनेकी दशामें उसे एक प्रकारका कष्ट होता है । पर जब वह काममें लगा रहता है, तब उसे बीमार पड़ने या उकताने घबरानेका मौका ही नहीं मिलता । घबराहट तो सिर्फ छुट्टीके दिनोंमें खाली रहनेपर ही होती है ।

यदि इस प्रकार बराबर काम करनेवाले यह कहें कि हम तो कभी बीमार पड़ते ही नहीं, क्योंकि बीमार पड़ना हमारे भाग्यमें ही नहीं लिखा है, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं हो सकती । उनके लिए परिस्थिति ठीक ऐसी ही होती है, इसके विपरीत नहीं । इस प्रकारके लोगोंके जीवनमें अनेक ऐसे अवसर आते हैं कि यदि वैसे अवसर किसी ऐसे आदमीके जीवनमें आवें जो निकम्मा हो और कोई काम धन्धा न करता हो, तो वह मजेमें अपने आपको बीमार बतलाने लगेगा और चुपचाप चारपाईपर पड़ जायगा । परन्तु, जो लोग कामकाजी होते हैं, उनके

मनमें इसी प्रभावशाली आवश्यकताकी महाशक्तिके विलक्षण बलके कारण, इस प्रकारका क्षुद्र विकार, क्षणभर भी नहीं ठहर सकता।

अमेरिकाके सान् फ्रान्सिसको नगरमें एक बार बहुत बड़ा भूकम्प आया था, जिसके कारण वहाँ बहुत कुछ हानि और नाश हुआ था। उस समय वहाँ एक ऐसा आदमी था जो पन्द्रह वर्षोंसे बीमार पड़ा हुआ था। पर उस भूकम्पके भयानक धक्केका उस बीमारपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह चटपट उठकर चलने फिरने लगा। उस समय उक्त नगरमें इसी प्रकारकी और भी अनेक विलक्षण घटनाएँ हुई थीं। उस समय वहाँ और भी बहुतसी ऐसी स्त्रियाँ और पुरुष थे, जो बरसोंसे बीमार पड़े हुए थे और चल फिर नहीं सकते थे। बल्कि बहुत से लोग तो ऐसे थे जो बहुत कुछ उद्योग करने पर भी जरासा उठकर खड़े भी नहीं हो सकते थे। जब अचानक वह भयानक भूकम्प आया तब मानो उन लोगोंमें किसी अपूर्व और अद्भुत शक्तिका संचार हो गया। वे लोग चटपट उठ खड़े हुए और अपने अपने बाल बच्चोंको गोदमें उठा-कर घरसे बाहर निकल पड़े। केवल यही नहीं बल्कि उन लोगोंने अपने घरका सब सामान उठाकर सुरक्षित स्थानोंपर पहुँचाया और इसी प्रकारके और भी अनेक आश्चर्यजनक कार्य किये। इसी प्रकारके और भी अनेक उदाहरण प्रसिद्ध हैं। एक उपन्यासमें यह भी कहा गया है कि एक बार भयानक आग लगनेके कारण एक गूँगी स्त्री सहसा अच्छी तरह बोलने लग गई थी। यदि ढूँढ़े जायँ तो इसी प्रकारके और भी अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। इस प्रकारके बहुत से उदाहरण लोगोंको मालूम भी होंगे।

जब तक सामने कोई बहुत बड़ा संकट आकर उपस्थित नहीं होता, तब तक किसीको अपनी सहनशीलता और सामर्थ्यका सच्चा और ठीक

अन्दाज नहीं लग सकता। अपने पति और सन्तानको प्राणसे भी बढ़-कर प्रिय समझनेवाली स्त्रियाँ, जल्दी अपने मनमें उनकी मृत्युकी कल्पना भी नहीं कर सकतीं। इस प्रकारकी कल्पना भी उनके लिए असह्य वेदना उत्पन्न करती है। वे समझती हैं कि यदि ईश्वर न करे कभी ऐसा विकट प्रसंग आ ही जाय, तो हम क्षण भर भी न जी सकेंगी। परन्तु फिर भी इस प्रकारकी बहुतेरी स्त्रियाँ अपने पति या पुत्र आदिकी मृत्युके उपरान्त बरसों तक जीतीं और अपना समय बिताती हुई देखी जाती हैं। उनमेंसे कुछ स्त्रियाँ तो ऐसी भी होती हैं, जो अपने समस्त कुलका, कुलकी प्रतिष्ठाका और सर्वस्वका नाश हो जाने पर भी बहुत अच्छी तरह रहती हुई देखी जाती हैं। अनेक प्रकारके रोगोंमें रोगियोंकी अवस्था इतनी भयंकर हो जाती है कि यदि कोई उन्हें एक बार दूरसे या आड़मेंसे जरा सा भी देख ले, तो उसकी अव-स्थाका वह भीषण और हृदय कँपानेवाला चित्र बहुत समय तक आँखोंके सामने बार बार आकर चित्तको उद्विग्न और उदास किए रहता है। परन्तु, जब वैसा ही कोई प्रसंग स्वयं अपने ऊपर आ पड़ता है, तब आदमी उसे जैसे तैसे चुपचाप सहन करता ही है। इतनी सब बातें कहनेका तात्पर्य केवल यही है कि प्रत्येक मनुष्यमें इतनी अधिक सामर्थ्य होती है कि चाहे कितना ही विकट प्रसंग क्यों न आ पड़े, वह उसे निबाह ले जाता है; और यह बात प्रायः चारों ओर देखनेमें भी आती है।

स्त्रियाँ अपने नामके साथ अबला, भीरु तथा इसी प्रकारके और भी अनेक विशेषण लगाया करती हैं। परन्तु, अब तक बहुत सी स्त्रियाँ हो गई हैं जो अपने पतिकी मृत्यु होने पर, शान्त चित्तसे उसकी चितामें प्रवेश कर गई हैं और अब भी, इस प्रकारकी बहुत सी स्त्रियाँ

देखनेमें आती हैं। यह तो सभी लोग जानते हैं कि बालिकाओंका हृदय कितना भीरु और कोमल होता है। कुछ दिनोंकी बात है कि दक्षिणके बोरगाँव नामक स्थानमें एक बार रेल लड़ गई थी। उस समय एक ब्राह्मण-बालिका विलक्षण धैर्यके साथ, विपद्ग्रस्तों और पीड़ितोंकी सहायता करती हुई देखी गई थी। समाचारपत्रोंमें प्रायः इस प्रकारके समाचार निकला करते हैं कि अमुक स्त्रीने एक दुष्ट आक्रमणकारीकी बड़ी वीरतासे हत्या की अथवा अमुक स्त्रीने डाकुओंका इस प्रकार सामना किया अथवा इस प्रकार चोरोंको पकड़ा। इसमें सन्देह नहीं कि, जब कोई भारी संकट अनिवार्य रूपसे आ पड़ता है, तब उसे सहन करनेकी अनिर्वचनीय शक्ति और धैर्य सभी लोगोंमें होता है अथवा आपसे आप कहींसे आ जाता है। भावी संकट कभी उतना अधिक भयंकर नहीं हो सकता। हाँ, उस संकटके सम्बन्धमें पहलेसे होनेवाली चिन्ता अवश्य बहुत भयानक रूप धारण कर लेती है। लोग समझने लगते हैं कि जब यह संकट आ पड़ेगा, तब न जाने क्या होगा, कैसे होगा, आदि आदि। वास्तवमें यही अनिश्चय हृदयवेधक, स्वास्थ्यका नाश करनेवाला और दुःखदायी होता है। अर्थात् संकटका वास्तविक भय और दुःख स्वयं संकटमें नहीं होता, बल्कि उसके सम्बन्धमें होनेवाली कल्पना और उसके अनिश्चयमें ही होता है।

विकटसे विकट प्रसंगों और संकटोंको भी सहन करानेवाली यह अज्ञात और अनिर्वचनीय शक्ति हमारे दैवी स्वरूपका ही एक लक्षण है, और वह मनोमय ही है।

आजकलकी सभ्यतामें चाहे और कितने ही अधिक गुण या दोष क्यों न हों, पर इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्यके हृदयमेंसे, अपनी उस नैसर्गिक शक्ति परसे श्रद्धा जल्दी जल्दी नष्ट होती जा रही है, जिसके

द्वारा वह रोगों या विपत्तियों आदिका धैर्यपूर्वक सामना करनेमें समर्थ होता है। आजकल बड़े बड़े शहरोंमें रहनेवाले और ऊँचे दरजेके अमीर लोगोंमें बीमार पड़ने अथवा बने रहनेका मानो फेशन सा चल पड़ा है। ऐसे लोग पहले तो यह अनुभव करने लगते हैं कि हमारी तबीयत कुछ ठीक नहीं मालूम होती। वे सन्देह करने लगते हैं कि कहीं हम बीमार तो नहीं हैं अथवा शीघ्र ही बीमार तो न पड़ जायँगे और यही सोचते सोचते तथा इसी प्रकार डरते डरते अन्तमें वे बीमार ही पड़ जाते हैं। बाजारोंमें डाक्टरों, वैद्यों, हकीमों और दवा-फरोशोंकी दूकानोंकी तो कोई कमी है ही नहीं। जहाँ किसीको अपनी तबीयत खराब होनेका जरा भी सन्देह होता है, वहाँ चट किसी डाक्टरके पास जाकर एक डोज़ लेनेकी इच्छा और प्रवृत्ति बराबर दिनपर दिन बढ़ती ही जा रही है और साथ ही साथ इसके लिए उपयुक्त सुभीते भी बढ़ते जा रहे हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि रोग-निवारणके कार्यमें हम लोग बराबर परावलम्बी होते जा रहे हैं। बस इसी लिए हमें पहलेसे ही ऐसे संयमसे रहनेकी आदत नहीं रहती कि रोग उत्पन्न ही न हो सके, अथवा उत्पन्न होता हो, तो बीचमें ही रुक जाय। और, जब उत्पन्न हो जाता है, तब उस रोगका सामना करने और उसे सहनेकी शक्ति हममें नहीं रह जाती। रोगको रोकने और उसे दूर करनेकी शक्तिका दिनपर दिन ह्रास होता जाता है।

इस समय भी बहुत से ऐसे वृद्ध मिलेंगे, जिन्हें यह बात स्मरण होगी कि किसी समय बहुत से गाँवोंमें कोई एकाध गाँव ऐसा होता था, जिसमें कोई हकीम वैद्य या और कोई चिकित्सक रहता था। उन दिनों कुछ संक्रामक रोग आजकलकी अपेक्षा भले ही अधिक प्रमाणमें और विध्वंसक रूपमें हुआ करते हों, परन्तु, और रोगोंका लोगोंपर बहुत

ही कम प्रमाणमें आक्रमण होता था, और उनकी चिकित्सा भी प्रायः बहुत कुछ सीधी सादी और नैसर्गिक हुआ करती थी।

आजकल भी बहुत सी ऐसी जातियाँ हैं, जो जंगली समझी जाती हैं। यदि, इन जातियोंकी ओर ध्यान दिया जाय, तो उनमें भी यही बात देखनेमें आवेगी। ऐसी जातियोंका आयुर्वेदिक अथवा चिकित्सा-शास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान बहुत ही अल्प हुआ करता है। उन्नतिके शिखरपर पहुँची हुई, आजकलकी अनेक पाश्चात्य जातियोंका चिकित्सा-शास्त्रसम्बन्धी ज्ञान यद्यपि बहुत अधिक बढ़ा चढ़ा है, तथापि वह ज्ञान अपने अनुयायियोंकी चिकित्सासम्बन्धी आवश्यकताओंकी पूर्तिमें जितना अधिक समर्थ है, उतना ही अधिक जंगली लोगोंका चिकित्साशास्त्रसम्बन्धी ज्ञान भी उनकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए समर्थ है। यही नहीं बल्कि यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय, तो उनका ज्ञान कुछ बातोंमें अपेक्षाकृत और भी अधिक समर्थ तथा श्रेष्ठ सिद्ध होगा। जंगली लोगोंको प्रायः साँप आदि जहरीले जानवर या इसी प्रकारके और दूसरे जंगली जानवर काटते हैं और उनके रोगोंमेंसे इसी प्रकारके रोग मुख्य हैं। परन्तु, ऐसे रोगोंपर उनकी ओषधियाँ केवल शाब्दिक अतिशयोक्तिमें ही नहीं बल्कि गुणकी दृष्टिसे भी सचमुच रामबाण हुआ करती हैं। और प्रकारके रोग या तो उन्हें जल्दी होते ही नहीं और यदि होते भी हैं, तो उनका शमन बहुधा स्वयं प्रकृतिके ही द्वारा हो जाया करता है।

पशु पक्षियोंमें भी सबसे बड़ी चिकित्सा करनेवाली प्रकृति ही देखी जाती है।

डाक्टरों और वैद्यों आदिके पास बार बार दौड़कर जानेकी आदत हम लोगोंमें आजकल बहुत तेजीके साथ बढ़ रही है। आजकलके युवकों और बालकोंमें शारीरिक सामर्थ्यका जो शोचनीय अभाव देखा जाता है,

उसका यह एक मुख्य कारण है। जहाँ किसी बालककी तबीयत जरा भी खराब हुई कि प्रायः माताएँ और उनके साथ साथ बहुत से पुरुष भी दवाओंकी भरमार करना ही सबसे अधिक आवश्यक समझते हैं। बहुत से लोग तो ऐसे होते हैं जो केवल दूसरोंकी देखा देखी ही अपने बालकोंके लिए भी किसी शानदार नाम और चमकीले भड़कीले लेबलवाली शीशी शुरू करना आवश्यक समझने लगते हैं। इसके लिए वे अपने बालकोंमें ऐसे ऐसे रोगोंका आरोप करने लगते हैं, जो उनमें बिलकुल नहीं होते। कोई कहता है कि हमारा लड़का अन्न नहीं खाता, कोई कहता है उसे दूध हजम नहीं होता, कोई कहता है कि माताका दूध उसके लिए यथेष्ट नहीं होता, आदि आदि। इसी प्रकारके अनेक कारण बतलाए जाते हैं। बहुत सी स्त्रियाँ तो यहाँ तक समझने लगती हैं कि बच्चेको किसी प्रकारकी दवा न देनेसे हमारी योग्यतामें कमी समझी जायगी। इन सब बातोंका स्वाभाविक परिणाम यही होता है कि बालक अनेक प्रकारके रोगों, डाक्टरों और दवाओं आदिके वातावरणमें ही पलने लगता है। उसका रक्त मांस औषधमय हो जाता है; जिसका दुष्परिणाम उसे आगे चलकर जन्म भर भोगना पड़ता है।

प्रकाश और अन्धकारका साहचर्य जितना अधिक अनुचित और अनिष्टकर है, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक, बालकों और औषधोंका साहचर्य अनुचित और अनिष्टकर है। आगे चलकर कभी न कभी एक ऐसा समय भी आवेगा, जब कि माता पिता अपने बालकोंको बिना किसी विशेष आवश्यकताके केवल झूठ मूठकी चिन्ताके कारण या दूसरोंकी देखा देखी करनेकी घातक इच्छाके कारण समय कुसमय औषध देनेमें लज्जाका अनुभव करने लगेंगे। जब बालकोंका पालन पोषण, प्रेम, सत्य और शान्तिसे परिपूर्ण विचारोंके वातावरणमें होगे

और उन्हें सद्विचारों तथा आरोग्यवर्धक आचार व्यवहारोंका महत्त्व अच्छी तरह समझा दिया जायगा, तब फिर उन्हें कदाचित् ही कभी डाक्टरों और औषधों आदिकी आवश्यकता पड़ेगी।

भला यह समझना कितनी छोटी बुद्धिका काम है कि ईश्वर अपनी सृष्टिके मनुष्योंका आरोग्य, सुख और हित केवल वैद्योंके सान्निध्य सरीखी क्षुद्र, परावलम्बी और केवल घुणाक्षर न्यायसे होनेवाली बातपर अवलम्बित रखता है!

हम लोग यह समझते हैं कि ईश्वरकी सारी सृष्टिमें मनुष्य ही सबसे श्रेष्ठ प्राणी है। ऐसी अवस्थामें यह समझना कैसी नासमझीका और अयुक्तियुक्त काम है कि ऐसे श्रेष्ठ प्राणीका आरोग्य, जीवन और सुख केवल यदृच्छावश किसी वनस्पति अथवा और द्रव्यके सेवनपर अवलम्बित है अथवा किसी ऐसे पदार्थपर अवलम्बित है जिसकी उत्पत्ति और अस्तित्व पूर्णतः पराधीन है और जिसके अनेक गूढ गुण धर्मोंका पूरा पूरा पता लगना प्रायः असम्भव है अथवा निष्ठुर दैव और मनमौजी यदृच्छा पर ही मनुष्यके जीवनका सर्वस्व अवलम्बित है।

ऐसी बातोंके माननेकी अपेक्षा तो यह मानना कहीं अधिक युक्तियुक्त और वास्तविक परिस्थितिके अनुरूप होगा कि मानव शरीरमें होनेवाले एक अथवा अनेक प्रकारके रोगोंको दूर करनेका रामबाण उपाय उस विश्ववत्सल कृपासागर जगदीश्वरने स्वयं मनुष्यमें ही उसके मन और शरीरमें ही बीज रूपसे रख दिया है। नित्य असंख्य मनुष्य अनेक प्रकारके रोगोंके कारण मरते हैं। भला ऐसे रोगोंको दूर करनेवाली औषध वह ईश्वर स्वयं मनुष्यके शरीरमें न रखकर इस अमर्याद पृथ्वीके कोनों अंतरोंमें छिपाकर रक्खेगा? नहीं, कदापि नहीं। यदि वह

ऐसा करे तो मानो उसके दयामय वात्सल्य भाव और दूरदर्शितामें कमी समझी जायगी। उस ईश्वरने अपनी बहुत बड़ी कृपालुताके कारण मनुष्यके वास्तविक सुखोंके स्वाभाविक साधन स्वयं उसके शरीरमें ही गुप्त रूपसे रख दिए हैं और साथ ही उसे सदसद्विवेक भी दे दिया है। उसी सदसद्विवेकके द्वारा वह उक्त साधनोंका ज्ञान प्राप्त कर सकता है और उनके अनुसार अपना आचरण रखकर सुखी और सामर्थ्यवान् भी हो सकता है। इन सब बातोंके लिए उसके वास्ते द्वार खुला हुआ है। परन्तु फिर भी बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो अपने पास होनेवाले ऐसे साधनोंका ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करते। और जिन लोगोंको ऐसे साधनोंका ज्ञान हो जाता है उनमेंसे भी बहुतेरे ऐसे होते हैं जो अविचारके कारण अथवा जान बूझकर उन साधनोंका दुरुपयोग अथवा अतिक्रम करते हैं। मनुष्योंको जो अनेक प्रकारके शारीरिक और मानसिक आदि दुःख होते हैं अथवा जो उन्हें अनेक प्रकारकी व्याधियाँ आदि होती हैं उन सबका मुख्य कारण यही है। इस सम्बन्धमें नीचे लिखा हुआ श्लोक बहुत ही मार्मिक और सदा ध्यानमें रखनेके योग्य है।

रोगशोकपरीतापबन्धनव्यसनानि च।
आत्मापराधवृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम्॥

प्रत्येक मनुष्यमें एक ऐसी अपूर्व और अद्भुत शक्ति रहती है जो जरा मरण आदि सब प्रकारके विकारोंसे रहित है और जो नितान्त आरोग्यमयी है। यदि इस शक्तिका ठीक तरहसे विकास किया जाय, तो यह शक्ति स्वयं ही सब प्रकारकी आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक व्याधियोंको दूर करने अथवा उनका नाश करनेमें समर्थ हो सकती है। यदि हम अपने इस उच्चतर स्वरूपको पहचान लें, तो

फिर यही संसारके सब प्रकारके घावोंपर बहुत अच्छी तरह काम देने-वाली मरहम बन जायगा।

जब घरमें किसी प्रकारका उत्सव या विवाह आदि मंगल कार्य होता है, तब यह प्रायः देखनेमें आता है कि घरमें काम करनेवाले प्रधान लोग बहुत अधिक काम करनेके कारण अथवा और किसी प्रकार जल्दी बीमार नहीं पड़ते। बल्कि जो लोग कुछ बीमार होते हैं वे भी सहसा आराम हो जाते हैं और बहुत अच्छी तरह घरके सब काम करने लग जाते हैं। यहाँ तक कि रोगी पुरुष, अशक्त स्त्रियाँ और छोटे छोटे बालक बालिकाएँ भी ऐसे अवसरों पर बड़े उत्साहसे और बहुत सहजमें ऐसे बड़े बड़े काम भी कर डालते हैं जो साधारण अवसरोंपर उनकी शक्तिके बाहरके समझे जाते हैं।

जो लोग बहुत दिनोंसे बीमार होनेके कारण बिस्तरपर पड़े रहते हैं और किसी प्रकारका काम धन्धा करनेमें असमर्थ समझे जाते हैं, उनपर भी जब कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण और उत्तरदायित्वका काम आ पड़ता है जिसका करना अनिवार्य होता है तो वे लोग भी प्रायः नीरोग मनुष्योंकी भाँति बहुत अच्छी तरह सब काम करते हुए देखे जाते हैं। जब कभी किसी घरका बड़ा मालिक, कमानेवाला या प्रधान व्यक्ति मर जाता है, सहसा किसी बड़ी सम्पत्ति या आय-मार्ग-का नाश हो जाता है अथवा इसी प्रकारकी कोई और बहुत बड़ी आव-श्यकता आ पड़ती है, तब अपने ऊपर सारा भार आता हुआ देखकर बहुत दिनोंके रोगी मनुष्य भी बिलकुल नीरोग मनुष्योंकी भाँति उठकर चलने फिरने और सब काम करने लग जाते हैं। उस समय उन्हें स्वयं अपनी शारीरिक असमर्थताके सम्बन्धमें विचार करनेका अवसर तक

नहीं मिलता। उस समय मानो कोई ऐसा यन्त्र या मशीन चल पड़ती है जो उनके निजी रोगोंकी चिन्ता या चिकित्सा आदिके विचारको एकदम बन्द कर देती है। उस दुर्बल तथा रोगी मनुष्यको अपनी दुर्बलता या रोग आदिका कुछ भी ध्यान नहीं रह जाता और वह संसारके रण-क्षेत्रमें बहादुर जवानोंकी तरह कूद पड़ता है।

प्रत्येक समाजमें बहुतसी ऐसी विधवाएँ तथा अन्यान्य स्त्रियाँ देखी जाती हैं जो अनेक प्रकारके परिश्रम करके और बहुतसी झंझटें उठाकर स्वयं भी जीवन निर्वाह करती हैं और अपने आश्रितोंका भी भली भाँति भरण पोषण करती हैं। ऐसी स्त्रियोंको देखकर कभी कभी लोगोंको बहुत आश्चर्य होता है। यदि उन्हें आवश्यकता इस प्रकार काम करनेपर विवश न करती तो बहुत सम्भव था कि वे बरसों पहले मर गई होतीं। जिस दुर्घटना या कुप्रसंगके कारण उन स्त्रियोंको अनेक प्रकारका परिश्रम करना पड़ता है, यदि वह दुर्घटना न हुई होती या वह कुप्रसंग न आया होता तो शायद वे इस प्रकारका परिश्रम एक दिन भी न कर सकतीं। यदि वे अच्छी स्थितिमें होतीं तो उन्हें अनेक प्रकारके रोग आ घेरते और वे चुपचाप बिस्तरपर पड़ी पड़ी कराहा करतीं। परन्तु चक्रवर्तिनी आवश्यकता आकर उन्हें कहती है—"उठो और काम करो। नहीं तो तुम्हें और तुम्हारे आश्रित बालबच्चोंको भूखों मरना पड़ेगा।" यह आवश्यकता, यह उत्तरदायित्व ही उनके सब प्रकारके रोगोंका सबसे बड़ा और रामबाण औषध सिद्ध होता है।

सभी जगह ऐसे सैकड़ों हजारों आदमी दिखलाई देते हैं जिन्हें आवश्यकता ही उठकर सब प्रकारके काम करनेके लिए विवश करती है। यदि उन्हें आवश्यकता आकर न घेरती तो शायद वे दिन रात बिस्तरपर

ही पड़े रहा करते और कहा करते कि आज हमारी तबीयत ठीक नहीं है, आज हमारा जी अच्छा नहीं है। परन्तु भूखसे व्याकुल होनेवाला पेट, जाड़ेसे ठिठुरनेवाला शरीर और अनेक प्रकारके विषयोपभोगोंकी ओर लगी हुई उनकी लालसा उन्हें एक दिनके लिए भी बीमारीका मजा लेनेकी फुरसत नहीं देती। अपने रोग और अपनी दुर्बलताका विचार उन्हें विवश होकर बिलकुल छोड़ देना पड़ता है और अपने बाल बच्चोंके उदर-निर्वाह तथा भरण-पोषणकी चिन्ता करनी पड़ती है। उनका जी चाहे या न चाहे, उन्हें झख मारकर काम करना ही पड़ता है और काम करनेकी शक्ति भी उनमें न जाने कहाँसे आपसे आप चली ही आती है।

जिस समय मनुष्यके सामन जीवन-मरणका प्रश्न उपस्थित होता है, जिस समय बाह्य जगतसे सहायता मिलनेकी एक भी जगह बाकी नहीं रह जाती, जिस समय चारों ओर भीषण निराशा ही मुँह बाए हुए दिखलाई पड़ती है, उस समय इस सार्वभौम आवश्यकताके कठोर शासनमें मनुष्य क्या नहीं कर सकता ? इस निष्ठुर, अनिवार्य और बिकट आपत्तिके कठोर शासनमें संसारके बहुत से अद्भुत कार्य हुए हैं, और बराबर होते रहते हैं।

यही आवश्यकता, कोई आपत्ति आ पड़ने पर उत्पन्न होनेवाली आवश्यकता, मनुष्योंसे बड़े बड़े अमानुषी कृत्य करा डालती है, और उन्हें ऐसी ऐसी कठिनाइयोंसे पार करती है जो साधारण अवस्थामें किसी प्रकार पार की ही नहीं जा सकतीं। मनुष्य कहलानेवाले प्रत्येक प्राणीमें एक ऐसी प्रबल शक्ति वास करती है जो उसे सदा उद्योगमें रत रखती है और सदा उन्नतिके पथपर अग्रसर करती रहती है। मनुष्यको

चाहे उसका ज्ञान हो और चाहे न हो, परन्तु यह हृदयस्थ स्वामिनी सदा उसे अपने कर्तव्यका पालन करनेके लिए बाध्य करती रहती है।

यही आपत्ति हमारे काँपते हुए पैरोंको जोर देती है, हमें निद्रासे जगाती है, हमारा आलस्य दूर करके हमें काम करनेके योग्य बनाती है, हमें दरिद्रता, कठिनाइयों और संकटोंके सहन करनेमें समर्थ करती है; जिस समय चुपचाप आरामसे पड़े रहना चाहते हैं उस समय हमसे अविश्रान्त परिश्रम कराती है, और हमारी दुर्बलता तथा रोग आदिका नाश करके हममें अद्भुत सामर्थ्य उत्पन्न करती है।

२—आरोग्यका रहस्य

चित्ताक्रान्तं धातुबद्धं शरीरम्,
नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम् ।
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीयं,
स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति ॥

क्या कभी किसीने इस प्रश्नपर भी विचार किया है कि हम बीमार क्यों पड़ते हैं ? क्या कभी किसीने यह सोचनेका भी प्रयत्न किया है कि आरोग्य किसे कहते हैं और रोग किसे कहते हैं ? क्या कभी किसीने यह जाननेका भी प्रयत्न किया है कि आदमी कभी रोगी और कभी नीरोग क्यों रहता है ?

यदि कभी कोई आदमी बीमार हो जाय और आप उससे पूछें कि तुम कैसे बीमार हुए, तो सम्भवतः वह उत्तर देगा कि मुझे सरदी लग गई थी, या मैं पानीमें भींग गया था, या यों ही मुझे बुखार आ गया। यदि कोई अधिक भावुक या ईश्वरनिष्ठ व्यक्ति होगा, तो वह कह देगा कि ईश्वरकी मरजी; या संभव है कि वह कह दे कि हमारे भाग्यमें ही बीमार होना बदा था।

परन्तु इनमेंसे एक भी बात ठीक नहीं है। यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो जान पड़ेगा कि रोग वास्तवमें एक प्रकारका दंड है। बड़ी शेखीसे यह कहना कि उस बार हम छः महीने तक बीमार थे, यह कहनेसे कम नहीं है कि अमुक अवसर पर हम छः महीने तक जेलमें थे। इसका कारण यह है कि जब कभी कोई आदमी बीमार पड़ता है तो

वह अपने किसी न किसी दोष या अपराधके कारण ही बीमार पड़ता है। और वह दोष या अपराध जितना ही बड़ा होता है उतने ही बड़े रोगके रूपमें उसका हृदयस्थ न्यायाधीश उसे दंड देता है। इस प्रकार रोगी होना भी मानो नैतिक कारावासका दंड भोगना है।

प्रत्येक व्यक्तिको यह बात बहुत अच्छी तरह समझ रखनी चाहिए कि वह अपने मनमें किसी रोगका जो कारण समझता है अथवा उसको वैद्य या डाक्टर जो जो बतलाता है वे सब कारण बिलकुल ग़लत हैं। उनमेंसे एक भी कारण ठीक नहीं है।

ऐसी दशामें प्रश्न हो सकता है कि रोगका वास्तविक कारण क्या है। इसका उत्तर यह है कि रोगके वास्तविक कारण स्वयं तुम ही हो। तुम्हें जितने रोग होते हैं उन सबके लिए स्वयं तुम ही जिम्मेवार हो। किसी कविने बहुत ठीक कहा है—

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।

अपनी अच्छी और बुरी सभी दशाओंके लिए स्वयं तुम ही उत्तरदाता हो। तुम्हारी जो वासना विचारके रूपमें प्रकट होती है वही तुम्हारे मनकी शक्ति है, और उसीसे तुम्हारा जीवनक्रम बनता है। मन ही तुम्हारे जीवनक्रमका गर्भाशय है। किसी मनुष्यके जीवनमें जितने प्रसंग होते हैं, उन सबकी सृष्टि और निर्माण उसी गर्भाशयमें होता है। मतलब यह कि तुम्हारी जितनी अच्छी और बुरी अवस्थाएँ हैं वे सब स्वयं तुम्हींसे उत्पन्न होती हैं। तुम्हारे सब प्रकारके विकार, विचार, आशा, आकांक्षा, सुख, दुःख, भय आदि उसी गर्भाशयमेंसे उत्पन्न होते हैं। वहीं उनका बीज बोया जाता है, और जब ठीक समय आता है तब वह अपने अंग निकालकर सर्वांगपूर्ण बन जाता है और

तब उसमेंसे बालकोंके रूपमें वे परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जो तुम्हारे जीवनक्रमपर सुखद या दुःखद आघात करती हैं।

हम जो कुछ विचार करते हैं उससे हमारे शरीरमें एक प्रकारका जल सींचा जाता है, जिससे हमारे शरीरमेंकी पेशियोंमें जीवन या चैतन्य उत्पन्न होता है। मनुष्यके शरीरमें इस प्रकारकी असंख्य पेशियाँ होती हैं। इनमेंसे प्रत्येक पेशी सजीव गुणधर्मयुक्त एक स्वतन्त्र वस्तु है, और किसी मनुष्यके जैसे विचार होते हैं, उन्हींके रूपों और गुणोंके अनुसार उन पेशियोंके भी रूप और गुण होते हैं।

ये पेशियाँ छोटे छोटे घटकों या कोषोंसे बनी हुई होती हैं। उनकी रचना बहुत छोटे छोटे परमाणुओंसे होती है। उनमेंसे प्रत्येक परमाणुमें जीवनतत्त्वका अंश भरा हुआ होता है। ये परमाणु बराबर मलके रूपमें कुछ न कुछ द्रव्य बाहर फेंका करते हैं, और अन्नके रूपमें कुछ और अधिक द्रव्य ग्रहण करते हैं। इसी क्रियासे उन परमाणुओंका आकार बढ़ता है। उन परमाणुओंको रक्तसे परिपोषक द्रव्य मिलता रहता है। इन परमाणुओंका गुणधर्म दो बातोंके योगसे निश्चित होता है। उनमेंसे एक तो रक्तका रासायनिक स्वरूप है और दूसरा मनुष्यकी वासनाओंका स्वरूप है। विचारों और विकारोंकी जो निरन्तर गति होती रहती है, उससे नित्य असंख्य परमाणुओंका नाश होता रहता है। बल्कि यों कहना चाहिए कि हर दम बहुत से पुराने कोषों या शरीर-घटकोंका नाश होता रहता है और उनके स्थानपर नए कोष या शरीर-घटक बनते रहते हैं। पर जब मनुष्य किसी प्रकारका कोई अनुचित कार्य करता है, किसीपर क्रोध करता है, खान पान या विहार आदिका अतिरेक करता है अथवा उसके मनमें कोई तीव्र मनोविकार उत्पन्न होता है अथवा जब वह भाँग गाँजे शराब आदि मादक द्रव्यों या तम्बाकू आदि उत्तेजक

पदार्थोंका सेवन करता है तब इन कोषोंका बहुत ही भयंकर प्रमाणमें नाश होने लगता है।

यद्यपि ये परमाणु बहुत ही सूक्ष्म होते हैं तथापि वे उस परम स्वरूपके प्रत्यक्ष अंश होते हैं जिसके सम्बन्धमें कहा गया है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

जिस प्रकार मनुष्यके वीर्यके सूक्ष्म बिन्दुमें मानव-शरीरके सभी अंग बीज रूपसे और अव्यक्त दशामें वर्तमान रहते हैं, उसी प्रकार इन सूक्ष्म शरीर-घटकोंमें वह पूर्ण वैभवसम्पन्न परम स्वरूप उपस्थित रहता है। हमें जितने चेतन पदार्थ दिखाई देते हैं वे सब इसी प्रकारके घटकोंसे बने हुए होते हैं। जीवके लिए ये घटक परम आवश्यक और उसके जीवनका मुख्य आधार होते हैं। उनमें लिंगभेद भी होता है—कुछ घटक स्त्रीलिंग होते हैं, कुछ पुल्लिंग, कुछ दोनों लिंगोंसे युक्त होते हैं और कुछ नपुंसक। उन घटकोंके बनने और नष्ट होनेकी क्रिया बराबर होती रहती है। नष्ट घटक किसी न किसी प्रकारसे मलके रूपमें बाहर निकलते रहते हैं और नए घटक अपना पोषक द्रव्य ग्रहण करके बराबर बढ़ते रहते हैं। ये घटक या परमाणु स्वयं ही अन्य घटकों या परमाणुओंकी सृष्टि करते रहते हैं। एक परमाणुसे दो, दोसे चार और चारसे आठ, इस प्रकार बराबर नए परमाणु उत्पन्न होते रहते हैं। वैज्ञानिकोंने हिसाब लगाकर निश्चय किया है कि एक परमाणुसे चौबीस घंटेमें प्रायः १,७०,००,००० नए परमाणु उत्पन्न होते हैं। ज्यों ज्यों नए परमाणु बनते जाते हैं त्यों त्यों पुराने परमाणुओंकी चेतना शक्ति नष्ट होती जाती है। उन परमाणुओंका चैतन्य रिक्त या मुक्त होने

लगता है। इसलिए उनमें किसी प्रकारसे नया चैतन्य प्रेरित करनेकी आवश्यकता हुआ करती है। प्रकृतिने हमारे शरीरमें इस बातकी बहुत अच्छी व्यवस्था कर रक्खी है। हमारे शरीरके जिस अंगमें पोषक द्रव्य खूब भरपूर होता है उस अंगके परमाणु मन्द, भारी और आलसी होते हैं। ऐसे परमाणु स्त्री जातिके होते हैं। परन्तु जो परमाणु ऐसी परिस्थितिमें नहीं होते और जिन्हें अपने लिए पोषक द्रव्य प्राप्त करनेमें अधिक प्रयत्न करना पड़ता है वे अधिक चपल होते हैं और सूक्ष्मसे सूक्ष्म संवेदन भी ग्रहण कर लेते हैं। ऐसे परमाणु नर जातिके होते हैं। जिन परमाणुओंको सहजमें और अधिक पोषक द्रव्य मिलता रहता है वे मन्द और जड़ हो जाते हैं। ऐसे परमाणुओंसे जो परमाणु उत्पन्न होते हैं, वे भी मन्द और जड़ ही रहते हैं। पर जिन परमाणुओंको सहजमें यथेष्ट पोषक द्रव्य नहीं मिलता और सदा क्षुधित रहनेके कारण चंचल और गतिशील रहते हैं, उनसे उत्पन्न होनेवाले परमाणु भी उन्हींके समान चंचल और गतिशील होते हैं। परन्तु इन दोनों प्रकारके परमाणुओंकी ये अवस्थाएँ बिलकुल नैसर्गिक हुआ करती हैं। उनमेंसे एक तो अधिक श्रम करनेके कारण और दूसरे अधिक आलस्यके कारण शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। परन्तु इस अनर्थका परिहार करनेके लिए प्रकृतिने एक और व्यवस्था कर रक्खी है। जिस समय भूखा परमाणु पोषक द्रव्यकी तलाशमें इधर उधर दौड़ता है, उस समय यदि कहीं रास्तेमें किसी स्त्री परमाणुसे उसकी भेंट हो जाती है तो दोनोंका संयोग हो जाता है। इस नए संयोगके कारण उस मन्द और जड़ परमाणुको एक नई चेतना शक्ति प्राप्त होती है और उधर उस भूखे परमाणुको दूसरे स्त्री परमाणुसे पोषक द्रव्य मिलता है। इस प्रकार उनके विनाशका भय जाता रहता है और दोनोंको नवीन चेतना शक्ति प्राप्त

हो जाती है। इस प्रकार उनका नाश तो बन्द हो जाता है और नए नए परमाणुओंकी उत्पत्ति होती रहती है।

जो बालक झोंपड़ोंमें जन्म लेते हैं उनकी अपेक्षा राजमहलोंमें जन्म लेनेवाले बालकोंकी अवस्था बहुत भिन्न और अनेक अंशोंमें अनुकूल हुआ करती है। झोंपड़ोंमें जन्म लेनेवाले गरीबोंके बालकोंको आरम्भसे ही अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है; परन्तु बड़े बड़े महलोंमें और अमीरोंके यहाँ जन्म लेनेवाले बालकोंको आरम्भसे ही सब प्रकारके सुभीते रहा करते हैं। मानव-शरीरमें उत्पन्न होनेवाले इन परमाणुओंकी भी ठीक वही दशा है। मनुष्य अपने मनोविकारों और मनोवृत्तियोंके वातावरणमें इन परमाणुओंकी वृद्धि करता रहता है। इस प्रकार वह इन परमाणुओंको या तो झोंपड़ोंमें और या राजमहलोंमें जन्म देता है। मानव शरीरके आधार, ये परमाणु रक्तसे अपना पोषक द्रव्य प्राप्त करते हैं और प्रत्येक मनोविकार या विचारसे रक्तका रासायनिक गुण धर्म और परिणाम बदलता रहता है। परमाणुओंका पोषण उसी रक्तके द्वारा होता है, इसलिए वे परमाणु भी ऐसे रक्तका गुण और धर्म ग्रहण करते हैं। उस समय वे उन्हीं मनोविकारोंके दास बन जाते हैं जिनका हमारे हृदयमें राज्य होता है। इसलिए जब मनुष्य बहुत अधिक क्रोध करता है तब उसके शरीरमें असंख्य नवीन परमाणु उत्पन्न हो जाते हैं जो उसके रक्तके साथ सारे शरीरमें घूमने लगते हैं। उन परमाणुओंके उत्पन्न होनेके समय मनुष्यके हृदयमें जो मनोवृत्ति प्रबल होती है वह शरीरमें बहुत कुछ स्थायी हो जाती है और बहुत समय तक बनी रहती है। यही मानो दरिद्रकी झोंपड़ीमें उत्पन्न हुए रोगी और निर्जीव परमाणु होते हैं। इसी लिए जिन लोगोंके हृदयमें बराबर क्रोध आदि विकार उत्पन्न हुआ करते हैं, उनके शरीरमें हर दम इसी तरहके

असंख्य परमाणु बनते रहते हैं और इसका परिणाम यह होता है कि शरीरमें रोगी, निर्बल, विकृत और अशुद्ध परमाणुओंका शैतानी साम्राज्य स्थापित हो जाता है। दुष्ट मनोविकारोंसे दुष्ट परमाणुओंकी उत्पत्ति होती है। इन मनोविकारोंको हम उन परमाणुओंका जनक और भीति तथा असमानता आदिको उनकी माता कह सकते हैं। इन सब दुष्ट परमाणुओंसे फिर आगे भी इसी प्रकारके दुष्ट परमाणुओंकी सृष्टि होती है और ऐसे परमाणुओंकी सृष्टिका सहज तथा स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि मनुष्यका शरीर दुर्बल, अस्वस्थ, रोगी और दीन हो जाता है, उसकी वृद्धावस्था तथा मृत्यु बहुत समीप आती जाती है और अन्तमें इन परमाणुओंकी यहाँ तक प्रबलता हो जाती है कि वह मनुष्यके दैवी अंशको बिलकुल दबा लेती है।

ये दुष्ट परमाणु सन्तोष, आरोग्य और प्रेम आदि अधिकारियोंको पदच्युत करके दुःख, रोग और मृत्यु आदिको उनके स्थानपर आरूढ करा देते हैं। इस प्रकार इन अतिशय सताए हुए दीनोंकी सहायताके लिए अन्तमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण आते हैं और इस कारागारसे छूटनेका सामर्थ्य, समृद्धि और शान्तिका राजमार्ग दिखलाते हैं। कहा है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण इस बन्धनसे मुक्त होनेका यही उपाय बतलाते हैं कि तुम अपना मन शुद्ध करो और ये व्यर्थके झगड़े दूर करो।

भगवान् श्रीकृष्णकी भाँति ईसा मसीहने भी इस बन्धनसे मुक्त होनेका यही मूल मन्त्र बतलाया है। उन्होंने कहा है—

As a man thinketh in his heart, so is he.

अर्थात् अपने हृदयमें जो जैसे विचार रखता है वह वैसा ही होता है।

इन सब बातोंसे यही अभिप्राय निकलता है कि यदि मनुष्यको सबसे

बढ़कर किसी चीजकी चिन्ता रखनेकी आवश्यकता है तो वह अपने मनकी। यदि तुम अपने मनपर पूरा पूरा अधिकार रक्खोगे और उसमें किसी प्रकारके दुष्ट मनोविकार या दोष आदि उत्पन्न होने न दोगे तो फिर तुम अपने भाग्यके स्वयं ही विधाता बन जाओगे। ईश्वरने कभी दुर्भाग्य और विपत्ति आदिकी गठरी बाँधकर तुम्हारे सिरपर नहीं लादी है। तुम खिलाड़ी लड़केकी भाँति विद्यालयका मार्ग छोड़कर व्यर्थ इधर उधर भटक रहे हो और जो कुछ बुरी बातें तुमको सामने दिखाई देती हैं, उन्हें अपने शरीरमें भरते जा रहे हो। परिणाम यह होता है कि उनके असह्य भारसे तुम्हारा सिर और कमर झुक जाती है। तुम उससे बचना चाहते हो, परन्तु बच नहीं सकते और इसी लिए तुम दूसरोंको, ईश्वरको और भाग्यको दोषी ठहराते हो।

यह बात अच्छी तरह मनमें समझ रक्खो कि स्वयं तुम्हीं अपने सबसे बड़े राजाधिराज हो और शरीरका संगठन करनेवाले, ये असंख्य परमाणु, तुम्हारी प्रजा हैं। यदि तुम अपने राज्यका कार्य मूर्खतासे चलाओगे, तो फिर वह प्रजा तुम्हारी आज्ञा नहीं मानेगी, उसमें विद्रोहका भाव उत्पन्न हो जायगा और अन्तमें वह तुम्हारे विरुद्ध उठ खड़ी होगी। उसके इस प्रकार विद्रोह करनेका परिणाम यह होगा कि तुम पदच्युत हो जाओगे और तुम्हारे शरीर त्याग करनेकी बारी आ जायगी। यदि तुम यह चाहते हो कि तुम्हारे पदच्युत होनेका अनिष्ट प्रसंग न आवे और तुम्हारा सार्वभौम पद अटल रहे, तो इसका मुख्य उपाय यही है कि ऊपर जो बातें बतलाई गई हैं, उन्हें तुम भली भाँति हृदयंगम कर लो। पर उन बातोंको केवल हृदयंगम करनेसे ही काम न चलेगा, बल्कि अपने सब व्यवहारोंमें भी तुम्हें उनका पूरा पूरा आचरण करना पड़ेगा और जब तुम बराबर उनका आचरण करते रहोगे तो कुछ समयमें वे बातें तुम्हारे

स्वभावका ही एक अंग हो जायँगी। परन्तु इसके लिए तुम्हें बहुत ही सचेष्ट और सतर्क होकर और अश्रान्त दक्षतापूर्वक प्रयत्न करना पड़ेगा; उनका निरन्तर अभ्यास, चिन्तन और व्यवहार करके अनेक बार उनकी पुनरावृत्ति करनी पड़ेगी। मनोनिग्रह करना बहुत ही कठिन और कष्ट-साध्य होता है। इसीसे आध्यात्मिक उन्नति होती है। परन्तु इसक लिए बहुत बड़े अभ्यासकी आवश्यकता है। अभ्यास ही एक ऐसी चीज है जिसके द्वारा मनुष्य कठिनसे कठिन और बिलकुल असम्भव जान पड़नेवाले काम भी अन्तमें कर ही डालता है। किसीने कहा है:—

करत करत अभ्यासके, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जातते, सिलपर परत निसान॥

३—दरिद्रता

जीवन्तोऽपि मृताः पंच व्यासेन परिकीर्तिताः ।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः ॥

—सुभाषित ।

दारिद्र्यान्मरणाद्वा मरणं मे रोचते न दारिद्र्यम् ।
अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम् ॥

—मृच्छकटिक ।

दरिद्रता कोई नैसर्गिक या स्वाभाविक चीज नहीं है । वह मनुष्यकी स्वाभाविक वृत्तिके कभी अनुकूल नहीं है । वह मनुष्यके दैवी अंशके विकासमें प्रतिबंध डालनेवाली है । परमात्माने कभी ऐसी योजना नहीं की है कि मनुष्य सदा दासतामें हताश और दरिद्र रहे । उसे सदा पेट भरनेकी चिन्तामें ही पड़े रहनेकी आवश्यकता नहीं है, बल्कि उसके लिए इसकी अपेक्षा कहीं अधिक उच्च और महत्त्वके बहुत से काम पड़े हुए हैं ।

जो मनुष्य चारों ओरसे दरिद्रतासे जकड़ा हुआ हो, वह कभी कोई अच्छेसे अच्छा काम करके नहीं दिखला सकता, वह अपने सर्वोत्कृष्ट गुणोंका कभी पूरा पूरा विकास नहीं कर सकता । यदि वह चारों ओ-रसे इसी प्रकारकी चिन्ताओं और कष्टोंसे घिरा रहे, तो वह कभी अच्छे अच्छे काम करनेका अवसर ही नहीं पा सकता ।

जिसे दिनरात इस बातकी चिन्ता लगी रहेगी कि मैं किस प्रकार अपना पेट भरूँ, वह कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता । वह कभी अपना जीवन सुव्यवस्थित और सुसंगत नहीं रख सकता । प्रायः

ऐसे अवसर भी आते हैं कि वह निर्भीकतापूर्वक अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट नहीं कर सकता। यदि वह किसी अच्छे और स्वच्छ स्थानमें रहना चाहता हो तो नहीं रह सकता। मतलब यह कि दरिद्रता मनुष्यको बहुत ही छोटा और तुच्छ बना देती है और उसकी सब प्रकारकी आकांक्षाओं और कामनाओंका नाश कर देती है। दरिद्रावस्थामें न तो कोई आनन्द रह जाता है, न कोई आशा रह जाती है और न उन्नति करनेका कोई अवसर ही रह जाता है। इससे मनुष्यमें अनेक प्रकारकी बुराइयाँ और दोष उत्पन्न हो जाते हैं, यहाँ तक कि जिन लोगोंको सदा आपसमें बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक हिलमिलकर जीवन निर्वाह करना चाहिए उन लोगोंके पारस्परिक प्रेमका नाश इसी दरिद्रताके कारण हो जाता है।

यदि मनुष्य घोर दरिद्रावस्थामें हो तो उसका वास्तविक अर्थमें मनुष्य बनना भी बहुत कठिन हो जाता है। जिस समय मनुष्य चारों ओर तकाजे करनेवाले साहूकारोंसे घिरा हुआ हो, पैसे पैसेसे मोहताज हो और उसके बाल-बच्चे भूखों मर रहे हों, उस समय उसके लिए मान मर्यादाका निर्वाह करना प्रायः असम्भव हो जाता है जिसके द्वारा वह संसारमें सब लोगोंके सामने निर्भीकता और स्वतन्त्रतापूर्वक सिर उठाकर देख सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ थोड़ेसे ऐसे महानुभाव और महात्मा भी हो गए हैं जिन्होंने घोर दरिद्रावस्थामें भी रहकर ऐसे सुन्दर उदाहरण उपस्थित किए हैं जिन्हें संसार कभी भूल नहीं सकता; परन्तु फिर भी हमें यह देखना चाहिए कि इस दरिद्रताके कारण कितने अच्छे अच्छे जीवन किस बुरी तरहसे नष्ट हुए हैं।

हमें इस दरिद्रताके कष्टदायक परिणाम सदा अपने चारों ओर दिखाई देते हैं; धनके अभावके कारण हम बहुत से लोगोंको बहुत ही

दुर्दशाकी अवस्थामें पाते हैं। जो लोग दरिद्रावस्थामें उत्पन्न होते और बढ़ते हैं वे न तो बलवान् हो सकते हैं और न प्रसन्न रह सकते हैं। वे समय आनेसे बहुत पहले ही बूढ़े हो जाते हैं और सदा चिन्तित तथा उदास रहते हैं। इस दरिद्रताके कारण अनेक अच्छी अच्छी आकांक्षाओंका बहुत ही बुरी तरहसे नाश हो जाता है और बहुत से लोगोंकी परम उपयोगी तथा उत्कट योग्यता मिट्टीमें मिल जाती है।

संसारमें कुछ ऐसे लोग भी मिलेंगे जो दरिद्रताकी स्तुति करते हुए दिखाई देंगे; परन्तु उनमेंसे अधिकांश ऐसे ही लोग होंगे जो स्वयं उस दरिद्रतासे बचे हुए होंगे। वे जब खूब अच्छी तरहसे खा पीकर खड़े होंगे, तब पेटपर हाथ फेरते हुए कहेंगे—भाई आजकल समय बड़ा कठिन होता जा रहा है। न जाने गरीब लोग किस प्रकार निर्वाह करते होंगे। लेकिन नहीं, फिर भी हम लोगोंसे गरीब ही अच्छे हैं। उन लोगोंको किसी प्रकारका झगड़ा बखेड़ा नहीं होता; न किसी प्रकारकी चिन्ता होती है। हम लोगोंको तो दिन रात अनेक प्रकारकी चिन्ताएँ लगी रहती हैं और अपनी प्रतिष्ठाका निर्वाह करना कठिन हो जाता है। परन्तु यदि ऐसे आदमियोंसे कोई कहे कि आप भी अपना सारा वैभव परित्याग करके गरीबोंकी अवस्थामें आ जाइए, तो वे कभी इसके लिए तैयार न होंगे। उनका यह कथन उतना ही तिरस्करणीय और निन्दनीय है जितना कि तोपोंकी मारसे बहुत दूर खड़े होकर अपना बचाव करते हुए युद्धका दृश्य देखना और गोलों गोलियोंसे घायल होनेवाले सैनिकोंके साहस और वीरताकी प्रशंसा करना।

हम तो चाहते हैं कि प्रत्येक युवकको यह बात बहुत अच्छी तरह समझा दें कि संसारमें दरिद्रतासे बढ़कर भीषण कष्टदायक और सदा

बचने योग्य कोई दूसरी चीज़ है ही नहीं। वह लज्जा, शान्ति, शील, संकोच और मर्यादा आदि सबका नाश करनेवाली है। कहा है—

निर्द्रव्यं पुरुषं सदैव विकलं सर्वत्र मन्दादरम्,
तातभ्रातसुहृज्जनादिरपि तं दृष्ट्वा न सम्भाषिते।
भार्या रूपवती कुरंगनयना स्नेहेन नालिङ्गते,
तस्माद्द्रव्यमुपार्जयाशु सुमते द्रव्येण सर्वे वशाः॥

जिस दरिद्रताका किसी प्रकार निवारण न किया जा सके, उसमें तो कोई अप्रतिष्ठाकी बात है ही नहीं। जो लोग शारीरिक अस्वस्थता अथवा और किसी प्रकारसे दुर्भाग्यके कारण दरिद्र होते हैं, उनका समाज आदर करता है और उनपर दया दिखलाता है। वास्तविक अप्रतिष्ठाकी बात तो तब है जब कि हम लोगोंको इस प्रकारकी दीन हीन अवस्थामें देखें और उनकी दीनता तथा दरिद्रता दूर करनेका कोई प्रयास न करें। हम जिस दरिद्रताको निन्दनीय बतलाते हैं, वह ऐसी दरिद्रता है जिसका किसी न किसी प्रकार निवारण किया जा सकता है। ऐसी दरिद्रता प्रायः अनाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करने, निठल्ले बैठे रहने या ठीक ढंगसे काम न करने आदिके कारण होती है। ऐसी दरिद्रता या तो उद्यमके अभावमें होती है और या ठीक तरहसे विचार और कार्य न करनेके कारण होती है। यही वह दरिद्रता है जिसका सहजमें निवारण हो सकता है और इसी प्रकारकी दरिद्रताके कारण लोग समाजमें घृणित तथा तुच्छ बने रहते हैं और स्वयं भी अनेक प्रकारके कष्ट भोगते हैं। इस प्रकारकी दरिद्रतामें होनेके कारण प्रत्येक स्त्री और पुरुषको लज्जित होना चाहिए, क्योंकि उस दरिद्रताका निवारण करना उनके हाथमें है। यदि वह सामर्थ्य रहते भी उस दरिद्रताका निवारण नहीं करता तो मानो अपनी अयोग्यता और अकर्म-

ण्यता सिद्ध करता है। ऐसे लोगोंकी ओर समाज तो ध्यान देता ही नहीं बल्कि उन्हें स्वयं भी अपनी दशापर ध्यान देनेका बहुत कम अवसर मिलता है।

भारतवर्षमें जिधर देखिए उधर भीषण दरिद्रताका दृश्य दिखाई देता है। यहाँके अधिकांश निवासियोंकी आकृतिसे उनकी घोर दरिद्रताका पता चल जाता है। यहाँके युवक युवावस्थामें ही वृद्ध से जान पड़ने लगते हैं और असमयमें ही मर जाते हैं। वे शारीरिक दृष्टिसे तो निर्बल होते ही हैं; पर साथ ही उनमें नैतिक बलका भी नितान्त अभाव रहता है। इन सब बातोंका मुख्य कारण यही है कि वे जन्मसे ही बहुत दरिद्र होते हैं। न तो उन्हें बाल्यावस्थामें ही कोई सुख मिलता है और न युवावस्थामें ही। बहुत ही छोटी अवस्थासे उन्हें कोल्हूके बैलकी तरह दिनरात कठिन परिश्रम करना पड़ता है। यदि वे इस प्रकार परिश्रम न करें तो उन्हें रातको आधे पेट रोटी भी न मिले। वे बेचारे न तो कुछ सीख सकते हैं और न समझ सकते हैं। इस प्रकार दरिद्रताके कारण उनका सारा जीवन ही नष्ट हो जाता है। उच्च और उदात्त आकांक्षाओं तथा उत्कृष्ट योग्यताओंकी कली खिलनेसे पहले ही कुम्हला जाती है। भारतवासियोंकी इस दरिद्रताके अनेक कारण हैं। उनमेंसे कुछ कारण निवार्य हैं और कुछ देशकी वर्तमान अवस्थाके कारण अनिवार्य भी हैं। जो कारण अनिवार्य हैं उनके सम्बन्धमें तो यहाँ हमें कुछ कहना ही नहीं है। पर जो कारण निवार्य हैं और सहजमें दूर किए जा सकते हैं, उन कारणोंका वर्तमान रहना और दूर न किया जाना स्वयं उन दरिद्रोंके लिए भी और समाजके धनिक लोगोंके लिए भी बहुत बड़ी लज्जाकी बात है। बहुत से लोग कुछ काम करना तो चाहते हैं, पर दरिद्रताके कारण न तो किसी कामकी शिक्षा प्राप्त कर

सकते हैं और न कोई काम आरम्भ ही कर सकते हैं। इस प्रकार वे लोग देशकी दरिद्रताको और भी बढ़ानेके कारण होते हैं। ऐसे लोगोंको अनेक प्रकारके कार्योंकी शिक्षा देना और उन्हें कुछ काम करनेके योग्य बनाना इस देशके प्रत्येक धनी, समर्थ, शिक्षित, और योग्य व्यक्तिका मुख्य कर्तव्य होना चाहिए। और यदि वे लोग इस बातका कोई उद्योग नहीं करते हैं तो यह उनके लिए सबसे बड़ी लज्जाकी बात है।

दरिद्रोंके लिए सबसे बड़ी कठिनता यह होती है कि वे सहजमें इस बातपर विश्वास ही नहीं कर सकते कि हमारी यह दरिद्रता किसी प्रकार दूर हो सकती है। विशेषतः भारतवासी तो और भी अधिक भाग्यवादी हैं। वे सोचते हैं कि जो कुछ भाग्यमें बदा होता है वही होता है। यदि हमारे भाग्यमें धनवान् होना बदा होता तो हम पहले ही किसी धनवानके घरमें जन्म लेते, एक दरिद्रके घरमें जन्म ही क्यों लेते? इसके अतिरिक्त वे अपने चारों ओर यह भी देखते हैं कि बस लक्ष्मीका ही साम्राज्य है और बिना धनके संसारका कोई काम होता ही नहीं। लोगोंमें यह भी एक कहावत प्रचलित है कि "धनको धन खींचता है" वे कहते हैं—"मायाको माया मिले दोनों हाथ पसार।" इसी लिए वे स्वयं किसी प्रकारका कार्य आरम्भ करनेका विचार भी नहीं कर सकते। अपने चारों ओरकी परिस्थितियोंको देखते हुए वे और भी उत्साहहीन हो जाते हैं और समझ लेते हैं कि इन परिस्थितियोंमें हमारे किए कोई काम हो ही नहीं सकता। इस प्रकार स्वयं अपनी शक्ति तथा योग्यता परसे उनका विश्वास उठ जाता है और अपने आप-परसे यह विश्वास उठ जाना ही मनुष्यके लिए बहुत नाशक होता है।

आजकल पाश्चात्य सभ्यताकी कृपासे संसारमें चारों ओर ऐहिक सुख और ऐहिक लाभके लिए ही सबसे अधिक प्रयत्न किया जाता है और

लोग संसारमें धनको ही सबसे बढ़कर समझते हैं। इस समय संसारकी परिस्थिति भी ऐसी ही हो गई है कि बिना धनके कोई काम चल ही नहीं सकता। इसी लिए पाश्चात्य देशोंके लोग दरिद्रताको एक ऐसी दृष्टिसे देखते हैं जिस दृष्टिसे हमारे देशके प्राचीन विद्वानों और आचार्यों आदिने नहीं देखा था। आजकल पाश्चात्य देशोंके लोग संसारकी बदली हुई परिस्थितिके कारण ही दरिद्रताकी बहुत अधिक निन्दा करते हैं। बल्कि आजकलकी सभ्यता तो मानो यह कहती हुई जान पड़ती है कि इस संसारमें दीनों और दरिद्रोंके लिए कोई स्थान ही नहीं है। जो लोग इस संसारमें रहना चाहते हों उन्हें धन उपार्जन करना चाहिए। यदि वे धनका संग्रह नहीं करते हैं तो उन्हें नष्ट हो जानेके लिए तैयार रहना चाहिए। परन्तु जैसा कि किसीने कहा है—"प्रत्येक बुरी बातमें भी कुछ न कुछ गुण, कुछ न कुछ भलाई, हुआ करती है।" इसी लिए दरिद्रतासे भी कुछ न कुछ अच्छी बात निकाली जा सकती है। दरिद्रावस्थामें मनुष्यके साहस, सहनशीलता और अध्यवसाय आदिका अच्छा विकास हो सकता है। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति कुछ समय तक दरिद्रावस्थामें रह चुकता है उसमें जन्मसे अमीर रहनेवालोंकी अपेक्षा परोपकार, दया, सहानुभूति आदिका भाव अपेक्षाकृत कहीं अधिक होता है। किसीने कहा है,—

शक्तिं करोति सञ्चारे शीतोष्णे मर्षयत्यपि।
दीपयत्युदरे वह्निं दारिद्र्यं परमौषधम्॥
ऐश्वर्यतिमिरं चक्षुः पश्यन्नपि न पश्यति।
तस्य निर्मलतायां तु दारिद्र्यं परमौषधम्॥

लेकिन ये सब बातें मानते हुए भी अन्तमें यही कहना होगा कि दरिद्रतासे जहाँ तक हो सके मनुष्यको बहुत बचना चाहिए। और विशेषतः उसे स्वयं तो ऐसे काम नहीं करने चाहिए जिनके कारण वह

अच्छी आय होते हुए भी दरिद्र बना रहे। यही दरिद्रता सबसे अधिक भयानक और सबसे अधिक कष्टदायक होती है। यही मनुष्यको कायर बनाती है, यही उसके आत्मविश्वास और आत्मगौरवका नाश करती है और यही उसे सदा घोर विपत्तियोंमें डाले रहती है। अतः ऐसे लोगोंका तो यह मुख्य कर्तव्य है ही कि वे अपनी आर्थिक स्थिति सदा ठीक रक्खें; परन्तु जो लोग जन्मसे ही बिलकुल दरिद्र हों और जिनके खाने तकका भी ठिकाना न हो, उन लोगोंको भी कमसे कम कभी हताश और निराश न होना चाहिए। क्योंकि संसारमें ऐसे भी हजारों लाखों आदमी हो गये हैं जिनका जन्म तो घोर दरिद्रतामें हुआ था परन्तु जो अपने परिश्रम, अध्यवसाय और बुद्धिमत्तासे बहुत धनी हो गये हैं। ऐसे लोगोंकी अवस्थासे गरीबोंको अच्छी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और पूर्ण उत्साह तथा मनोयोगपूर्वक वर्तमान बिकट परिस्थितिसे निकलकर अपनी अवस्था सुधारनेका प्रयत्न करना चाहिए।

जब मनुष्यमें अपनी योग्यता और शक्तिपर विश्वास नहीं रह जाता, तब धीरे धीरे उसमें उन गुणोंका भी ह्रास होने लगता है जिनके कारण वह सफलमनोरथ हो सकता है अथवा उन्नति कर सकता है और ऐसी अवस्थामें उसका जीवन दूभर हो जाता है। तब न तो उसमें किसी प्रकारकी उच्चाकांक्षा रह जाती है, न कार्य करनेकी शक्ति रह जाती है, न अपने सम्बन्धमें विशेष चिन्ता रह जाती है, न काम करनेका ढंग रह जाता है और न कोई दूसरी ऐसी बात रह जाती है जिससे सफल होनेमें सहायता मिलती है। परिणाम यह होता है कि वह एक ऐसे ढालुए स्थान पर पहुँच जाता है जहाँसे वह बराबर नीचे ही गिरता जाता है और उठकर ऊपर नहीं जा सकता। अतः दरिद्रोंके लिए सबसे अधिक आवश्यक बात यही है कि वे अपने आपको उस

ढालुए स्थानपर पहुँचनेसे बचावें और अपनी मानसिक अवस्था ऐसी न बना लें जिसमें फिर किसी प्रकारकी उन्नति करनेकी स्वप्नमें भी आशा नहीं रह जाती।

स्वयं दरिद्रता उतनी भयानक और नाशक नहीं है जितना भयंकर और नाशक दरिद्रताका विचार है। यह समझना कि हम दरिद्र हैं और सदा दरिद्र ही बने रहेंगे, मनका यही भाव सबसे अधिक नाशक होता है। ऐसे भावका परिणाम यही होता है कि मनुष्य सदा दरिद्रताकी ओर इतनी दीनताके साथ बढ़ता जाता है कि उसे उसकी ओरसे पराङ्मुख होकर उससे पीछा छुड़ानेका साहस ही नहीं होता। यही बिलकुल उलटी दिशाकी ओर बढ़ना है। इससे न तो मनुष्यमें किसी प्रकारकी आकांक्षा रह जाती है और न कार्य करनेकी कोई शक्ति। आदमी जब तक अपने मनमें इस प्रकारके भाव रखता है और जब तक वह दरिद्रताके वातावरणसे घिरा रहता है, तब तक उसका कार्यक्षेत्र बहुत ही परिमित रहता है और वह उस संकुचित सीमाके बाहर निकल ही नहीं सकता।

जब तक कोई आदमी अपने आपको दीन हीन भिखारी समझता रहता है और अपनी उसी दीन हीन अवस्थाके विचारोंमें मग्न रहता है, तब तक वह सिवाय भिखारी होनेके और कुछ हो ही नहीं सकता। जब तक वह विफलताका ही विचार और भाव अपने मनमें रखता है, तब तक वह कभी सफल हो ही नहीं सकता। यदि हम दरिद्रताके भयसे सदा भयभीत रहेंगे, सदा इस बातकी शंका किया करेंगे कि वृद्धावस्थामें हमें भूखों मरना पड़ेगा तो हमारे दरिद्र बने रहने और वृद्धावस्थामें भूखों मरनेकी सम्भावना बनी ही रहेगी। क्योंकि यह भय

और आशंका सदा हमारे साहसका नाश किया करेगी, सदा हमारे आत्मविश्वास और आत्मगौरवपर आघात किया करेगी और हमें कठिनाइयोंका वीरतापूर्वक सामना करनेमें उत्तरोत्तर असमर्थ करती रहेगी।

चुम्बक सदा बिलकुल ठीक अवस्थामें रहना चाहिए और उसके ठीक होनेका यही प्रमाण है कि वह अपने जैसी चीजोंको बराबर अपनी ओर खींचा करे। मनुष्यके शरीरमें केवल एक ही ऐसा उपकरण है जो संसारकी सब चीजोंको अपनी ओर बराबर खींचा करता है और वह उपकरण मन है। परन्तु मन सदा वैसा ही बना रहता है जैसे कि विचार हुआ करते हैं। यदि हम सदा भयभीत रहेंगे और मनमें दरिद्रताका ही भाव बनाए रक्खेंगे तो फिर हम चाहे कितना ही अधिक परिश्रम क्यों न करें, न तो हम कभी साहसी हो सकेंगे और न कभी धनवान् बन सकेंगे। दरिद्रताका विचार सदा दरिद्रताको ही अपनी ओर आकर्षित करता रहेगा।

हम जिस ओर अपना मुँह रक्खेंगे उसी ओर अग्रसर होंगे। यह कभी सम्भव नहीं है कि हम मुँह तो रक्खें पश्चिमकी ओर और चलें पूर्वकी ओर। ठीक इसी प्रकार यदि हम अपना मुँह दरिद्रताकी ओर रक्खेंगे तो हम कभी धनवान् न हो सकेंगे। जब कि हमारा हर एक कदम उसी सड़कपर पड़ेगा जो हमें विफलताकी ओर ले जाती है, तो हमें कभी सफलता-मन्दिर तक पहुँचनेकी आशा न करनी चाहिए।

यदि हम अपने मनमें बसनेवाली दरिद्रतापर विजय प्राप्त कर लें, तो फिर हमें बाह्य दरिद्रतापर विजय प्राप्त करनेमें कुछ भी देर न लगेगी। क्योंकि ज्यों ही हम अपना मानसिक भाव बदल लेंगे त्यों ही

हमारी शारीरिक शक्तियोंमें भी उसीके अनुसार परिवर्तन हो जायगा। दरिद्रताके विचार हमें सदा दरिद्रतासे ही सम्बद्ध रखते हैं और हमारे लिए दरिद्रतापूर्ण परिस्थितियाँ ही उत्पन्न करते हैं। क्योंकि जब हम दिन रात दरिद्रताका ही विचार करते हैं, दिन रात उसीके सम्बन्धमें बात चीत करते हैं और दिन रात उसीमें जीवन व्यतीत करते हैं, तब हम मानसिक दृष्टिसे भी बिलकुल दरिद्र हो जाते हैं और यही सबसे अधिक निकृष्ट दरिद्रता है।

यदि हम धनवान् होना चाहते हों तो हमें अपने विचारोंको भी सम्पन्नताकी ओर ही प्रवृत्त करना चाहिए। पर जब हमारी दृष्टि दरिद्रतापर ही गड़ी होगी तब हम सम्पन्नता तक कैसे पहुँच सकते हैं। आजकल ऐसे बहुत से पढ़े लिखे और सशक्त आदमी दिखलाई पड़ते हैं, जो यदि अपने विचारोंको ठीक रक्खें और अपनी शक्तियोंका ठीक ठीक उपयोग करें, तो संसारमें बहुत कुछ काम कर सकते हैं। और यदि कोई बहुत बड़ा काम न करें तो भी कमसे कम अच्छी तरह अपनी जीविकाका प्रबन्ध कर सकते हैं। परन्तु उनमें अपनी दरिद्रता, हीनता और असमर्थता आदिका भाव इतना कूट कूटकर भरा होता है कि वे भूखों मरते हैं और दर दर मारे मारे फिरते हैं। दस महीने दस रुपए महीनेकी नौकरी ढूँढ़ते हैं, पर नौकरी कहीं पेड़ोंमें फलती तो है ही नहीं, जो हर एक आदमीको सहजमें मिल जाया करे। ऐसे लोगोंके हृदयमें न तो अपनी योग्यताके प्रति विश्वास होता है और न अपनी सफलतापर। वे बिलकुल अनमने होकर और बहुत ही हताश तथा निरुत्साह होकर दो चार छोटे मोटे कामोंमें हाथ भी डालते हैं, पर उनके मनका भाव ऐसा होता है कि वे कुछ कर ही नहीं सकते और अन्तमें विफल होकर कहने लगते हैं कि हमारे भाग्यमें सफलता बदी ही

नहीं है, ईश्वरने हमें सदा दरिद्र दीन और दुःखी रहनेके लिए ही बनाया है। बस, चलो हो चुका। भला ऐसे लोग संसारमें क्या काम करेंगे और कैसे सफलता प्राप्त करेंगे। परन्तु यदि वही लोग अपने मनका भाव बदल दें और समझने लग जायँ कि हमारा जीवन सफल होनेके लिए ही है और हम जिस काममें हाथ डालेंगे उसीमें सफलमनोरथ होंगे, तो सफलता उनके आगे दासीकी भाँति हाथ बाँधकर आ खड़ी होगी। इसके लिए आवश्यकता है केवल अपने मनका भाव बदलनेकी और उत्साहपूर्वक काममें लग जानेकी। पर न जाने क्यों लोग इसीसे सबसे अधिक घबराते हैं।

एक सज्जन थे जिन्होंने बहुत परिश्रम करके और बहुत कठिनतासे पहले बी० ए० की उपाधि प्राप्त की थी और तब किसी प्रकार वकालत भी पास कर ली थी; परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी वे किसी प्रकार अपना निर्वाह नहीं कर सकते थे। न तो उनके किए वकालत ही हो सकती थी और न कहीं उन्हें छोटी मोटी नौकरी ही ढूँढ़े मिलती थी। यद्यपि उन्होंने कालेजमें रहकर अनेक बहुत बड़ी बड़ी बातोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया था; परन्तु यह सीधी सी बात उनकी समझमें अभी तक नहीं आई थी कि ईश्वर केवल पात्रापात्रोंका विचार करके ही किसीको कुछ देता है। जब वे चारों ओर व्यथ भटककर बिलकुल निराश हो गए, तब अन्तमें एक दिन एक ज्योतिषीके पास जा पहुँचे। उन्होंने ज्योतिषीसे कहा—महाराज मैंने बहुत से काम किए, पर मुझसे कोई काम पूरा न हो सका। न किसीमें यश ही मिला और न धन ही। अब तो मुझे यही जान पड़ता है कि मैं जन्मदरिद्री हूँ। मेरा जीवन दरिद्रतामें ही बीतनेको है। मैंने अब तक जो कुछ पढ़ा लिखा, वह सब व्यर्थ गया। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि इस जीवनमें मैं कभी

सुखी हो ही नहीं सकता। आप भी जरा मेरी जन्मकुंडली और ग्रहों-पर विचार कर देखें। ज्योतिषीजी बहुत चालाक और समझदार थे। वे थोड़ी देर तक उसकी कुंडली देखते रहे और कुछ थोड़ी बहुत गणना करते रहे और अन्तमें उन्होंने उससे कह दिया कि—हाँ भाई, मुझे भी कुछ ऐसा ही जान पड़ता है। और वास्तवमें ज्योतिषीजीका कहना बहुत ठीक भी था; क्योंकि जो व्यक्ति मानसिक दरिद्रतासे पूरी तरहसे परास्त हो चुका है, उसे ज्योतिषी इसके सिवा और कुछ कह ही क्या सकता है?

सबसे पहली बात तो यह है कि यदि तुम सम्पन्न होना चाहते हो तो तुम्हें सब प्रकारकी शंकाओंसे अपना पीछा छुड़ाना चाहिए। जब तक तुममें और तुम्हारी आकांक्षाओंके बीचमें शंकाका व्यवधान रहेगा, तब तक तुम उन आकांक्षाओंकी पूर्त्ति तक पहुँच ही नहीं सकते। सफलमनोरथ होनेके पहले तुम्हें इस बातका पूरा पूरा विश्वास और निश्चय होना चाहिए कि तुम सफल होगे और अवश्य होगे। परन्तु जब तक तुम्हारी यह धारणा रहेगी कि हम कभी सफल न होंगे या जब तक यह समझते रहोगे कि हम कभी धनवान् न होंगे, तब तक तुम न तो सफल ही हो सकते हो और न धनवान् ही। जो लोग सदा हर बातमें यही कहा करते हैं कि यह काम तो हमसे न हो सकेगा, उनसे फिर सचमुच कभी कोई काम नहीं हो सकता। एक आत्मविश्वास ही ऐसी जादूकी कुंजी है जिससे सफलताके सब द्वार खुल सकते हैं। 'क्या करें कैसे करें' के अष्टाक्षरी मन्त्रके जपसे लक्ष्मी कभी प्रसन्न नहीं हो सकती।

जो लोग अपने रोजगारके सम्बन्धमें सदा यही कहा करते हों कि इस रोजगारमें कुछ मिलगत नहीं है, इसमें कुछ रक्खा नहीं है, इसमें कुछ

बचत नहीं है, ऐसे लोग कभी उस रोजगारसे लखपती या करोड़पती नहीं हो सकते। जो आदमी सदा नीचेकी ही ओर देखता रहेगा, वह भला ऊपरकी ओर कैसे जा सकेगा? आज तक जितने बड़े आदमी हो गए हैं वे कभी यह कहते हुए नहीं सुने गए कि—क्या कहें, आजकलका वक्त ही खराब हो रहा है; सब जगह नुकसान ही नुकसान दिखाई देता है। आदि आदि। जिस आदमीका हृदय और विचारक्षेत्र ही संकुचित होगा उसकी अवस्था क्या सुधरेगी? धन तो सदा साहसी, परिश्रमी, उद्योगी और उदार तथा व्यापक मनोवृत्तियोंवाले लोगोंको मिला करता है। किसीने लक्ष्मीकी उपमा शेरनीके दूधसे देते हुए कहा है कि शेरनीका दूध पहले तो जल्दी किसीको मिलता ही नहीं और यदि सौभाग्यवश किसीको मिल भी गया, तो फिर सोनेके बरतनके सिवा और किसी बरतनमें ठहरता ही नहीं, वह तुरन्त फट जाता है। ठीक यही दशा धनकी भी है। पहले तो वह किसीको जल्दी मिलता ही नहीं और यदि संयोगवश किसी प्रकार उत्तराधिकार आदिके द्वारा किसीको मिल भी गया तो वह उपयुक्त पात्रके पास ही रह सकता है, अपात्र या कुपात्रके पास नहीं ठहर सकता। इसलिए जो लोग दरिद्रतासे पीछा छुड़ाकर सम्पन्न बनना चाहते हों उन्हें उचित है कि वे पहले अपने आपमें पात्रता उत्पन्न करनेका उद्योग करें। क्योंकि बिना पात्रता आए लक्ष्मी कभी आ ही नहीं सकती और यदि किसी प्रकार आ भी जाय तो ठहर नहीं सकती। अतः जो लोग सम्पन्न होना चाहते हों उन्हें सब प्रकारकी आशंकाएँ, भय, सोच और दुष्ट विचारोंका परित्याग करके अपने आपमें पात्रता उत्पन्न करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

एक आदमी था जो पहले बहुत दिनों तक बहुत गरीब था और जिसके खाने तकका कोई ठिकाना नहीं था। पर कुछ दिनों बाद वह बहुत

धनवान् हो गया। एक बार पूछने पर उसने मूल पुस्तकके लेखकसे कहा था कि जब बहुत दिनों तक परम दरिद्र रहनेके कारण मैं उकता गया, तब मैंने अपने मनमें यह दृढ निश्चय कर लिया कि अब मैं कभी दरिद्र न रहूँगा और अवश्य धनवान् बन जाऊँगा। मैंने उस समय यह बात बहुत अच्छी तरह समझ ली थी कि दरिद्रता और कुछ नहीं, वास्तवमें एक मानसिक रोग है और जिस प्रकार हो सके मुझे उससे अपना पीछा छुड़ाना चाहिए। इसके उपरान्त उसने अपनी शक्तियोंपर विश्वास करने और सदा धनवान् होनेकी बात सोचनेका अभ्यास आरम्भ किया। वह अपने हृदयमें बराबर यही समझने लगा कि मैं अवश्य सम्पन्न होनेमें समर्थ हूँ और मैं भी संसारमें कोई विशिष्ट स्थान प्राप्त करनेके लिए उत्पन्न किया गया हूँ। इस प्रकार निरन्तर प्रयत्न करके उसने अपने मनसे दरिद्रताका भाव निकालकर बिलकुल दूर कर दिया। वह कभी स्वप्नमें भी इस बातका विचार नहीं करता था कि मैं किसी काममें विफल होऊँगा। वह सदा सफलता और सम्पन्नताकी ही बातें सोचा करता। उसने विफलताकी ओरसे मुँह फेर लिया और सफलता तथा सम्पन्नताकी ओर अग्रसर होना आरम्भ कर दिया। मानसिक भावोंमें इस प्रकारके परिवर्तनका परिणाम यह हुआ कि बहुत शीघ्र ही वह धनवान् हो गया। परन्तु पाठकोंको यह न सोचना चाहिए कि अपने मनका इस प्रकार भाव बदलनेसे ही वह सम्पन्न हो गया। नहीं, उसने इसके अतिरिक्त अपने आपमें लक्ष्मीके पात्र होनेकी योग्यता भी सम्पादित कर ली। जहाँ तक हो सकता था वह सदा छोटी छोटी रकमें भी बचानेका प्रयत्न करता था। पहले वह बहुत ही सस्ती और साधारण चीजें खाया करता था और आवश्यकता पड़नेपर मीलों पैदल चला जाता था; पर कभी गाड़ी या ट्राम आदिपर न बैठता था; परन्तु जबसे उसने

अपने मानसिक भाव बदलनेका प्रयत्न आरम्भ किया तबसे वह अच्छे अच्छे भोजनालयोंमें भोजन करनेके लिए जाने लगा और भले आदमियोंकी तरह अच्छे मकानोंमें रहने लगा। वह सदा अच्छे अच्छे लोगोंसे मिलने लगा और समाजमें अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेका प्रयत्न करने लगा। इन सब बातोंका परिणाम यह हुआ कि उसे बहुत सी नई नई बातें माल्रुम होने लगीं और बहुतसे लोगोंसे उसे अनेक प्रकारकी सहायता मिलने लगी। अब उसे यह बात अच्छी तरह माल्रुम हो गई कि पहलेके मेरे सब कष्टोंका कारण मेरे संकुचित विचार ही थे जो मुझे किसी प्रकार आगे बढ़ने ही न देते थे। इन सब बातोंका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनोंमें वह बहुत ही सम्पन्न हो गया। उसने अपने हृदयसे दरिद्रताको निकालकर भगा दिया था और इसी लिए अब दरिद्रता उसके पास भी न आ सकती थी।

जिन लोगोंका हृदय सदा बहुत ही संकुचित और दुःखी रहता है वे कभी सम्पन्न नहीं हो सकते। यदि ऐसे लोग कभी कुछ धन एकत्र भी कर लेते हैं तो वह बहुत ही कंजूसी करके और अनेक प्रकारके शारीरिक तथा मानसिक कष्ट झेलकर। पर इस प्रकार कुछ धन एकत्र कर लेना भी सदा निर्धन बने रहनेके ही समान है। यदि हमारे पास धन है और हम उसका कोई सुख नहीं उठा सकते, तो हमारे लिए उस धनका होना और न होना दोनों बराबर हैं। यदि आप अपने समाजमें ढूँढ़ेंगे तो आपको कुछ ऐसे आदमी भी मिल जायँगे जिनके पास हजारों लाखों रुपये होंगे, पर जो स्वयं बीमार पड़ने पर अथवा अपनी स्त्री या बच्चेके बीमार पड़ने पर एक पैसा भी खर्च करनेके लिए तैयार न होंगे। ऐसे लोग भी मिलेंगे जो पासमें यथेष्ट धन होने पर भी जाड़ेमें अच्छा नया और गरम कपड़ा नहीं बनवाते और पुराने रद्दी और फटे हुए

कपड़ोंमें ही बड़े कष्टसे दिन बिताया करते हैं। ऐसे लोग भी मिलेंगे जो मर जाना भी अच्छा समझेंगे पर पासके दस पाँच रुपए कभी न खर-चेंगे। यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो उनमें और परम दरिद्रोंमें कोई अन्तर नहीं है। यदि कोई अन्तर है तो वह केवल यही कि दरि-द्रके पास बिलकुल धन नहीं होता और कंजूस सम्पन्नके पास अपने हृदयको बोध करनेके लिए कुछ धन होता है। और नहीं तो जिस प्रकार एक दरिद्र अपने पास कुछ भी धन न होनेके कारण सदा अनेक प्रकारके शारीरिक और मानसिक कष्ट उठाया करता है, उसी प्रकार वह कंजूस सम्पन्न भी कष्ट उठाया करता है। दूसरी बात यह है कि कंजूस सम्पन्न धनहानिके भयसे अधिक सम्पन्न भी नहीं हो सकता। उसे तो सदा यही चिन्ता लगी रहती है कि कहींसे मेरा एक पैसा निकल न जाय और जहाँ तक हो सके, कौड़ी कौड़ी करके ही सही, इसमें कुछ और वृद्धि हो जाय। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि जिन लोगोंके इस प्रकारके विचार होते हैं, वे आर्थिक दृष्टिसे यों देखनेमें भले ही कुछ सफल जान पड़ते हों; पर वास्तवमें अपेक्षाकृत बहुत ही कम सफल होते हैं। यदि वही लोग अपना स्वभाव थोड़ा बदल दें और अपना हृदय कुछ उदार और विस्तीर्ण कर लें, तो थोड़े ही दि-नोंमें बहुत अधिक सम्पन्न हो सकते हैं। वास्तविक बात यही है कि केवल विशाल और उदार हृदय ही धनको यथेष्ट मात्रामें अपनी ओर आकृष्ट करता है। संकुचित और दुःखी हृदयसे तो वैभव आप ही कोसों दूर भागता है। सदा प्रसन्न रहिए, सदा अपने हृदयमें अच्छी अच्छी आशाएँ रखिए, आपको अवश्य सफलता होगी। सदाशा ही मानो सफलताकी जननी है। कदाशासे तो उसका नाश ही होता है।

सदाशा ही मानो मनुष्यका वास्तविक जीवन है। मनुष्यको सुखी और सफल बनानेके लिए जितने तत्त्वोंकी आवश्यकता होती है, वे सब सदाशामें बीज रूपसे वर्तमान रहते हैं। इसके विपरीत कदाशा या निराशा परम नाशक है और उसकी उपमा मृत्युसे दी जा सकती है। यदि दुर्भाग्यवश किसी आदमीकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाय, उसकी तन्दुरुस्ती भी जवाब दे दे, यहाँ तक कि उसकी मान मर्यादा भी न रह जाय; परन्तु यदि उसे अपनी शक्तियोंका भरोसा होगा और उसकी दृष्टि सदा ऊँची रहेगी, तो कभी न कभी वह फिर सफल सम्पन्न होगा, उसके दिन फिर फिरेंगे। अतः प्रत्येक मनुष्यको सदा अपने हृदयमें अच्छी और ऊँची आशाएँ रखनी चाहिए। कभी निराश न होना चाहिए और कभी यह न समझना चाहिए कि अब मुझसे कुछ भी न हो सकेगा और मेरे नाशके दिन आ गए हैं।

जब तक हमारे हृदयमें निराशा और सन्देह बना रहेगा, तब तक हमारा विफलमनोरथ होना भी निश्चित रहेगा। अतः यदि आप दरिद्रतासे अपना पीछा छुड़ाना चाहते हों और सम्पन्न होना चाहते हों, तो आपको उचित है कि आप अपने हृदयकी उत्पादक शक्तिका नाश न होने दें। इसके लिए केवल इसी बातकी आवश्यकता है कि आप सदा अच्छी आशा रक्खें, सदा प्रसन्न रहें और सदा अच्छी अच्छी बातोंका ही विचार किया करें। कारीगर जब कोई मूर्ति बनाना चाहता है तब पहले वह उसका एक साँचा या ढाँचा बना लेता है। यदि आप सम्पन्नता और सफलता प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको भी पहले अपने मनमें उसका एक साँचा या ढाँचा तैयार करना पड़ेगा। यदि आप अपने पुराने दरिद्रतापूर्ण संसारको छोड़कर नए सम्पन्नतापूर्ण संसारमें जाकर रहना चाहते हैं, तो पहले आपको उस संसारका स्वरूप अपनी दृष्टिके

सामने खड़ा करना चाहिए। जो लोग सब प्रकारसे निराश हो चुके हों, उन्हें सबसे पहले इस बातका ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए कि अपने विचारोंमें थोड़ा सा शुभ परिवर्तन करते ही हम बहुत बड़ी शक्ति सम्पादित कर सकते हैं, और जब उन्हें इस बातका ज्ञान हो जायगा तब उनका सारा जीवनक्रम ही बदल जायगा और वे एक नए संसारमें नए उत्साह तथा नए जीवनके साथ प्रवेश कर सकेंगे।

विलायतमें एक परिवार था जिसके सदस्योंने इसी प्रकार अपनी मानसिक अवस्थामें परिवर्तन करके अपनी संसारिक अवस्थामें आश्चर्यजनक परिवर्तन कर लिया था। पहले वे लोग बहुत ही दुर्दशाग्रस्त थे और अपनी दुर्दशा तथा दुरवस्थासे इतने अधिक निराश हो गए थे कि वे समझने लगे थे कि सफलता और सम्पन्नता केवल दूसरोंके लिए ही है, हमारे लिए उसकी सृष्टि ही नहीं हुई है। उन्हें इस बातका दृढ़ विश्वास हो गया था कि हम सदा दीन हीन दशामें ही रहनेके लिए बनाये गए हैं। इसका परिणाम यह हुआ था कि वे लोग दरिद्रता और दुर्भाग्यके मूर्तिमान् स्वरूप जान पड़ते थे। यहाँ तक कि वे जिस मकानमें रहते थे, वह मकान भी स्वयं दरिद्रताका ही आवास जान पड़ता था। बहुत ही प्रसन्नचित्त आदमी भी उस मकानमें या उन लोगोंके बीचमें पहुँचकर परम दुखी हो जाता था। उन लोगोंमें अथवा उनके मकानमें एक भी बात ऐसी न थी जो किसीके हृदयमें कुछ भी प्रसन्नता उत्पन्न कर सकती। भला ऐसी परिस्थितिमें रहकर वे क्या उन्नति कर सकते थे और कैसे अपनी अवस्था सुधार सकते थे! अन्तमें एक दिन लड़कोंकी माताने कहीं पढ़ा कि दरिद्रता अधिकांशमें एक प्रकारका मानसिक रोग है। सिर्फ इतनी सी ही बातका उसपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और उसने अपनी आदत तथा अपने विचार बदलनेका प्रयत्न आरम्भ

किया। धीरे धीरे उसने अपने हृदयसे सब प्रकारकी निराशाओं, सब प्रकारकी बुरी भावनाओं, सब प्रकारके दुःखों और सब प्रकारके बुरे विचारोंको निकाल बाहर किया और वह सदा प्रसन्न रहने तथा अच्छी अच्छी आशाएँ करने लगीं। इन सब बातोंका परिणाम यह हुआ कि उसमें और उसके बाल बच्चोंमें एक नए प्रकारका जीवन और नए प्रकारका उत्साह संचार करता हुआ दिखलाई देने लगा। अब उन लोगोंको देखकर किसीका हृदय सहसा दुखी न होता था। धीरे धीरे सारा घर प्रसन्नतापूर्ण जान पड़ने लगा। मानो सारा घर किसी घोर अन्धकारमेंसे निकलकर बहुत ही सुंदर प्रकाशमें आ गया। कदाशा या दुराशाका स्थान सदाशाने ले लिया। अब घर भरकी सभी आदतें और सभी बातें बदल गईं। सब लोग प्रसन्नचित्त और साफ सुथरे रहने लगे। मकानकी भी बहुत कुछ सफाई हो गई। इस प्रकार अन्दर बाहर सब स्वच्छ हो गया। सब लोगोंने दरिद्रता और विफलताकी विकराल मूर्तिको अपने हृदयसे भी और अपने घरसे भी निकालकर बाहर फेंक दिया और प्रसन्नता तथा उत्साहपूर्वक लक्ष्मी देवीका आवाहन आरम्भ कर दिया।

मानसिक भावों और बाह्य परिस्थितियोंके बदलते ही धीरे धीर सब लोग उस अवस्थाको पहुँचने लगे जिस अवस्थाको साधारणतः संसार सौभाग्यपूर्ण मानता है। बहुत अच्छी तरह रहनेके कारण लड़कोंका पिता अधिक और अच्छा काम करने लगा जिससे जल्दी ही उसकी बहुत कुछ तरक्की हो गई। लड़कोंके सम्बन्धमें भी यही बात हुई। दो ही तीन वर्षोंमें स्वयं उन लोगोंका भी और उनके घरका भी स्वरूप इतना अधिक परिवर्तित हो गया कि सहजमें कोई उन्हें पहचान ही न सकता था। घर और उसमें रहनेवालोंका बिलकुल काया-पलट हो गया,

दुःख तथा दरिद्रताका नाश हो गया और सुख तथा सम्पन्नताने आकर घरमें डेरा डाल दिया। और यह सारी करामात केवल विचारोंके परिवर्तनकी ही थी।

हम जो कुछ बनना चाहते हों उसीके अनुसार हमें अपना कार्य आरम्भ कर देना चाहिए। यह कार्य आरम्भ करना ही मानो उस बातका अभ्यास करना है। यदि हम धनवान् होना चाहते हों तो हमें अपने आपको धनवान् समझने लगना चाहिए और अपने हृदयके भावोंको धनवानोंके भावोंके समान बनाना चाहिए। हमें यह बात अच्छी तरह प्रमाणित करके दिखला देनी चाहिए कि हम धनवान् होनेके उपयुक्त हैं और बराबर धनवान् होते जा रहे हैं। इस बातको और अधिक स्पष्ट करनेके लिए हम छोटासा उदाहरण देते हैं। मान लीजिए कि कोई बहुत अच्छा नट है जो रंगभूमिमें एक ऐसे व्यक्तिका नाट्य करना चाहता है जो बहुत ही उन्नतिशील है और जिसका हाथ लगते ही मिट्टी भी सोना हो जाती है। अब यह नट बहुत ही फटे पुराने कपड़े पहने हुए, सिर झुकाए हुए, निराशहृदय और बिलकुल मुरदा सा होकर रंगभूमिमें आता है और आकर डरता तथा झिझकता हुआ कहने लगता है—मैंने जो काम अपने ऊपर उठाया है वह बहुत बड़ा है और मैं समझता हूँ कि मैं इस कामके लिए बिलकुल ही उपयुक्त नहीं हूँ। मैंने अपने ऊपर यह भार लेकर बहुत बड़े दुस्साहसका काम किया है। और लोग तो धनवान् हो चुके हैं, पर म तो सदासे यही समझता आ रहा हूँ कि मैं कभी सम्पन्न या धनवान् नहीं हो सकता। मैं बहुत साधारण आदमी हूँ और मैंने संसारका कुछ बहुत अधिक अनुभव भी नहीं प्राप्त किया है। स्वयं अपने आपपर और अपनी शक्तियोंपर भी मेरा विश्वास नहीं है। मेरा यह सोचना ठीक नहीं है कि मैं कभी संसारमें सम्पन्न या धनवान् हो सकूँगा। आदि

आदि। भला बतलाइए तो सही कि ऐसे नटके इस प्रकारके कथनका दर्शकोंपर क्या प्रभाव पड़ेगा? क्या वे कभी यह समझ सकते हैं कि यह आदमी धनवान् हो सकेगा या अपनी शक्तियोंका पूरा पूरा उपयोग कर सकेगा? क्या उसके इस कथनसे लोग यह समझ सकेंगे कि यह लक्ष्मीका पात्र होनेके योग्य है? क्या सब दर्शक लोग अपने मनमें यह न कहेंगे कि यह आदमी कभी सम्पन्न न हो सकेगा और सदा दरिद्र बना रहेगा? क्या वे उसकी धनवान् होनेकी कामनापर न हँसेंगे और उसके साहसको दुस्साहस न समझेंगे?

मान लीजिए कि कोई ऐसा नवयुवक है जो धनवान् तो होना चाहता है, पर सदा अपने मनमें यही सोचा करता है कि मैं कभी धनवान् न हो सकूँगा। वह सबके सामने अपनी अयोग्यता और असमर्थताका ही बखान किया करता है और लोगोंसे कहता फिरता है कि मेरा भाग्य बहुत ही खराब है और मैं सदा दरिद्र बना रहूँगा। भला आप ही बतलाइए कि क्या ऐसा आदमी कभी धनवान् हो सकता है? जो आदमी दिन रात दरिद्रताकी ही बातें सोचा और कहा करता हो और सब बातोंमें सदा दरिद्र ही बना रहता हो, वह कब सफलता या लक्ष्मीके मन्दिर तक पहुँच सकता है?

हम जिस प्रयासमें लगे हों उसकी सिद्धिके लिए सबसे पहली और आवश्यक बात यह है कि हम अपनी मानसिक स्थिति और प्रवृत्ति भी उसीके अनुकूल बनावें। यदि हम धनवान् होना चाहते हैं तो हमें सबसे पहले यह दृढ़ विश्वास कर लेना चाहिए कि हमारी सृष्टि ही धनवान् होनेके लिए हुई है। उसे समझ लेना चाहिए कि हममें एक ऐसा दैवी अंश है जो हमें सदैव सिद्धि प्राप्त कराता रहेगा और हमें अवश्य ही सम्पन्न बनाकर छोड़ेगा।

प्रत्येक व्यक्तिको अपने मनसे सब प्रकारकी आशंकाएँ और सब प्रकारके भय निकाल डालने चाहिए और अपने हृदयमें दरिद्रता या विफलताकी छाया भी न रहने देनी चाहिए। जब एक बार अपने विचारोंपर हमारा आधिपत्य हो जायगा, जब एक बार हम अपने मनपर प्रभुत्व स्थापित करना सीख लेंगे, तब हम देखेंगे कि सफलता हमारे सामने हाथ जोड़े खड़ी है और हमारे सब काम आपसे आप होते चले जा रहे हैं। उत्साह और विश्वासका अभाव, शंका, भय आदि ऐसे भीषण कीटाणु हैं जिन्होंने हजारों लाखों आदमियोंकी सम्पन्नता और सुखका समूल नाश कर दिया है। यदि सब दरिद्र और दुखी लोग एक बार दरिद्रता और दुःखकी ओरसे अपना मुँह मोड़ लें, अपने मनमें यह बात अच्छी तरह बैठा लें कि हमारी दरिद्रताका नाश हो गया और सदा प्रसन्न तथा सुखी रहने लगें, तो थोड़े ही समयमें इस संसारमें बहुत बड़ा परिवर्तन दिखलाई देने लगेगा।

प्रत्येक बालकको जन्मसे ही यह शिक्षा देनी चाहिए कि वह धनवान् और भाग्यवान् होगा और उसके मनमें यह बात जमा देनी चाहिए कि संसारकी जितनी अच्छी चीजें हैं वे सब उसके लिए मौजूद हैं। यदि बाल्यावस्थासे ही बालकोंको इस प्रकारकी शिक्षा दी जाया करे, तो वे युवक होने पर कभी दुखी या दरिद्र न रह सकेंगे। सम्पन्नता और सुखकी सृष्टि सबसे पहले स्वयं मस्तिष्कमें होनी चाहिए। जब पहले वह विचारमें आ जाती है तभी प्रत्यक्षमें भी आती है।

जब कोई युवक वैद्य हकीम या डाक्टर आदि बनना चाहता है, तो वह आरम्भसे ही इस तरहके लोगोंके पास रहकर चिकित्साशास्त्रकी शिक्षा प्राप्त करने लगता है। वह अपना अधिकांश समय औषधोंके गुण

आदि जानने, उनके सम्बन्धमें जानकारोंसे बातें करने और उसके शास्त्रके अध्ययनमें ही व्यतीत करता है। यदि वह बनना तो चाहता हो वैद्य हकीम या डाक्टर और पढ़ने बैठ जाय कानून, और संग साथ भी वकीलों बैरिस्टरों आदिका रक्खे तो वह चिकित्साशास्त्रका ज्ञाता कैसे हो सकता है? इसी प्रकार जो आदमी सुखी और सम्पन्न होना चाहता हो, उसे भी दिन रात सुख और सम्पन्नताकी ही बातें सोचनी चाहिए। यदि ऐसा न करके वह सदा अपनी दरिद्रता दीनता और दुःख आदिकी ही बातें सोचा करेगा, तो वह फिर कभी सुखी और सम्पन्न नहीं हो सकता। ऐसा होना नितान्त असम्भव है और प्रकृतिके नियमके विपरीत है।

दरिद्रता और दुःखके विचारोंसे हमें सदा दृढ़तापूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिए और परिस्थितियोंपर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहिए। अपने मनम यह विश्वास रखना चाहिए कि हम बुरीसे बुरी परिस्थितियोंपर भी विजय प्राप्त करनेके लिए ही हैं। हमें यह समझ लेना चाहिए कि हम परिस्थितियोंके दास नहीं हैं, बल्कि स्वामी हैं। हमें यह सोचना चाहिए कि संसारमें बहुत सी अच्छी अच्छी चीजें हैं और उनमें हमारा भी हिस्सा है। हम बिना दूसरोंको किसी प्रकारकी हानि पहुँचाए अथवा वंचित किए उन अच्छी चीजोंपर अपना अधिकार कर सकते हैं। इसे हमें अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझना चाहिए और वह अधिकार प्राप्त करनेके लिए हमें कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

दरिद्रताके जितने विचार और लक्षण आदि हैं, हमें उन सबको निर्मूल कर देना चाहिए; यहाँ तक कि अपने वस्त्रों और आचार व्यवहार आदिमें भी कोई चिह्न न रहने देना चाहिए। हमें अपने कार्योंसे लोगों-

पर यह भी प्रमाणित कर देना चाहिए कि हमने सम्पन्न और सुखी होनेका इतना दृढ़ निश्चय कर लिया है कि संसारकी कोई शक्ति हमें सफलमनोरथ होनेसे नहीं रोक सकती। जब हम इतना सब कुछ कर चुकेंगे तब हम देखेंगे कि हममें एक नई शक्ति और नया जीवन आ गया है। उस समय हम एक ऐसे नए संसारमें पहुँच जाँयगे जिसमें सदा सफलता ही सफलता होती है और विफलताका कोई नाम भी नहीं जानता।

४—सम्पन्नता।

एक देशी देहाती कहावत है कि "ईश्वर शकरखोरेको शकर ही देता है।" इस कहावतमें सम्पन्नताका बहुत बड़ा तत्त्व भरा हुआ है। यदि सब लोग यह तत्त्व अच्छी तरह समझ लें तो संसारकी बहुत सी दरिद्रता और दुःखपरम्परा बिलकुल नष्ट हो जाय। कहा है—

यादृशीं भावनां कुर्यात्सिद्धिर्भवति तादृशी।

अपने ध्येय तक पहुँचनेका एक ही मार्ग है और वह यह कि हम अपने उस ध्येयका ही श्रवण करें, उसीका मनन करें और यहाँ तक कि स्वयं ध्येयमय हो जायँ। हमें अपने मनमें खूब अच्छी तरह यह बात समझ लेनी चाहिए—

न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।

और साथ ही इस बातका दृढ़ विश्वास रखना चाहिए कि

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।

समृद्ध होनेका बस यही सबसे अच्छा और वास्तविक मार्ग है। हमें समझ लेना चाहिए कि जब स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने हाथ उठाकर यह उपदेश दिया है, तब फिर हम दरिद्र और दुःखी क्यों रहें। और यदि इतनेपर भी हम दरिद्र और दुःखी ही रहें तो इसमें स्वयं हमारा ही दोष है, किसी दूसरेका नहीं। हमें इस अनन्त विश्वमें व्याप्त पोषक शक्तिसे तादात्म्य कर लेना चाहिए। यह तादात्म्य ही सुख और समृद्धि है और इसके विपरीतकी अवस्था दरिद्रता और दुःख है। यदि हम उस शक्तिसे अपना तादात्म्य नहीं करते और अपने आपको उससे अलग समझते हैं, यदि हम अपने आपको इस विश्वका एक तुच्छ और विच्छिन्न परमाणु समझते हैं और यह मानते हैं कि हममें कोई सृजन शक्ति नहीं है, तो हम कभी सुखी

और सम्पन्न नहीं हो सक्ते। न जाने कहाँसे लोगोंके मनमें यह घातक सिद्धान्त बैठ गया है कि समृद्धि और सुख बहुत थोड़े से लोगोंके भाग्यमें बदा होता है। जान पड़ता है कि लोगोंने यह सिद्धान्त स्थिर करते समय यह सोचा होगा कि सब लोगोंके लिए धनवान् और सम्पन्न होना असम्भव है। उन्होंने समझा होगा कि संसारमें अच्छी और इष्ट वस्तुएँ बहुत थोड़ी हैं और उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले सभी लोग हैं। इसलिए जो लोग दूसरोंके साथ धूर्ततापूर्वक लड़ झगड़कर उन्हें परास्त कर सकेंगे, वही सुखी और सम्पन्न हो सकेंगे। परन्तु यह समझना केवल भ्रमपूर्ण ही नहीं है बल्कि व्यक्तियों और जातियोंकी उन्नति और सुख समृद्धि आदिके लिए बहुत ही घातक है।

विधाताने इस पृथ्वीपर जितने आदमी उत्पन्न किए हैं उतने ही आदमियोंके लिए बल्कि उनसे भी कहीं ज्यादा आदमियोंके भरण पोषणकी सामग्रीकी पहलेसे ही व्यवस्था कर रक्खी है। यदि हम यह समझते हैं कि उसने बहुत ही थोड़ेसे आदमियोंके लिए सुख समृद्धिकी व्यवस्था की है तो मानों हम उसकी सर्वशक्तिमत्ता पर बड़ा भारी लाञ्छन लगाते हैं और यह बतलाना चाहते हैं कि उसमें अधिक आदमियोंको सुखी करनेकी योग्यता ही नहीं है। संसारमें सब लोग जिन जिन पदार्थोंकी कामना करते हैं वे सभी चीजें यहाँ बहुत अधिकतासे उपस्थित हैं। स्वयं उन चीजोंकी कमी नहीं है; कमी है हमारे अध्यवसाय और प्रयत्नकी, हमारी योग्यता और सामर्थ्यकी।

सबसे पहले भोजनको ही लीजिए, जो हमारे जीवनके लिए सबसे अधिक आवश्यक पदार्थ है। क्या कोई कह सकता है कि संसारमें खाद्य पदार्थोंकी कमी है? स्वयं अपने देश भारतवर्षको ही लीजिए जो अनेक कारणोंसे इस समय बहुत दरिद्र हो रहा है। अब

भी इस देशमें इतना अधिक अन्न होता है कि यदि इस देशके सब निवासी अच्छी तरह भर पेट खा लें, तो भी बहुत कुछ बचा रहे। यह बात दूसरी है कि देशकी पराधीनताके कारण वह अन्न देशमें नहीं रहने पाता और दूसरे दूसरे देशोंको चला जाता है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्न होता बहुत अधिक है। यही हाल कपास, चीनी, तेल, घी आदि अन्यान्य आवश्यक वस्तुओंका भी समझ लीजिए। पहले लोग तेलहनसे तेल निकालकर जलाया करते थे। जब पृथ्वीकी आबादी बहुत बढ़ गई और यथेष्ट परिमाणमें तेल मिलनेमें दिक्कत होनेकी नौबत आने लगी, तो उससे बहुत पहले ही मिट्टीका तेल निकल आया। वैज्ञानिकोंने हिसाब लगा-कर देखा कि सारे संसारमें मिट्टीका तेल इतना है और यह इतने दिनोंमें समाप्त हो जायगा। अभी सैकड़ों वर्षोंके लिए तेल था ही कि लोग चिन्ता करने लगे। उसी समय बिजली निकल आई और तेलकी सारी दिक्कत हल हो गई।

पाठक सुप्रसिद्ध विद्वान् न्यूटनसे परिचित होंगे। जब वह मरने लगा तब लोगोंने उससे पूछा कि आपने संसारकी समस्त विद्यामेंसे कितनी विद्या प्राप्त की है? न्यूटनने उत्तर दिया कि अभी तो उसके अथाह और अनन्त सागरमेंसे मुझे पूरा एक कण भी नहीं मिला है। न्यूटनके सम-यसे अब तक विज्ञानमें बहुत कुछ उन्नति हो चुकी है। परन्तु अब भी बड़े बड़े वैज्ञानिक यही समझते हैं कि हमें उस अथाह तथा अनन्त सागरमेंसे एक बूँद भी पूरी नहीं मिली है। ऐसी दशामें यह समझना कि संसारमें अमुक पदार्थ बहुत ही कम मानमें है और वह सब लोगोंको नहीं मिल सकता, मूर्खता नहीं तो और क्या है?

सब प्रकारके विज्ञान और विद्याएँ दिन परदिन उन्नति करती जा रही हैं और लोगोंके लिए अधिकाधिक द्रव्य उत्पन्न करनेकी चिन्तामें

लगी हुई हैं। पहले जितनी भूमिसे दस मन अन्न उत्पन्न होता था अब उतनी ही भूमिसे सौ मन अन्न उत्पन्न करनेके उपाय सोचे और निकाले जा रहे हैं और तिसपर अभी आधुनिक विज्ञानकी दृष्टिसे कृषिविद्याका बिलकुल आरम्भ ही है। यही बात अन्यान्य द्रव्योंके सम्बन्धमें भी समझ लीजिए। तात्पर्य यह कि उस अनन्त ईश्वरकी इस सृष्टिमें सभी चीजें अनन्त और आवश्यकतासे कहीं अधिक हैं। स्वयं ईश्वर ही हम सबी लोगोंको सुखी और सम्पन्न बनाना चाहता है और उसने हमारे लिए पहलेसे ही आवश्यकतासे बहुत अधिक सामग्रीकी व्यवस्था कर रक्खी है। मनुष्य जितनी चीजोंकी कामना कर सकता है, वे सब चीजें और उनके अतिरिक्त और भी बहुतसी चीजें इस पृथ्वीमें बहुत पहलेसे ही मौजूद हैं। हम जितनी चीजें अपने उपयोगमें ला सकते हैं उससे कहीं अधिक चीजें परमात्मा या प्रकृति पहलेसे ही उत्पन्न कर रखती है। यदि किसी बहुत बड़े राजा महाराजा या सम्राट्का राजकुमार बहुत ही दीन हीन अवस्थामें पहाड़ों और जंगलोंमें भटकता फिरता हो, तो हमें समझ लेना चाहिए कि उसके सम्बन्धमें कुछ न कुछ विपरीत बात हुई है। कोई न कोई ऐसी खराबी आई है जिसके कारण उसे ऐसा करना पड़ रहा है। इसी प्रकार जिन लोगोंके लिए परमात्माने इतने अधिक पदार्थोंकी व्यवस्था कर रक्खी है, वे लोग यदि अन्न बिना कष्ट उठावें और भूखों मरें तो समझ लेना चाहिए कि उनमें भी कोई न कोई दोष या खराबी आ गई है। जब हम इतने सम्पन्न संसारमें रहकर भी अपने जीवन-निर्वाहकी अच्छी तरह व्यवस्था न कर सकें, तो इसमें अवश्य हमारा कुछ न कुछ दोष है।

हमारी सृष्टि सदा प्रसन्न और सुखी रहनेके लिए ही हुई है। परन्तु यदि हम दुखी और दरिद्र रहते हैं तो इसका कारण यही है कि हम इस बातपर विश्वास नहीं करते कि प्रकृतिने हमारे लिए अनन्त द्रव्योंकी

व्यवस्था कर रक्खी है। इस प्रकार मानो हम अपना वह द्वार ही बन्द कर लेते हैं जिस द्वारसे प्राकृतिक पदार्थ हमारे पास तक पहुँचते हैं। दूसरे शब्दोंमें हम यह बात इस प्रकार कह सकते हैं कि हम आकर्षणके नियमोंका पालन नहीं करते। हममें अविश्वासकी मात्रा इतनी अधिक होती है कि हम अपनी ओर आती हुई चीजोंको भी ग्रहण करनेके योग्य नहीं रह जाते। पदार्थोंके आधिक्य और प्राप्तिके ये नियम उतने ही ठीक और निश्चित हैं जितने कि गणितके सिद्धान्त हैं। यदि हम उन नियमोंका ठीक तरहसे पालन करते हैं तो हम सब चीजें बहुत अधिक मात्रामें प्राप्त कर सकते हैं और यदि हम उन नियमोंका पालन नहीं करते तो मानो आती हुई लक्ष्मी और वैभवका तिरस्कार करते हैं। संसारमें किसी बातकी कमी नहीं है। सब चीजें बहुत अधिक मात्रामें हैं। आवश्यकता है केवल इस बातकी कि हम उनकी अधिकतामें विश्वास करें और उन्हें प्राप्त अथवा ग्रहण करना सीखें। यदि हम उन्हें प्राप्त और ग्रहण करना सीख लें तो फिर हमारे लिए इस संसारमें किसी चीजकी कमी नहीं रह सकती।

आजकल सब लोग यही समझते हैं कि संसारमें प्रतिद्वन्द्विताका राज्य है। वे समझते हैं कि इस प्रतिद्वन्द्वितामें जो ठहर सकता है वही सफल हो सकता है और जो प्रतिद्वन्द्वितामें न ठहर सकता हो उसके लिए इस संसारमें कोई स्थान नहीं है। इसी लिए प्रतिद्वन्द्विताके सम्बन्धमें बहुतसी कहावतें बन गई हैं जिनमेंसे एक यह भी है कि प्रतिद्वन्द्विता ही रोजगारकी जान है। परन्तु यदि हमें एक बार इस बातका विश्वास हो जाय कि ईश्वरने सब चीजें आवश्यकतासे बहुत अधिक उत्पन्न की हैं तो फिर हमें किसी प्रकारकी प्रतिद्वन्द्विता करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। हम अपने आपको ईश्वरीय शक्तिसे बिलकुल

पृथक् समझते हैं और इसी लिए इतने भयभीत रहते हैं । हमारी दशा ठीक उस बालकके समान है जो अपनी मातासे बिछुड़ जाता है और अकेला पड़ जानेके कारण डरने लगता है । जब हमें मालूम हो जायगा कि अपने आपको ईश्वरीय शक्तिसे पृथक् समझना बड़ी भारी भूल बल्कि अपराध है, तब हम अच्छी तरह यह भी जान जायँगे कि प्रकृतिके अनन्त कोषसे किस प्रकार अपनी आवश्यक चीजें प्राप्त करनी चाहिएँ । जब हम अपने आपको उसी परमेश्वरका एक अंग समझने लगें, तब न तो हमें किसी प्रकारका भय रह जायगा और न किसी पदार्थकी आवश्यकता रह जायगी । हमारी आवश्यक चीजें आपसे आप हमें मिलने लगेंगी । क्योंकि उस दशामें हम स्वयं उस अनन्त भंडारके मध्यमें पहुँच जायँगे, हमें अपने चारों ओर सब चीजें आवश्यकतासे अधिक मानमें दिखलाई देने लगेंगी ।

जो मनुष्य स्वयं ईश्वरका अंश और प्रतिकृति है उसके लिए विफल होना या दरिद्र रहना नितान्त असम्भव है । मनुष्य सदा सम्पन्न रहनेके लिए बनाया गया है और ऐसी परिस्थितिमें उत्पन्न किया गया है जिसमें उसके लिए कभी कोई चीज घटे ही नहीं । परन्तु फिर भी बहुतसे लोग सदा दीन दुखी और दरिद्र बने रहते हैं । उन्हें कभी किसी काममें सफलता होती ही नहीं । इसका कारण यही है कि सफलता प्राप्त करने और सम्पन्न होनेके जितने मार्ग या द्वार हैं उन सबको वे अपने भय, आशंका और चिन्ता आदिसे बन्द किए रहते हैं । उनकी सफलता और सम्पन्नता बिलकुल अवरुद्ध रहती है । उनके मनकी अवस्था ही ऐसी रहती है जिसमें वे कभी सफलमनोरथ हो ही नहीं सकते । सम्पन्नता तो वास्तवमें उसीको प्राप्त होती है जिसके मनमें उत्पादन या सृजन करनेकी शक्ति होती है । भयभीत और सशंकित रहनेवाला हृदय भला सम्पन्नता तक कैसे पहुँच सकता है !

यह बात ठीक है कि कोई आदमी स्वयं यह नहीं चाहता कि आया हुआ सुअवसर चला जाय अथवा आती हुई लक्ष्मी लौट जाय। परन्तु फिर भी उनकी मानसिक अवस्था ही ऐसी होती है जिसमें आया हुआ अवसर और लक्ष्मी उनके अनजानमें ही आपसे आप चली जाती है। इस प्रकार हमारी आशंकाएँ और भय ही हमें सदा दरिद्र बनाए रहते हैं। हमारा हृदय चाहे कितना ही विस्तृत क्यों न हो और हमारा मस्तिष्क चाहे कितना ही बलवान् क्यों न हो, पर यदि हम सम्पन्नता और सुखकी ओरसे मुँह मोड़े रहेंगे तो हम कभी उसे संपादित न कर सकेंगे। हमारे मार्गमें जितनी बाधाएँ होती हैं वे सब हमारे मनसे ही उत्पन्न होती हैं और इसी लिए हम गंगाके मध्यमें रहकर भी प्यासे रहते हैं। हमें आवश्यकतासे कम चीजें इसी लिए मिलती हैं कि हम माँगते ही कम हैं और हम सब चीजोंको बहुत अधिक मात्रामें प्राप्त करनेसे डरते हैं। सम्पन्नता तो स्वयं हमें ग्रहण करनेके लिए तैयार रहती है, पर अपनी अज्ञानताके कारण हम स्वयं ही उससे दूर रहते हैं।

हमारी प्रकृति कभी दरिद्र बने रहनेके अनुकूल नहीं है। परन्तु अपनी शक्तियों और परिस्थितियोंका ठीक ठीक ज्ञान न होनेके कारण ही हम दरिद्र बने रहते हैं। हम बराबर यही समझते हैं कि सम्पन्नता सब लोगोंके लिए नहीं है, केवल उन्हीं लोगोंके लिए है जिनमें कुछ विशिष्ट गुण और विशिष्ट योग्यता होती है अथवा जिनका भाग्य बहुत प्रबल रहता है। परन्तु यह समझना बहुत ही भ्रमपूर्ण है और यही हमारी दरिद्रताका कारण है। जो लोग सम्पन्नताके नियमसे परिचित हो जाते हैं वे कभी दरिद्र या दुःखी नहीं रह सकते; परन्तु जो लोग उस सिद्धान्तसे परिचित नहीं होते वे सदा दुखी और दरिद्र बने रहते हैं।

सम्पन्न होनेका मूल तत्त्व यही है कि हम सदा अपने आपको सम्पन्न समझा करें और कभी किसी प्रकारकी दरिद्रता या आवश्यकताका अनुभव ही न किया करें। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनके लिए मानो संसारमें दरिद्रताका अस्तित्व ही नहीं होता। वे जिससे बातें करते हैं वह भी अपने आपको धनवान् और सम्पन्न समझने लगता है। उन्हें अपने चारों ओर सभी चीजें आवश्यकतासे कहीं अधिक दिखाई पड़ती हैं। वे सब लोगोंके साथ प्रेमका व्यवहार करते हैं और सब लोग उनके साथ प्रेमका व्यवहार करते हैं। वे सदा प्रसन्न रहते हैं और उन्हें कभी किसीसे किसी बातकी शिकायत करनेका मौका ही नहीं रहता। चाहे देखनेमें ऐसे लोग आर्थिक दृष्टिसे बहुत ही साधारण कोटिके जान पड़ते हों; परन्तु फिर भी उनका हृदय इतना सम्पन्न रहता है कि उनके सान्निध्यसे और लोग भी अपने आपको सम्पन्न समझने लगते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनके पास यथेष्ट सम्पत्ति होती है; परन्तु फिर भी जो न तो स्वयं अपनी सम्पन्नताका अनुभव करते हैं और न सारे विश्वका धन पाकर भी वे सन्तुष्ट हो सकते हैं। इसका कारण यही है कि उनका हृदय स्वार्थ और लालचसे भरा हुआ होता है और उसमेंसे माधुर्य बिलकुल निकल जाता है। यदि हम सब कुछ पाकर भी अपने आपको दुखी और दरिद्र ही समझते रहें, तो फिर संसारकी कोई शक्ति हमें सुखी और सम्पन्न नहीं कर सकती। उस समय मानो दरिद्रता और दुःख हमारे हृदयमें घर कर लेता है और सुख शान्ति तथा सन्तोष आदिको अन्दर घुसने नहीं देता। परन्तु यदि हमारे हृदयमें सन्तोष, प्रसन्नता और सुख है और लालच या स्वार्थका हमपर अधिकार नहीं है, तो उस दशामें हम अपेक्षाकृत कम सम्पन्न रहने पर भी ऐसे लोगोंकी अपेक्षा कहीं अधिक

सम्पन्नताका अनुभव कर सकते हैं। स्वयं सम्पन्नता तक पहुँचनेके पहले हमें अपने हृदयमें सम्पन्नताका भाव उत्पन्न करना चाहिए। और नहीं तो फिर सारे संसारका वैभव भी हमें सम्पन्न न बना सकेगा।

सबसे पहले हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि हमें जितनी चीजोंकी आवश्यकता है उनमेंसे एक भी चीज ऐसी नहीं है जो हमसे बाहर हो और इस बातका दृढ़ विश्वास कर लेना चाहिए कि स्वयं हमारे हृदयमें ही वह दैवी स्रोत है जिससे सब प्रकारकी प्यास बुझ जाती है। जब यह तत्त्व हमारी समझमें भली भाँति आ जायगा तब फिर हमें किसी पदार्थकी आवश्यकता ही न रह जायगी। उस समय हम स्वयं उस अनन्त भांडारके मध्यमें पहुँच जायँगे और जब हम अपनी मानसिक स्थिति इस प्रकारकी बना लेंगे, तब हमारी बाह्य या सांसारिक परिस्थिति भी आपसे आप ठीक इसके अनुकूल हो जायगी। क्योंकि अपनी परिस्थिति-योंकी सृष्टि हम स्वयं ही करते हैं। यदि हम अपने हृदयमें केवल दरि-द्रताका ही अनुभव करें, तो हम अपनी परिस्थितियोंको भी उसी दरिद्र-ताके अनुकूल बना लेंगे। क्योंकि उस समय तो हम केवल यही सोचा और समझा करेंगे कि हम बिलकुल ही अयोग्य और असमर्थ हैं और संसारका वैभव या सुख हमारे लिए नहीं है। और जहाँ हममें यह अस-मर्थता और अयोग्यताका भाव आया कि हम वैभवके योग्य होते हुए भी अयोग्य हो जायँगे। परन्तु यदि हम अपने हृदयमें सम्पन्नता और वैभवके भावकी अच्छी तरह स्थापना कर लेंगे और यह समझने लगेंगे कि हम सब प्रकारसे समर्थ और योग्य हैं और संसारका सारा सुख और वैभव औरोंके साथ साथ हमारे लिए भी है, तो फिर हम बहुत सह-जमें सुखी और सम्पन्न हो सकेंगे। हमें सबसे पहले यह समझना चाहिए कि हम भी उसी ईश्वरके उत्पन्न किए हुए हैं जिस ईश्वरने संसा-

रके बड़े बड़े धनवानों और लक्ष्मीपात्रोंको उत्पन्न किया है और स्वस्थ, प्रसन्न तथा सम्पन्न रहना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। बस, अपने मनमें यही भाव रखते हुए हमें सम्पन्नता और सुखकी ओर अग्रसर होना चाहिए। उस समय हम देखेंगे कि सम्पन्नता और सुख हमें अपनी गोदमें लेनेके लिए स्वयं आगे बढ़ता हुआ चला आ रहा है। इसके लिए हमें और किसी प्रकारका प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है केवल अपने मनका भाव बदलनेकी।

संसारमें ऐसे बहुत से लोग होते हैं जो अपना सारा जीवन सुखी और सम्पन्न होनेकी चिन्तामें ही बिता देते हैं; परन्तु जिन्हें कभी जरा भी सुख नहीं मिलता। वे सदा यही अनुभव करते रहते हैं कि हम अकेले हैं, हमारा कोई संगी साथी या मित्र नहीं है और हम बड़े ही अभागे हैं। उनका सारा समय दुनियाकी शिकायत करनेमें ही बीतता है। उनके लेखे मानो संसारमें कोई चीज है ही नहीं, सब चीजोंका टोटा पड़ गया है। अपने सारे प्रयत्नोंको वे निरर्थक समझते हैं। ऐसे लोग भला कब सुखी या सम्पन्न हो सकते हैं? वे आकांक्षा तो करते हैं किसी और बातका और प्रयत्न करते हैं किसी और बातका। यदि ऐसे लोग कभी सुखी न हो सकें तो इसमें किसीको कुछ आश्चर्य न होना चाहिए। जब हम स्वयं ही अपने आपको दरिद्रताके संकुचित कारागारमें बन्द कर लेंगे, तब हम सुखी और सम्पन्न क्या होंगे? हमारी दशा ठीक उस पक्षीके समान हो जाती है जो जान बूझकर अपने आपको पिंजड़ेमें बन्द कर लेता है और फिर उससे निकलनेके लिए व्यर्थ पर फड़फड़ाया करता है। वह उसी पिंजड़ेके सीखचोंपर अपने पर और सिर पटकता रहता है, परन्तु उससे बाहर नहीं निकल सकता।

कुछ लोगोंकी प्रकृति ही ऐसी होती है कि उन्हें संसारमें सभी चीजें अच्छी और बहुत अधिक दिखलाई देती हैं। बस ऐसे ही लोग अपने लिए जो कुछ चाहते हैं वह सब बहुत ही सहजमें प्राप्त कर लेते हैं। अपने लिए सभी आवश्यक पदार्थ प्राप्त कर लेना उनके लिए उतना ही सहज होता है जितना कि साँस लेना। उन्हें न तो किसी प्रकारकी शंका होती है, न किसी प्रकारका भय होता है और न अपनी शक्तियोंपर अविश्वास ही होता है। वे दृढ़, निर्भय, उत्साही और पराक्रमी होते हैं। उन्हें स्वप्नमें भी इस बातका ध्यान नहीं होता कि जिस चीज़की हमें आवश्यकता होगी वह हमें न मिलेगी। यदि हमारी प्रकृति ऐसी न हो बल्कि इसके विपरीत हो, तो हमें यही उचित है कि हम भी अभ्यास करके अपनी प्रकृति ऐसी ही बना लें। जब तक हम अपनी प्रकृतिको ठिकानेपर न लावेंगे और अपनी प्रकृतिको ठीक मार्गपर न लगावेंगे, तब तक हमें किसी प्रकारकी सफलता हो ही नहीं सकती।

हमें अपने हृदयकी संकीर्णता और अनुदारताका परित्याग कर देना चाहिए और उनके स्थानपर विशालता तथा उदारता ग्रहण करनी चाहिए। हमें यह समझ लेना चाहिए कि हमारी मानसिक स्थिति ही हमें सुखी और सम्पन्न बनानेमें समर्थ है। दीनता और दरिद्रता आदिके विचारोंसे हमें अपने आपको बिलकुल दूर रखना चाहिए। हमें विश्वास रखना चाहिए कि हमें जब जिस चीजकी जितनी आवश्यकता होगी तब उतनी चीज हमें स्वयं ईश्वरकी ओरसे मिल जायगी। हम उस परम सम्पन्न और उदार पिताकी प्यारी सन्तान हैं, जो कभी हमें कष्टमें नहीं रखना चाहता और सदा हमारी सब प्रकारकी आवश्यकताएँ पूरी करनेके लिए तैयार रहता है।

जब हमारे मनमें यह भाव अच्छी तरह आ जायगा, तब फिर हम किसी प्रकारके कष्ट या आवश्यकता आदिका कोई अनुभव न करेंगे।

ईश्वरने सबको सम्पन्न और सुखी रहनेके लिए ही बनाया है। उसकी इच्छा यही है कि सब लोग बहुत ही सुखी और सन्तुष्ट रहें। चाहे आज और चाहे दस दिन बाद, वह समय अवश्य आवेगा जब कि संसारके सब लोग राजाओंके समान सुखी और सन्तुष्ट रहेंगे। परन्तु यह बात तभी होगी जब मनुष्यके तुच्छ और संकीर्ण भाव नष्ट हो जायँगे और उसमें परम उच्च भावोंका प्रचार होगा। जब उसमेंसे पशुत्व निकल जायगा और वास्तविक अर्थमें मनुष्यत्व आ जायगा, तब संसारमें कहीं दुःख या दरिद्रताका नाम भी न रह जायगा। इस समय जो लोग सबसे अधिक दुखी और दीन समझे जाते हैं वे भी उस समय सबसे अधिक सुखी और सम्पन्न हो जायँगे। यदि ऐसा न हो तो उस सर्व शक्तिमान् ईश्वरकी सृष्टिका सारा उद्देश्य ही विफल हो जाय।

५—निद्रा।

मानस शास्त्रके बड़े बड़े ज्ञाता हमें बतलाते हैं कि जिस समय हम सोने लगते हैं, उस समय हमारे मनमें जो विचार रहते हैं वे हमारे सो जाने पर मनमें और भी अधिक वेगपूर्वक संचरण करने लगते हैं। वे यह भी कहते हैं कि हमारे चेहरेपर जो झुर्रियाँ या बुढ़ापेके दूसरे चिह्न दिखलाई पड़ते हैं, वे जिस प्रकार हमारी जाग्रत् अवस्थामें बनते हैं उसी प्रकार हमारे सोनेकी दशामें भी बनते हैं। इन सब बातोंसे यही निष्कर्ष निकलता है कि सोनेके समय हमारी जो मानसिक अवस्था होती है अथवा हमारे मनमें जो विचार होते हैं, उनका भी हमारे शरीरपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जो दिन भरकी अपनी चिन्ताओं तरद्दुदों और कष्टोंकी ही मानसिक वेदनाएँ साथ लेकर सोने जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि रातको भी उनका शरीर स्वस्थ और सुखी नहीं रहने पाता। बल्कि वे चिन्ताएँ आदि रातके समय शरीरपर अपना और भी अधिक घातक प्रभाव डालती हैं और इस प्रकार वे लोग अन-जानमें ही अपना स्वास्थ्य बहुत बुरी तरहसे बिगाड़ लेते हैं, और अपनी आयु बराबर क्षीण करते चलते हैं।

हर जगह हजारों लाखों आदमी ऐसे होते हैं जो दिन भर अपने काममें आवश्यकतासे बहुत अधिक निमग्न रहते हैं। वे इतना अधिक परिश्रम करते हैं कि उनका जीवन बिलकुल प्रकृतिविरुद्ध और कृत्रिम सा हो जाता है। ऐसे लोग जब अपना दिनभरका काम समाप्त करके रातको सोनेके लिए जाते हैं, तब दिन भरकी चिन्ताओं और तरद्दुदोंसे

अपना पीछा नहीं छुड़ा सकते। ऐसे लोगोंको या तो जल्दी नींद आती ही नहीं और यदि आती भी है, तो बिलकुल अन्तमें; उस समय आती है जब कि उनका दिमाग हदसे ज्यादा थक जाता है, उनके दिमागका दिवाला निकल जाता है। ऐसे लोग अपने व्यापार व्यवसाय आदिकी इतनी अधिक चिन्ता करते हैं कि अन्तमें वे यह बात भूल जाते हैं कि किस तरह आराम करना चाहिए। वे सोनेके समय अपनी सारी चिन्ताएँ भी बिस्तरपर अपने साथ ही ले जाते हैं। सोनेके समय उनका शरीर और मस्तिष्क चिन्ताओंके बोझसे ठीक उसी तरह दबा रहता है जिस तरह रेगिस्तानमें बोझसे लदा हुआ ऊँट सोया करता है। इसका परिणाम यह होता है कि ऐसे लोग निद्रासे होनेवाले लाभोंसे बिलकुल वंचित रह जाते हैं। दिन भरके कठोर परिश्रमके उपरान्त होनेवाला आराम भी उनके लिए आराम नहीं रह जाता।

निद्राका शरीरके लिए सबसे बड़ा उपयोग यह होता है कि दिन भरकी जितनी थकावट होती है वह सब दूर हो जाती है। शरीरके जो अंग दिन भर काम करते करते बिलकुल शिथिल और बेकाम हो जाते हैं, वे निद्राके समय फिरसे सशक्त और काम करनेके योग्य बनते हैं। पर शरीरको निद्रासे होनेवाला यह लाभ तभी पहुँच सकता है जब कि सोनेके समय हमारा दिमाग फिक्रों और तरद्दुदोंकी वजहसे परेशान न हो। परन्तु यदि हम रातके समय भी अनेक प्रकारकी चिन्ताएँ करते करते ही सोएँ, तो परिणाम यह होगा कि रातको सोनेसे पहलेकी हमारी थकावट तो बनी ही रह जायगी और सबेरे जब हम सोकर उठेंगे, तब और भी ज्यादा थके हुए और शिथिल होंगे। परन्तु होना यह चाहिए कि रात भर सोनेके बाद जब हम सबेरे उठें, तब पहले दिनकी हमारी शारीरिक त्रुटियोंकी पूर्ति हो जाय और हममें कार्य करनेके लिए नया

उत्साह तथा नया बल आ जाय। सोनेसे शरीरको जो लाभ होना चाहिए, वह चिन्तित दशामें सोनेसे बिलकुल नहीं होने पाता, बल्कि उसका परिणाम और भी उलटा होता है; निद्रा हमारे शरीरको लाभ पहुँचानेके बदले उलटे और भी हानि पहुँचाती है। प्रत्येक समझदार मनुष्यको इस प्रकारकी हानिसे सदा बचनेका प्रयत्न करते रहना चाहिए और ऐसा अभ्यास डालना चाहिए जिसमें शरीर निद्रासे पूरा पूरा लाभ उठा सके।

निद्राके लिए शरीरकी अपेक्षा मनको तैयार करनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। शारीरिक स्नानकी अपेक्षा मानसिक स्नान कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक होता है। सोनेके समय हमारा सबसे पहला कर्तव्य यह होना चाहिए कि हम दिन भरकी सब प्रकारकी चिन्ताओं और विचारों आदिसे अपना पीछा छुड़ा लें। दिन भर तो इन चिन्ताओं और विचारों आदिका शरीरपर घातकपरिणाम होता ही रहता है, परन्तु रातके समय हमें उनसे बिलकुल दूर रहना चाहिए। दिन भर सोचते सोचते दिमागमें जो कूड़ा करकट जमा हो जाता है, रातके समय वह सब निकाल डालना चाहिए और अपना मस्तिष्क बिलकुल स्वच्छ कर लेना चाहिए। चिन्ताएँ हमारे मस्तिष्कमें जो अनेक प्रकारकी विकराल मूर्तियाँ ला खड़ी करती हैं, उन मूर्तियोंको हमें अपने मस्तिष्कसे निकाल डालना चाहिए और उनके स्थानपर प्रसन्नतापूर्ग और उत्साहवर्धक मूर्तियोंकी स्थापना कर लेनी चाहिए।

दिन भर चाहे हम कितने ही अधिक चिन्तित, व्यग्र और दुखी क्यों न रहे हों; परन्तु सोनेके समय हमें कभी चिन्तित, व्यग्र और दुःखी न रहना चाहिए। उस समय न तो हमें किसी प्रकारका क्रोध होना चाहिए, न ईर्ष्या होनी चाहिए, और न इस प्रकारका और कोई हानिकारक भाव होना चाहिए। सोनेके समय कभी स्नायुओंपर बल नहीं होना

चाहिए और न चेहरेपर किसी प्रकारकी चिन्ता या व्यग्रताका भाव होना चाहिए। हमारी मानसिक शान्तिमें बाधा डालनेवाली जितनी बातें हों उन सबको सोनेके समय दूर भगा देना चाहिए और पूर्ण रूपसे शान्त तथा प्रसन्न होकर सोना चाहिए। केवल इसी प्रकार सोनेसे हम निद्राका पूरा पूरा लाभ उठा सकते हैं। और यदि हम ऐसा न करें तो उस दशामें होनेसे होनेवाला लाभ तो होता ही नहीं उलटे और अनेक प्रकारकी हानियाँ होती हैं।

यदि दिनके समय कोई अप्रिय या उत्तेजक बात हो जाय, तो उस समय तुम्हें क्रोध आ सकता है या दुःख पहुँच सकता है। परन्तु वह क्रोध कुछ देर बाद शान्त हो जायगा और वह दुःख कुछ देर बाद दूर हो जायगा। पर अब सोनेके समय तुम व्यर्थ उस बातका फिरसे स्मरण करके क्रुद्ध, दुखी या क्षुब्ध क्यों हो? तुम क्यों व्यर्थ अपनी निद्राका नाश करो और क्यों अपने सुखमें बाधक हो? अकारण ही अपने आपको दुखी और क्षुब्ध करनेसे क्या लाभ? दुःख और क्षोभका शरीरपर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है, इससे तो किसीको इन्कार हो ही नहीं सकता। फिर जान बूझकर वह बुरा प्रभाव और अधिक मात्रामें क्यों ग्रहण किया जाय? जीवन बहुत ही अल्प है। उसका एक क्षण भी व्यर्थ नष्ट नहीं होना चाहिए। और विशेषतः ऐसी बातोंमें तो और भी नष्ट न होना चाहिए जिनका हमारे स्वास्थ्य और मस्तिष्कपर बुरा प्रभाव पड़ता हो और फिर भी जिनका कोई अच्छा नतीजा, कोई शुभ फल न होता हो। उचित तो यह है कि हम अपना सारा समय शान्तिमें ही व्यतीत करें। परन्तु यदि हम किसी कारणसे ऐसा न कर सकते हों, तो कमसे कम सोनेके समय तो शान्त और स्वस्थ रहा करें। जो विचार हमारे सुख और शान्तिके शत्रु हों, उनसे तो

जाग्रत् अवस्थामें ही बहुत दूर रहना चाहिए और सोनेके समय तो उन्हें कदापि इस बातका अवसर न देना चाहिए कि वे हमारे शरीर तथा मनपर और भी अधिक घातक तथा नाशक प्रभाव डालें। इस प्रकारके समस्त विचारोंको सोनेके समय धो बहाना चाहिए और बिलकुल निर्मल, शुद्ध तथा शान्त हृदय होकर सोना चाहिए।

यदि हम किसी कारणवश दिनके समय उत्तेजित होकर किसीके साथ कोई मूर्खतापूर्ण व्यवहार कर बैठें हों, किसीके साथ नामुनासिब बरताव कर बैठे हों, किसीसे बदला चुकानेकी फिक्रमें रहे हों, किसीके साथ ईर्ष्या द्वेष करते रहे हों, तो भी कमसे कम रातके समय तो हमें उन सब बातोंका विचार दूर कर देना चाहिए और अपने मनको शुद्ध तथा शान्त बना लेना चाहिए। कमसे कम रातके समय तो हमारा मानस-पटल स्वच्छ और शुभ्र रहना चाहिए। सुप्रसिद्ध महात्मा सन्त पालका उपदेश है कि यदि दिनके समय किसीपर क्रोध आ जाय तो भी वह क्रोध सूर्यास्तसे पहले ही शान्त हो जाना चाहिए। यह उपदेश स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जानेके योग्य है और सब लोगोंको सदा इसके अनुसार आचरण करना चाहिए।

यदि कोई आदमी बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी दुष्ट और स्वास्थ्य-नाशक विचारोंसे अपना पीछा न छुड़ा सकता हो, तो उसे उचित है कि वह सोनेके समय थोड़ी देरके लिए कोई अच्छी पुस्तक पढ़ने लग जाय। इससे यह लाभ होगा कि धीरे धीरे सब प्रकारकी चिन्ताएँ और क्षोभ दूर हो जायँगे और मनमें बहुत कुछ शान्ति आ जायगी। तुम्हारा चित्त चिन्ताओंसे रहित और प्रसन्न हो जायगा। अच्छी पुस्तकें पढ़नेसे तुम जीवनके वास्तविक सौन्दर्यसे परिचित हो जाओगे, और तब तुम अपने दिन भरके अनुचित व्यवहारों तथा कार्यों आदिका स्मरण करके

लज्जित होगे और उनके लिए पश्चात्ताप करने लगोगे । इस प्रकार तुम सोनेके समय अपना मन भी निर्मल और शान्त कर लोगे और कुछ नए उपदेश प्राप्त करके अपना जीवन और आचरण भी कुछ न कुछ सुधार लोगे ।

रातको सोनेके समय प्रत्येक व्यक्तिको अपना हृदय शुभ तथा प्रसन्नतापूर्ण विचारोंसे भर लेना चाहिए और अच्छी अच्छी तथा शुभ बातोंकी आकांक्षा करनी चाहिए । मनमें यह भाव रखना चाहिए कि हम शीघ्र ही बहुत सम्पन्न, सुखी तथा शक्तिशाली होंगे । अपने मनमें उसे अपना आदर्श रखना चाहिए । जिस महात्मा या महानुभावका आचरण हमें बहुत अच्छा जँचता हो; उसके आचरणोंका स्मरण और मनन करना चाहिए । बड़े बड़े लोगोंके हृदयकी विशालता, उदारता, सहनशीलता, विद्वत्ता, बहुज्ञता, आदिका स्मरण करना चाहिए और इस बातकी आकांक्षा करनी चाहिए कि हम भी ऐसे ही होंगे । इस प्रकारकी बातें सोचने और अपनी मानसिक दृष्टिके सामने उच्च आदर्श खड़े करनेका हमारे शरीर, मन और आचरण आदिपर जो शुभ परिणाम होगा उसका सहजमें वर्णन नहीं किया जा सकता; वह परिणाम, वह लाभ, वर्णनातीत होगा । थोड़े ही दिनोंके अभ्यासके उपरान्त हम देखेंगे कि हमारी मानसिक अवस्थामें बहुत बड़ा और बहुत ही शुभ परिवर्तन हो गया है । जब रातको सोनेके समय जीवनका वास्तविक स्वरूप और उच्च आदर्श हमारी दृष्टिके सामने होगा, तब दूसरे दिन उस आदर्शकी ओर हम कुछ न कुछ अवश्य ही अग्रसर होंगे ।

प्रायः पढ़े लिखे और कामकाजी लोगोंको हर दम कुछ न कुछ सोचते रहनेकी इतनी ज्यादा आदत पड़ जाती है कि वे रातको सोनेके समय भी बराबर कुछ न कुछ सोचा करते हैं । कभी कभी ऐसा भी

होता है कि सोचनेकी यह क्रिया जान बूझकर नहीं की जाती, बल्कि आपसे आप होती रहती है। परन्तु आपसे आप होनेपर भी यह क्रिया ऐसी नहीं होती जो थोड़ा प्रयत्न और अभ्यास करनेसे रोकी न जा सके। जिन लोगोंको दिनके समय बहुत ज्यादा काम करना और सोचना पड़ता है, वे सोचनेके इतने अधिक अभ्यस्त हो जाते हैं कि रातको सोनेके समय भी, और सो जानेपर भी, उतनी ही तेजीके साथ सोचते रहते हैं जितनी तेजीके साथ दिनके समय सोचा करते हैं। इस प्रकार उनका सोना और न सोना दोनों बराबर हो जाता है। ऐसे लोग जब दूसरे दिन सोकर उठते हैं, तब वे उतने ही थके हुए और शिथिल होते हैं, जितने कि सोनेके समय थे। ऐसे आदमियोंकी शारीरिक तथा मानसिक शक्तियोंका बहुत शीघ्रतापूर्वक और बड़े वेगके साथ ह्रास होता है। उनका दिमाग भी खराब हो जाता है और शरीर भी। ऐसे लोगोंके लिए सबसे अच्छा उपाय यही है कि ज्यों ही वे अपना दिन भरका काम समाप्त करें त्यों ही अपने मस्तिष्कका काम भी समाप्त कर दें। ज्यों ही वे अपनी दूकानके किवाड़ बन्द करें, त्यों ही अपने दिमागके भी किवाड़ बन्द कर दें। उन्हें उसी समयसे अपने विचारोंको काम काजकी चिन्तासे हटा कर दूसरी ओर लगाना आरम्भ करना चाहिए। काम काज समाप्त करनेके उपरान्त जिस प्रकार दिन भरके पहने हुए कपड़े उतारकर रख दिए जाते हैं, उसी प्रकार दिन भरकी सोची हुई बातोंका बोझ भी मस्तिष्क परसे उतारकर रख देना चाहिए। अपने मित्रों या बाल-बच्चोंके साथ बात चीत करने या घूम फिरकर अपना मनोविनोद करने लग जाना चाहिए। किसी तरहके खेलमें लग जाना चाहिए या कुछ पढ़ने लिखने लग जाना चाहिएं। मतलब यह कि दिन भर जो काम किया हो वह काम बिलकुल छोड़ देना चाहिए और किसी

दूसरे हलके काममें लग कर अपनी प्रवृत्ति किसी दूसरी ओर कर लेनी चाहिए। मतलब यह कि जिस गड्ढेमें आदमी दिनभर पड़ा रहा हो, उस गड्ढेसे बिलकुल बाहर निकल आना चाहिए और अपना मन उसकी ओरसे बिलकुल हटाकर किसी दूसरी ओर लगा लेना चाहिए। खुली और साफ हवामें टहलने लग जाना चाहिए और प्रकृतिकी शोभा देखने लग जाना चाहिए। कोई ऐसा शुभ और उपयोगी व्यसन लगा लेना चाहिए जिससे मन बहले और प्रफुल्लित हो। हमें अपने मन और विचारोंका दास नहीं हो जाना चाहिए, बल्कि उनपर अपना पूरा पूरा अधिकार रखना चाहिए। स्वयं उनके कहनेमें न चल पड़ना चाहिए, बल्कि धीरे धीरे उनको अपने अधीन और शासनमें लानेका प्रयत्न और अभ्यास करना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्तिको यह उचित है कि वह अपने सोनेके कमरेमें किसी ऐसे उपयुक्त स्थानपर, जहाँ बराबर नज़र पड़ती रहे, किसी तख्ती या मोटे कागज आदिपर बड़े बड़े अक्षरोंमें यह लिखकर टाँग दे,—यहाँ कोई बात सोचनी नहीं चाहिए।

सोनेसे कुछ देर पहले ही सब प्रकारका सोचना, विचारना बन्द कर देना चाहिए। मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता या उद्वेग आदि न रहने देना चाहिए, और किसी अंगपर किसी प्रकारका जोर न रहने देना चाहिए। जब मन और शरीरको इस प्रकार पूरा पूरा आराम मिलेगा, तब नींद बहुत ही सहजमें और तुरन्त आ जायगी। उस समय सोनेमें उतनी देर भी न लगेगी जितनी कि छोटे बच्चोंको लगती है और वह नींद, शरीर और मनको, सब प्रकारसे सुखी और प्रफुल्लित कर देगी। बहुतसे लोगोंको इसी प्रकार सोनेके समय सोचते सोचते उन्निद्र रोग हो जाता है, जिससे उनका शरीर और स्वास्थ्य बहुत जल्दी

नष्ट हो जाता है। इस उन्निद्र रोगसे बचनेके लिए सब लोगोंको पहलेसे ही इस प्रकारका अभ्यास डाल रखना चाहिए कि जिसमें बराबर बेखटके नींद आ जाया करे और उन्निद्र रोग होनेकी सम्भावना ही न रह जाय।

सोनेके समय सब प्रकारकी चिन्ताओंसे अलग रहनेका अभ्यास डालना कुछ सहज काम नहीं है। यह भी एक प्रकारकी कला है; और इसके लिए बड़े अभ्यासकी आवश्यकता है। सोनेसे पहले हमें इतना अधिक प्रसन्न और निश्चिन्त हो जाना चाहिए कि मानो हम ईश्वरके समीप पहुँच गए हैं और हमें स्वर्गीय सुख मिल रहा है। उस समय मनमें नामके लिए भी किसी प्रकारका राग, द्वेष, चिन्ता, फिक्र न रह जानी चाहिए। क्योंकि यही सब बातें मनकी शान्तिमें बहुत अधिक बाधा पहुँचानेवाली हुआ करती हैं। प्रत्येक व्यक्ति अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़कर और अच्छे लोगोंके साथ बैठकर अपना मनोविनोद कर सकता है, और अपने मन तथा शरीरको सोनेके लिए उपयुक्त अवस्थामें ला सकता है।

जब आप इस प्रकार निश्चिन्त और प्रसन्न होकर सोएँगे, तब सबेरे उठनेपर अपने शरीरकी स्वस्थता और मनकी प्रफुल्लता देखकर आपको बहुत आश्चर्य होगा। आप देखेंगे कि शरीरमें थकावटका कहीं नाम न रह जायगा और शरीरमें एक नया उत्साह और नया जीवन आया हुआ जान पड़ेगा। तब आप अपने दैनिक कार्योंमें बहुत तत्परतासे उद्यत हो जायँगे और पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक काम करने लगेंगे। धीरे धीरे इसके और भी शुभ परिणाम दिखाई देने लगेंगे। मनसे भय, आशंका और चिन्ता आदिका सदाके लिए नाश हो जायगा। विचार दिनपर दिन उच्च और शुद्ध होते जायँगे तथा इसी प्रकारके और भी अनेक लाभ होंगे। यौवनके सुखका अच्छी तरह

अनुभव होने लगेगा, जल्दी बुढ़ापा न आने पावेगा और आयु भी बहुत कुछ बढ़ जायगी। कमसे कम जीवन भारस्वरूप तो न मालूम होगा। स्वास्थ्य भी सुधरने लगेगा और चरित्र भी। जब मनमें दुष्ट विचार कम आवेंगे और अच्छे विचार ही अपना काम करेंगे, तब समस्त जीवनमें बहुत ही शुभ और वांछनीय परिवर्तन हो जायगा।

प्रत्येक व्यक्तिमें दैवी अंश होता है। यदि हम निश्चिन्त और सुखी होकर सोएँ तो उस अंशकी बहुत सहजमें और आपसे आप उन्नति हो जायगी। संसार हमारे लिए पहलेसे कहीं अच्छा और रहनेके योग्य हो जायगा। हमारी बहुत सी कठिनाइयाँ भी आपसे आप दूर हो जायँगी। हममें हर एक बातको सोचने और समझनेकी शक्ति भी बहुत बढ़ जायगी। बड़े बड़े गणितज्ञों, वैज्ञानिकों और ज्योतिषियोंने इसका अनेक बार अनुभव किया है। जिन प्रश्नोंकी मीमांसा वे बहुत दिनों तक बहुत कुछ परिश्रम करके भी नहीं कर सकते थे, उन प्रश्नोंका निराकरण अच्छी और पूरी नींदमें आपसे आप हो गया।

आजकलका विज्ञान हमें निश्चित रूपसे यह बात बतलाता है कि हमारी बहुतसी नैतिक शिक्षा और चरित्र-गठन निद्रावस्थामें आपसे आप, हमारे अनजानमें हुआ करता है। बात यह है कि सोनेके समय हमारे मनकी जो अवस्था रहती है वह बराबर सबेरे तक बनी रहती है। उस समय जो भाव हमारे मनमें रहते हैं, वही रातके समय आपसे आप हमारे मनमें पुष्ट होते रहते हैं। अब यदि हम सोनेके समय अपने विचार शुद्ध, शान्त और उच्च कर लें तो हमारे शरीर तथा आचरणपर उसका जो प्रभाव होगा उसका अनुमान प्रत्येक समझदार आदमी स्वयं ही बहुत सहजमें कर सकता है। पाश्चात्य देशोंमें ऐसे बहुत से आदमी हैं जिन्होंने इसी प्रकारका अभ्यास करके अपने स्वास्थ्य तथा आचरण आ-

दिमें आश्चर्यजनक परिवर्तन तथा उन्नति कर ली है । सोनेसे पहले लगातार कुछ दिनों तक उन्होंने जिस आदर्शका चित्र अपनी मानसिक दृष्टिके सामने रक्खा है, थोड़े ही दिनोंमें वे स्वयं भी उस आदर्श तक पहुँच गए हैं ।

यदि हम दरिद्र हों और हमें अपना तथ अपने परिवारका निर्वाह करना बहुत ही कठिन जान पड़ता हो, तो हमें उचित है कि हम रातको सोनेसे पहले अपने मनमें यह धारणा कर लें कि परमात्मा बहुत दयालु और उदार है और वह सब लोगोंको उनकी आवश्यकताकी सभी चीजें बहुत सहजमें और आपसे आप पहुँचा दिया करता है और यह समझकर हमें स्वयं अपने सम्बन्धमें भी निश्चिन्त हो जाना चाहिए । इसका परिणाम यह होगा कि सबेरे हममें नये उत्साह, नये बलका संचार हो जायगा और हमारे निर्वाहमें होनेवाली कठिनाइयाँ दिनपर दिन आपसे आप कम होती जायँगी और कुछ दिनों बाद तो ऐसा होगा कि वे कठिनाइयाँ कहीं नामको भी न रह जायँगी और हमारी नैतिक तथा आर्थिक अवस्था बहुत ही उन्नत हो जायगी । सोनेके समय हमें कष्टों और दरिद्रता आदिका ध्यान नहीं करना चाहिए बल्कि सुखों और सम्पन्नता आदिका ध्यान करना चाहिए । इससे हमारी अन्तरात्मामें सुख और सौभाग्य आदिका नया भाव आ जायगा, जो दिनपर दिन बढ़ता जायगा और अन्तमें हमें सुखी तथा सम्पन्न बना देगा ।

यदि हममें किसी प्रकारकी दुर्बलता या दोष हो तो हमें उचित है कि सोनेके समय उस दुर्बलता या दोषका ध्यान बिलकुल छोड़ दें, और उसके ठीक विपरीत अपने बल और गुणका ध्यान करें । यदि हम कायर हों तो हमें वीरताका ध्यान करना चाहिए और यदि हमारा हृदय संकीर्ण हो तो हमें उदारताका ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार

ध्यान करनेका परिणाम यह होगा कि वीरता या उदारता आदिका आविर्भाव हो जायगा और उस दुर्बलता या दोषसे हमारा पीछा छूट जायगा। इस प्रकार हम सहजमें अपनी सब त्रुटियाँ दूर कर सकेंगे और अपने आपमें पूर्णता तथा श्रेष्ठता ला सकेंगे।

बालकोंपर इस क्रियाका और भी सहजमें तथा उत्तम प्रभाव पड़ता है। प्रायः सभी देशोंमें और सभी जातियोंमें यह नियम है कि बालकोंको सुलानेसे पहले हर प्रकारसे प्रसन्न करते हैं। हमारे यहाँ भी बच्चोंको सोनेसे पहले अनेक प्रकारकी अच्छी अच्छी कहानियाँ और लोरियाँ आदि सुनानेकी प्रथा है। पढ़ी लिखी या समझदार माताएँ सोनेसे पहले अपने बच्चोंको अनेक प्रकारके अच्छे अच्छे उपदेश देती हैं, अच्छे अच्छे पुरुषोंके आख्यान सुनाती हैं और उनमें शुभ तथा श्रेष्ठ भाव भरनेका प्रयत्न करती हैं। इन सब बातोंका कोमलहृदय बालकोंपर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। सोनेसे पहले वे जो बातें सुन लेते हैं वे बातें निद्रावस्थामें उनके हृदयपर दृढतापूर्वक अंकित होने लगती हैं जिनका उनके भावी जीवन तथा आचरण आदिपर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। जो माताएँ अज्ञानवश अथवा और किसी कारणसे अब तक ऐसा न करती रही हों उन्हें उचित है कि वे आगेसे सोनेके समय अपने बालकोंको प्रसन्न करने और अच्छी अच्छी बातें बतलानेका प्रण कर लें। इस प्रकार वे उन्हें जाग्रत अवस्थाकी अपेक्षा निद्रावस्थामें और भी अधिक तथा उत्तम शिक्षा दे सकेंगी। जाग्रत अवस्थामें दी हुई शिक्षाओं और उपदेशों आदिका बालकोंपर पूरा पूरा प्रभाव पड़े या न पड़े, परन्तु सोनेसे पहले दी हुई शिक्षाओं तथा उपदेशों आदिका बालकोंपर अच्छा प्रभाव पड़ता हुआ देखा गया है। जगनेमें तो बच्चा किसी प्रकारकी प्रतिक्रिया भी कर सकता है परन्तु

निद्रावस्थामें उसके लिए किसी प्रकारकी प्रतिक्रिया करना असम्भव हो जाता है और उपदेश तथा शिक्षाएँ उसके हृदयपर प्रत्यक्ष रूपसे और दृढ़तापूर्वक अपना काम करती हैं। बल्कि आजकल तो पाश्चात्य देशोंमें इन बातोंने एक प्रकारसे शास्त्रका रूप धारण कर लिया है। वहाँ केवल दुष्ट बालकोंके आचरणके सुधारके लिए ही नहीं बल्कि उनके अनेक शारीरिक रोगोंको दूर करनेके लिए भी इन तत्त्वोंका व्यवहार किया जाता है।

बहुत से बालक प्रायः डरपोक होते हैं और भूत प्रेत आदिसे बहुत डरते हैं। कुछ बालक ऐसे भी होते हैं जो सोए सोए डरकर जाग उठते हैं। यदि ऐसे बालकोंको सोनेसे पहले यह बतला दिया जाय कि भूत प्रेत कोई चीज नहीं या उन्हें अच्छी तरह यह समझा दिया जाया करे कि तुम सोए सोए व्यर्थ डरकर उठ बैठा करते हो, तुम्हें किसी बातसे डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, हम सब लोग तुम्हारे पास ही रहते हैं, तुम निश्चिन्त होकर सोओ और रातको डरकर जाग मत उठना, तो इन सब बातोंका उस बालकपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा और थोड़े दिनोंमें उसका डरकर जाग उठना बन्द हो जायगा। इसी प्रकार जो बालक पढ़ने लिखनेमें सुस्त या कमजोर हों अथवा जो जल्दी किसी बातको समझनेमें असमर्थ हों, उन्हें भी सोनेके समय वाञ्छनीय उपदेश देकर, उनके मनमें आशा तथा दृढ़ता उत्पन्न करके, पढ़ने लिखनेमें तेज और समझदार तथा चतुर बनाया जा सकता है। जिस समय बालक सोने लगे और उसे कुछ कुछ नींद आ रही हो, उस समय भी उसे बारबार अच्छी बातें बतलाते चलना चाहिए। उस समय यह न समझना चाहिए कि अब तो यह सो रहा है, यह कुछ सुनता ही नहीं। ऐसा समझना भारी भूल है। जब तक वह गहरी नींदमें अच्छी तरह सो न जाय, तब तक यही समझकर उसे उपदेश देते

रहना चाहिए कि मानो वह जाग रहा है। उस अर्ध-निद्रित अवस्थामें उसे जो उपदेश दिया जायगा उसका उसके कोमल चित्तपर और भी अधिक प्रभाव पड़ेगा, और जाग्रत अवस्थामें दिए हुए उपदेशोंकी अपेक्षा उसका कहीं अच्छा फल देखनेमें आवेगा। जाग्रत अवस्थामें तो वह कोई बात सुनकर भी अनसुनी कर सकता है, अपनी इच्छाके विरुद्ध कोई उपदेश होनेपर उसका विरोध कर सकता है अथवा इधर उधर खेल कूदमें उसे बिलकुल भुला सकता है; पर सोनेके समय अर्ध-निद्रित अवस्थामें वह इन सबमेंसे एक भी काम नहीं कर सकता। फल यह होता है कि उस समय उससे जो कुछ कहा जाता है, उसे वह तत्काल ग्रहण कर लेता है और प्रकृति उसे उसके हृदयपटलपर और भी दृढ़तापूर्वक अंकित कर देती है। जो माताएँ इस प्रकारकी क्रियाएँ करती हैं, उनके बालक बहुत सहजमें और बहुत जल्दी सभ्य, समझदार और होशियार हो जाते हैं। इस प्रकार धीरे धीरे बालकोंमें बहुत से गुण, बहुत सी अच्छी बातें लाई जा सकती हैं और उनके सब प्रकारके दोष दूर किए जा सकते हैं।

हम तो अपने पाठकोंसे यही प्रार्थना करेंगे कि वे अधिक नहीं तो महीने दो महीने तक तो अवश्य सोनेके समय यह क्रिया करके देखें। तब उन्हें जान पड़ेगा कि निद्रामें हमारा शरीर और चरित्र कितना अधिक बनता है और कितने सहजमें बहुत से अच्छे अच्छे गुण प्राप्त किए जाते हैं। इस प्रयोगसे लोगोंका स्वास्थ्य भी सुधर सकता है, चरित्र भी बन सकता है और सुख सौभाग्य आदिकी भी वृद्धि हो सकती है। सदा खूब प्रसन्न और निश्चिन्त होकर सोओ और अपने मनमें यह दृढ़ निश्चय कर लो कि हमारी आत्मा रातके समय हमें और भी अधिक शुद्धाचारी और बलवान् बनावेगी। निश्चय कर लो कि रातके

समय कोई दुष्ट विचार हमारे पास फटकने भी न पावेगा और सब प्रकारके अच्छे विचार आपसे आप आ कर हमारे हृदयमें प्रवेश कर जायँगे। परमात्मा हमारा मंगल करेगा और हमें अधिक योग्य तथा समर्थ बनावेगा। विफलता दरिद्रता या रोग आदि हमसे दूर रहेंगे और हमारा मन सदा अच्छे कामोंकी ही ओर रहेगा। हमारे लिए जो कुछ होगा, वह सब शुभ और अच्छा ही होगा और तब तुम देखोगे कि थोड़े ही दिनोंमें ये सब बातें प्रत्यक्ष रूपसे तुम्हारे सामने आ जायँगी। उस समय तुम्हें यह देखकर बहुत अधिक आश्चर्य होगा कि निद्राका, मनुष्यके स्वास्थ्य, आचरण और स्वभाव आदिपर, कैसा अच्छा और कितना अधिक प्रभाव पड़ता है।



६—मानसिक अवस्था और आरोग्य

अब तक जो कुछ बतलाया गया है उससे पाठकोंने यह बात अच्छी तरह समझ ली होगी कि हमारे शारीरिक स्वास्थ्यका हमारी मानसिक अवस्थाके साथ कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, और हमें जो रोग आदि होते हैं वे प्राय: हमारे शारीरिक अपराधों और मानसिक दोषोंके फलस्वरूप ही होते हैं । परन्तु इन सबके पारस्परिक अमूल्य सम्बन्धका महत्त्व शायद बहुत ही थोड़े आदमियोंने पूरी तरहसे समझा होगा । अत: इस प्रकरणमें यह बतलानेका प्रयत्न किया जायगा कि जब तक मनमें रोगयुक्त विचार उत्पन्न होते रहेंगे तब तक पूर्ण आरोग्यता प्राप्त होना नितान्त असम्भव है ।

हमारे आरोग्यका वास्तविक मूल हमारी वासनाओं और विचारों आदिमें ही होता है । यदि हमरे विचार और हमारी वासनाएँ अच्छी होंगी, तो हमारा शरीर भी पूर्ण रूपसे स्वस्थ और नीरोग रहेगा और यदि वे विचार और वासनाएँ दूषित होंगी, तो हम भी रोगी और अस्वस्थ रहेंगे । जिस व्यक्तिकी मानसिक दृष्टिके सामने सदा अपवित्र, दूषित और गन्दे चित्र रहेंगे वह व्यक्ति स्वयं कभी पूर्ण पवित्र और शुद्ध नहीं हो सकता । इसी प्रकार जिस व्यक्तिके विचार दूषित होंगे वह कभी स्वस्थ और नीरोग न रह सकेगा । मतलब यह कि यदि मनमें किसी प्रकारका रोग या विकार रहेगा, तो शरीर कभी नीरोग और निर्विकार न रह सकेगा ।

यदि स्वास्थ्यका स्रोत कहींसे दूषित होता है, तो वह स्वयं अपने उद्गम स्थानसे ही दूषित होता है और उसका वह उद्गम स्थान हमारा

विचार और हमारा आदर्श है। वैज्ञानिकोंने अनुसन्धान करके इस बातका पता लगाया है कि हमारी विशिष्ट मनोवृत्तियोंका हमारे विशिष्ट अवयवोंपर विशिष्ट परिणाम होता है । बहुत अधिक स्वार्थपरता, लोभ और द्वेष आदिका हमारी प्लीहा और यकृतपर एक विशेष प्रकारका परिणाम होता है । जिस व्यक्तिको गुरदे या मूत्राशयकी कोई बीमारी हो, वह यदि किसीके साथ बहुत अधिक घृणा करे अथवा किसीपर बहुत अधिक क्रोध करे, तो उसका वह रोग बहुत अधिक बढ़ जायगा । मत्सर और डाहका हमारे जिगर या पित्ताशय और हृदयपर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है । यदि हमारे मनमें किसी प्रकारका भय या चिन्ता हो, तो तुरन्त ही हमारे हृदयपर उसका प्रभाव होता हुआ दिखाई देगा । उस समय हमारे हृदयकी गति या तो तीव्र हो जायगी और या मन्द पड़ जायगी । इन क्रियाओंका परिणाम यह होगा कि हमारे शरीरमें रक्तका संचार कम हो जायगा, जिसके फलस्वरूप हमारी पाचनक्रिया ठीक तरहसे न हो सकेगी । इसी प्रकार खिन्नता और द्वेष आदिका भी कुछ कुछ ऐसा ही परिणाम देखनेमें आता है । संसारमें हजारों लाखों आदमियोंकी मृत्यु केवल इसलिए हृदयसम्बन्धी रोगोंसे हो गई है कि उनके मनमें सदा अनेक प्रकारके दूषित और गर्हित भाव उठा करते थे ।

कई बड़े बड़े अनुभवी डाक्टरोंने बतलाया है कि मानसिक चिन्ता और खेदसे ही अनेक प्रकारके बड़े बड़े और बिकट रोग हुआ करते हैं। यदि उनकी सम्मतियोंको एक स्थानपर एकत्र किया जाय, तो एक अच्छी पुस्तिका तैयार हो सकती है । इसी प्रकार यह भी बतलाया गया है कि मनोवृत्तियोंका हमारी त्वचापर यथेष्ट प्रभाव पड़ता है । एक डाक्टरने कहा है कि जब दिमागपर किसी तरहका बहुत ज्यादा जोर

पड़ता है, तब शरीरमें अनेक प्रकारके चर्म रोग हो आते हैं। मिरगी और सनक आदिका हमारी मानसिक अवस्थासे बहुत अधिक सम्बन्ध है। अनेक प्रकारके रोगोंका, अनेक प्रकारकी मनोवृत्तियोंके साथ जो घनिष्ठ सम्बन्ध देखनेमें आता है वह केवल काकतालीय न्यायसे नहीं हो सकता; क्योंकि ऐसे एक नहीं, अनेक उदाहरण देखनेमें आते हैं। इन सब बातोंका परिणाम यह हुआ है कि अब बड़े बड़े डाक्टरोंका ध्यान इस विषयकी ओर विशेष रूपसे आकृष्ट हुआ है और वे इनका विशेष रूपसे अनुसन्धान करने लगे हैं। प्रोफेसर एल्मर गेट्सने इस सम्बन्धमें अनेक प्रकारके प्रयोग करके सिद्ध किया है कि जो लोग बहुत अधिक क्रोध और मत्सर करते हैं अथवा जिनके मनमें इसी प्रकारके और अनेक नीच मनोविकार उत्पन्न होते हैं, उनके शरीरमें बहुत अधिक विषाक्त द्रव्य उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु जो लोग सदा प्रसन्न रहते हैं और जिनके हृदयमें सदा उच्च मनोविकार ही उत्पन्न होते रहते हैं, वे लोग ऐसे विषाक्त द्रव्योंसे बिलकुल बचे रहते हैं। यही नहीं बल्कि उनके शरीरमें बहुत अधिक पोषक तथा बलवर्धक द्रव्य उत्पन्न होते रहते हैं, जो उनकी जीवनी शक्तिको सदा उत्तेजित करते रहते हैं। इनमेंसे क्रोधका विष तो सबसे अधिक भयंकर और नाशक होता है। जिस समय कोई आदमी बहुत अधिक क्रोधमें हो, उस समय यदि उसका थोड़ासा रक्त किसी छोटे जन्तुके शरीरमें प्रविष्ट कर दिया जाय, तो वह जन्तु थोड़ी देरमें मर सकता है। कई ऐसे उदाहरण देखे गए हैं जिनमें क्रुद्ध माताका दूध पीकर बच्चे मर गए हैं। इसी प्रकारकी और भी बहुत सी बातें हैं जिनसे यह अच्छी तरह सिद्ध होता है कि शरीरको स्वस्थ और नीरोग रखनेके लिए मनको शान्त और प्रसन्न रखनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है।

जो आदमी सदा रोगकी ही चिन्ता करता रहेगा, वह भला क्या स्वस्थ और नीरोग होगा। जिसका सब कुछ अपूर्णतापर ही निर्भर होगा वह भला कैसे पूर्ण हो सकेगा। इसलिए यदि हम सदा स्वस्थ और नीरोग रहना चाहते हों तो हमें उचित है कि हम सदा अपने सामने पूर्ण स्वास्थ्य और आरोग्यका आदर्श रक्खें। जिस प्रकार हम अपने आपको और अनेक प्रकारके पापोंसे और अपराधोंसे बचाते हैं, उसी प्रकार हमें अपने आपको सब प्रकारके दूषित और नाशक विचारोंसे भी बचाना चाहिए। बहुतसे लोगोंकी आदत हुआ करती है कि वे स्वस्थ और नीरोग होनेपर भी अपने आपको रोगी समझा करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बहुधा उन्हें वही रोग हो भी जाता है, जिसकी वे कल्पना करते रहते हैं। हम एक ऐसे पढ़े लिखे भले आदमीको जानते हैं जिनकी शारीरिक और मानसिक अवस्था बहुत अच्छी थी, परन्तु जिन्होंने मानसिक रोगोंके सम्बन्धकी केवल एक पुस्तक पढ़-कर ही अपने पीछे एक बहुत बुरा मानसिक रोग लगा लिया था। उस पुस्तकमें सैकड़ों प्रकारके मानसिक रोगोंका वर्णन था। वे हर प्रकारके मानसिक रोगोंके लक्षण अपने आपपर घटाने लगे। संयोगसे दो एक रोगोंके लक्षण—चाहे गलत तरहसे और चाहे सही तरहसे—उनपर घट गए, और उनकी दृढ़ धारणा हो गई कि हमें अमुक मानसिक रोग है। परिणाम यह हुआ कि उन अच्छे भले आदमीको सचमुच वह रोग हो गया और बरसों तक उससे पीछा छुड़ानेमें वे असमर्थ रहे। इसलिए यदि हम चाहते हों कि हमें अमुक रोग न हो तो हमें कभी उस रोगका ध्यान भी न करना चाहिए। यदि कभी संयोगवश हम किसी रोगसे ग्रस्त भी हो जायँ तो भी हमें कभी उस रोगके सम्बन्धमें कोई पुस्तक न पढ़नी चाहिए और न उस रोगके लक्षण अपने आपपर घटाने

चाहिए। प्रायः सभी देशोंके बड़े बड़े चिकित्सक और अच्छे अच्छे चिकित्साग्रंथ रोगियोंको अपने सम्बन्धके रोगोंकी जाँच पड़ताल करने और उनके लक्षणों आदिका विवरण पढ़नेसे मना करते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि उन लक्षणों आदिको पढ़कर मनमें जो भाव उत्पन्न होते हैं, वे उस रोगको और भी अधिक भयंकर बना देते हैं और उस दशामें रोगीका उस रोगसे मुक्त होना और भी कठिन हो जाता है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि हमारी मानसिक अवस्थाका हमारी शारीरिक अवस्थापर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

यदि आप अच्छे अच्छे पुस्तकालयोंके दस पाँच पुस्तकाध्यक्षोंसे मिलें और उनसे पूछें तो आपको पता चलेगा कि चिकित्साशास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकें माँगनेवाले पाठकोंकी संख्या बहुत अधिक होती है। ऐसी पुस्तकें पढ़कर लोग उनमें बतलाए हुए लक्षणोंको अपने ऊपर घटाने लगते हैं। परिणाम वही होता है जो हमने ऊपर मानसिक रोगोंसे सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकके पढ़नेवाले भले आदमीका बतलाया है। जो लोग साधारण विद्या बुद्धिके होते हैं उनके स्वास्थ्यपर इस प्रकारकी पुस्तकें पढ़नेका बहुत नाशक प्रभाव हुआ करता है। वे अपने सम्बन्धमें राईका पर्वत और तिलका ताड़ बना लिया करते हैं। यदि उन्हें जरासा भी कहीं दर्द हुआ तो वे उसे शूल या गठिया समझ बैठते हैं और उस दशामें वे वास्तविक रोगके आनेसे पहले ही इतने अधिक भयभीत हो जाते हैं कि मानो स्वयं उस रोगको निमन्त्रित कर बैठते हैं। इसीको कहते हैं—आ बला मेरे गले लग।

यदि ऐसे लोगोंके वंशमें किसी बड़े बूढ़ेको कोई बिकट रोग हो चुका होता है, तो उसका उनपर और भी भीषण परिणाम होता है। वे समझने लगते हैं कि यह रोग अवश्य ही हमारे शरीरमें है और यदि

इस समय नहीं है तो शीघ्र ही हुए बिना न रहेगा। बस, मनमें इस प्रकारका भाव उदित होते ही शरीर रोगी होने लगता है और पहले तो वही रोग और नहीं तो फिर कोई और दूसरा बिकट रोग उन्हें आ-घेरता है। उनका शरीर रोगका घर हो जाता है और वे किसी कामके नहीं रह जाते। उन्हें सदा मृत्युका भय लगा रहता है और वे मानो स्वयं ही दौड़कर मृत्युके पास पहुँचने लगते हैं। उन्हें सदा इस बातका खटका लगा रहता है कि हम, अब मरे तब मरे। अब यदि ऐसे आदमी असमयमें ही मर जायँ, तो इसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है?

जो लोग सदा अपने रोगी होनेकी ही चर्चा किया करते हैं और जिनके हृदयमें अपने रोगी होनेकी दृढ़ धारणा होती है, वे रोगी होनेके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकते। परन्तु यदि ऐसे लोग अपने विचारका प्रवाह बदलकर उसे विपरीत दिशामें ले जायँ, तो वे बिना किसी प्रकारके औषध आदिका व्यवहार किए ही बहुत शीघ्र और बहुत सहजमें नीरोग हो सकते हैं। हृदयमें केवल स्वास्थ्य और आरोग्यका ध्यान रखनेसे बहुतसे रोगोंकी चिकित्सा आपसे आप हो जाती है। संसारमें स्वास्थ्यका विचार ही सबसे बड़ा रोगनाशक औषध है।

बहुतसे ऐसे लोग होते हैं जो अपने मित्रोंसे मिलते ही सबसे पहले अपने अस्वस्थ या रोगी होनेका ही रोना रोया करते हैं। वे कहते हैं, आज हमारी तबीयत ठीक नहीं जान पड़ती, आज तो हमें बुखार सा मालूम होता है, आज तो भोजन ठीक तरहसे नहीं पचा, आजकल सुस्ती बहुत बढ़ गई है, आजकल हम बहुत कमजोर हो गए हैं, कल रातको हमें नींद नहीं आई, इससे आज तबीयत कुछ भारी है। आदि आदि। भला जिन लोगोंके हृदयमें दिन रात इसी प्रकारके विचार रहते हों वे

क्या स्वस्थ और नीरोग होंगे। प्रत्येक व्यक्तिको सदा अपने स्वास्थ्यके वकीलके रूपमें रहना चाहिए। उसे कभी अपनी तन्दुरुस्तीकी शिकायत नहीं करनी चाहिए बल्कि सदा यही कहते रहना चाहिए कि हमारा स्वास्थ्य बहुत ठीक और बहुत अच्छा है। उसे अपने स्वस्थ होनेके सम्बन्धमें अधिकसे अधिक प्रमाण सदा अपने पास प्रस्तुत रखने चाहिए और यथाशक्ति अपने अच्छे स्वास्थ्यकी बराबर वकालत करते रहना चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि वह जल्दी कभी बीमार ही न पड़ेगा और सदा नीरोग तथा स्वस्थ रहेगा। अपने स्वास्थ्यकी इस प्रकार सदा वकालत करते रहनेका जो शुभ परिणाम होगा वह बहुत ही आश्चर्यजनक होगा।

एक बार एक रोगीको एक डाक्टर साहब देखनेके लिए गए। उस रोगीकी अवस्था कुछ चिन्ताजनक थी, इसलिए उसे देखते ही डाक्टर साहब हताश और निराशसे हो गए। उस समय तो कुछ नहीं बोले; पर जब वे अपनी फीस लेकर चलने लगे तब उन्होंने बाहर बरामदेमें आकर उस रोगीकी सेवाशुश्रूषा करनेवाली दाईसे कहा कि यह रोगी किसी प्रकार बच नहीं सकता। संयोगसे डाक्टर साहबकी बात उस रोगीके कानमें पहुँच गई। परन्तु वह रोगी समझदार था और डाक्टर-साहबकी गोलियोंकी अपेक्षा अपने मानसिक बलपर अधिक विश्वास रखता था। जब वह दाई लौटकर उसके पास आई तब उसने बहुत ही दृढ़तापूर्वक उससे कहा, "डाक्टर साहबने जो कुछ कहा है वह ठीक नहीं है। मैं कभी नहीं मरूँगा और जल्दी ही बिलकुल अच्छा हो जाऊँगा।" हुआ भी ऐसा ही। थोड़े ही दिनोंमें वह बिलकुल नीरोग हो गया। उसने अपनी मानसिक शक्तिसे ही अपनी चिकित्सा कर ली थी।

यदि हम अपने मनसे दुर्बलता और रोग आदिका विचार बिलकुल निकाल दें और अपने आपको बराबर बलवान् और नीरोग समझते रहें, तो अवश्य ही हम सदा रोग और दुर्बलता आदिसे बहुत दूर रहेंगे। यदि हम सदा सब प्रकारके दोषों, पापों और दुष्कृत्यों आदिसे बचे रहें, अपने मनको सदा शुद्ध पवित्र और उच्च रक्खें, सदा अच्छे आदर्शोंपर दृष्टि रक्खें, और अपने मानसिक बलसे भली भाँति परिचित हों तो शायद कभी कोई रोग हमारे पास नहीं फटक सकता। कभी न कभी वह समय अवश्य आवेगा जब कि केवल शुद्ध विचारोंसे ही सब प्रकारके रोगोंकी चिकित्सा हुआ करेगी और जब कि किसी रोगी आदमीको देखकर लोग कहेंगे कि इसने किसी न किसी प्रकारका मानसिक पाप या अपराध किया है। सुप्रसिद्ध विद्वान् हम्बल्टने कहा है—"एक वह समय आवेगा जब कि बीमार होना बड़े अपमानकी बात समझा जायगा और जब कि लोग किसी रोगीको देखकर कहेंगे कि यह इसके किसी मानसिक पापका परिणाम है।" वह ऐसा समय होगा जब कि शुद्ध और बलवान् हृदयके लोगोंपर रोग अपना कोई प्रभाव ही न डाल सकेगा। क्योंकि उस समय सब लोग यह तत्त्व अच्छी तरह समझ लेंगे कि जिनके विचार शुद्ध और पवित्र होते हैं वे कभी रोगी नहीं हो सकते। पहले लोग यही समझा करते थे कि बदहज्मी और अतिसार आदि रोग पेटमें किसी प्रकारकी गड़बड़ी होनेके कारण हुआ करते हैं। पर अब लोग यह समझने लगे हैं कि इन रोगोंका कारण रोगीके विचारोंकी गड़बड़ी है। जिन लोगोंकी मानसिक अवस्था ठीक नहीं रहती, उन्हें ही इस प्रकारके रोग हुआ करते हैं। अब यह बात सिद्ध हो गई है कि अतिसार रोग बहुत अधिक चिन्ता, दुःख और ईर्ष्या आदिका ही परिणाम है। इसी प्रकार और भी अनेक रोगोंके विषयमें समझना

चाहिए। यद्यपि अभी तक लोगोंने यह बात नहीं समझी है कि मानसिक विकारों आदिका शरीरपर क्या परिणाम होता है, पर शीघ्र ही लोग यह समझ लेंगे कि मनमें किसी प्रकारका दुर्भाव लाना ही मानो अपने आपको रोगी बनाना है।

हमें कभी अपने मनमें यह नहीं समझना चाहिए कि हमारे शरीरमें अमुक प्रकारके कीटाणु हैं और वे हमारा स्वास्थ्य नष्ट करनेकी ताकमें हैं। इस प्रकारके जितने विचार हैं वे सब हमारे स्वास्थ्यके लिए स्वयं उन कीटाणुओंकी अपेक्षा कहीं अधिक हानिकारक हैं। यही नहीं बल्कि सब प्रकारके दुर्भाव, सब प्रकारके दूषित मनोविकार—जैसे ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा, लोभ, स्वार्थपरता आदि—भी हमारी पाचन क्रिया और रक्त संचालन आदिमें अनेक प्रकारके विकार और दोष उत्पन्न करते हैं, जिनके परिणामस्वरूप हमें अनेक प्रकारके रोग आदि होते हैं। वास्तवमें हमारे मनमें ही हमें नीरोग रखनेकी सबसे अधिक शक्ति है। यदि हमारे मनमें किसी प्रकारका रोग या विकार है तो हमारा शरीर कभी नीरोग या निर्विकार नहीं रह सकता। यदि हमारे विचारमें किसी प्रकारकी दुर्बलता या दोष है तो हमारा शरीर कभी सबल और निर्दोष नहीं रह सकता। जब तक हम अपने स्वास्थ्यके सम्बन्धमें किसी प्रकारका सन्देह या चिन्ता करते रहेंगे, जब तक हम अपने मनमें रोगी होनेका भाव रक्खेंगे और जब तक हमारा स्वास्थ्यसम्बन्धी आदर्श त्रुटिपूर्ण रहेगा तब तक हमारा पूर्ण स्वस्थ रहना असम्भव है। हमें यह बात अपने मनमें बहुत अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि हमारा जीवन और स्वास्थ्य सदा हमारे मन और विचारका ही अनुकरण करता हुआ चलता है।

हम लोग बाल्यावस्थासे पढ़ने लिखने और अनेक प्रकारके काम सीखनेमें बहुत कुछ परिश्रम और व्यय करते हैं। यह सब परिश्रम और

व्यय केवल इसी लिए होता है कि हमारा जीवन सुखपूर्ण हो। हम यह भी जानते हैं कि यदि हमारा सब काम ठीक और व्यवस्थित ढंगसे होगा, तो हम सुखी और सफल हो सकेंगे। हम जिस काममें पूर्ण सफल होना चाहते हैं, वह काम बहुत अधिक सोच विचारकर करते हैं। परन्तु हमारे जिस स्वास्थ्य-पर हमारा सर्वस्व अवलम्बित होता है, उसे ठीक रखनेके लिए हम कोई ठीक प्रयत्न नहीं करते। यह कितनी बड़ी लज्जाकी बात है? क्यों न हम अपने स्वास्थ्यके सम्बन्धमें भी वैसी ही अच्छी अच्छी भावनाएँ करें और क्यों न हम बराबर यही सोचा करें कि हम बहुत ही स्वस्थ और नीरोग हैं और सदा ऐसे ही रहेंगे?

हमारी सब प्रकारकी शक्तियाँ केवल हमारे स्वास्थ्यपर ही निर्भर करती हैं। यदि हम पूर्ण रूपसे स्वस्थ रहें तो हमारी सब शक्तियाँ दूना और चौगुना काम करती हैं। केवल स्वस्थ रहने पर ही हम अपने सब कामोंमें सफल हो सकते हैं और यथेष्ट नाम तथा धन कमा सकते हैं। तो फिर क्यों न हम अपना स्वास्थ्य सदा ठीक रखनेका पूरा पूरा उद्योग करते रहें। जिस प्रकार मजबूत और भारी मकान बनानेके लिए अच्छी और गहरी नींवकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार चरित्र और जीवन बनानेके लिए भी नींवकी आवश्यकता होती है और वह नींव हमारा स्वास्थ्य ही है। अपना स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिए हमें बिलकुल वैज्ञानिक और बुद्धिमतापूर्ण उपायोंका अवलम्बन करना चाहिए। हमें सदा यही समझना चाहिए कि हम स्वस्थ हैं और सदा स्वस्थ रहेंगे। हमें कभी अपने रोगी होनेकी कल्पना या चर्चा तक न करनी चाहिए और सदा अपनी दृष्टिके सामने स्वास्थ्यका बहुत अच्छा आदर्श रखना चाहिए। हमें समझ लेना चाहिए कि स्वास्थ्यका हमारे नैतिक आचारसे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है और व्यवस्थापूर्ण रहन सहनसे ही हम स्वस्थ

रह सकते हैं। हमें अपने मनपर पूरा पूरा अधिकार रखकर अपने स्वास्थ्यको नष्ट होनेसे बचाना चाहिए।

विश्वासका स्वास्थ्यके साथ बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि हम रोगी होनेपर किसी ऐसे चिकित्सककी चिकित्सा करें जिसपर हमारा कुछ भी विश्वास न हो, तो उसकी चिकित्सासे हमें कभी कुछ भी लाभ न होगा। तो फिर क्यों न हम स्वयं ही उस विश्वाससे अपना स्वास्थ्य सुधारनेका काम लें? यदि हम अपने मनमें स्वस्थ होनेका दृढ़ निश्चय रक्खेंगे, तो फिर हम सहसा कभी अस्वस्थ न होंगे। परन्तु, जब तक हम अपने स्वास्थ्यके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी आशंका या सन्देह करते रहेंगे, तब तक हम कभी स्वस्थ न रह सकेंगे। जिस प्रकार माली अपने बागको स्वच्छ रखनेके लिए उसमेंसे सब प्रकारके निरर्थक झाड़ झंखाड़ और घास फूस आदि निकालकर फेंक देता है, उसी प्रकार हमें भी अपना स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिए सब प्रकारके दुष्ट विचारोंको अपने हृदयसे निकाल देना चाहिए। हमें समझ लेना चाहिए कि यही दुष्ट विचार हमारे स्वास्थ्यके लिए अधिक घातक और नाशक हैं।

यदि हम केवल अस्वस्थ होनेके कारण ही संसारमें अपने महत्त्वपूर्ण कर्तव्योंका ठीक तरहसे पालन न कर सकें तो मानो हम अपनी अयोग्यता सिद्ध करते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि हममें किसी प्रकारकी दुर्बलता और दोष है। बहुतसे ऐसे समझदार लोग भी होते हैं जो अपने आपको रोगी और अस्वस्थ कहते हुए लज्जित होते हैं; क्योंकि वे जानते हैं कि रोगी या अस्वस्थ होना हमारे नैतिक और मानसिक पतनका लक्षण है। उससे सिद्ध होता है कि हमने प्रकृतिका कोई न कोई अपराध किया है। क्योंकि बिना प्रकृतिका अपराध किए कभी कोई रोगी हो ही नहीं सकता। प्रकृतिने हमें सदा स्वस्थ और नीरोग रहनेके लिए

बनाया है। पर साथ ही हमारे लिए कुछ विशिष्ट नियम भी बना दिए हैं। जब हम उन नियमोंका उल्लंघन करते हैं, तभी हम रोगी होते हैं। हमारी सृष्टि बहुत बड़े बड़े काम करनेके लिए हुई है और यदि हम अव्यवस्थित रूपसे रहकर अपने आपको रोगी और उन कार्योंको सम्पन्न करनेके अयोग्य हो जायँ, तो हम ईश्वरके सामने कितने बड़े अपराधी ठहरते हैं! हमारे जीवनका जो मुख्य उद्देश्य है वह अवश्य पूरा होना चाहिए और यदि वह किसी कारणसे पूरा नहीं होता है, तो उसके लिए हम अपराधी हैं। हम तो सदा सुखी और स्वस्थ रहनेके लिए बनाए गए हैं। परन्तु, यदि इतनेपर भी दुखी और अस्वस्थ रहें, तो इसमें हमारे अतिरिक्त और किसका अपराध है?

जिस समय हमें अपने ईश्वरांशका पूरा पूरा ज्ञान हो जायगा, उस समय हम कभी रोगी न होंगे। उस समय हमें अपने आपको रोगी कहनेमें भी उतनी लज्जा और संकोच होगा, जितना कि हमें अपने आपको चोर या बदमाश कहनेमें होता है। हममें एक ऐसी शक्ति है जो न तो कभी जन्म लेती है, न कभी रोगी होती है और न कभी नष्ट होती है। परन्तु हम उस शक्तिका ठीक ठीक उपयोग करना नहीं जानते और इसी लिए हम रोगी रहते हैं। परन्तु, जब हमें उस शक्तिका पूरा पूरा ज्ञान हो जायगा, तब हम उसका ठीक ठीक उपयोग न कर सकनेके कारण अवश्य लज्जित होंगे। परमात्माने हमें वह शक्ति, अपना वह अंश, इसी लिए दिया है कि उसीके द्वारा हमारा शरीर सदा ठीक बना रहे और बराबर अपना पूरा पूरा काम किया करे। यदि यह तत्त्व हमारी समझमें अच्छी तरह आ जाय, तो फिर हमारे पूर्ण रूपसे सुखी और स्वस्थ रहनेमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं हो सकता। परन्तु, जब तक हम यह तत्त्व न समझेंगे तब तक कभी सुखी और स्वस्थ भी न रह

सकेंगे। बस यही हमारे स्वास्थ्य और जीवनका मूल तत्त्व है और इसे ही सब लोगोंको भली भाँति हृदयंगम कर लेना चाहिए।

मन ही मनुष्य है। वही वास्तवमें जीवन है। सदा स्वस्थ और सुखी रहनेका सबसे अच्छा और एक मात्र उपाय यही है कि हम अपने आपको ईश्वरका अंश समझ कर सदा सुख और स्वास्थ्यकी ही कामना और चिन्तन किया करें। हमें अपने मनमें इस बातका दृढ़ विश्वास कर लेना चाहिए कि संसारकी कोई शक्ति हमें उस ईश्वरांशसे पृथक् नहीं कर सकती और न हमें रोगी या दुःखी कर सकती है। हमें सदा यह भी विश्वास रखना चाहिए कि सारे विश्वमें एक मात्र ईश्वरीय तत्त्व ही सर्वशक्तिमान् है और वह सदा हमारे पक्षमें है। उसीसे सब पदार्थोंकी सृष्टि होती है और जिसके पक्षमें इतनी बड़ी शक्ति हो, वह कभी रोगी या दुखी नहीं हो सकता।

मानस-चिकित्सा

प्रो० एल्मर सी० गेट्सने अनेक प्रकारके प्रयोग करके यह सिद्ध किया है कि मनुष्यके मनमें जितने प्रकारके विकार उत्पन्न होते हैं, उन सबके कारण शरीरके रासायनिक द्रव्योंमें किसी न किसी प्रकारका परिवर्तन होता है। जितने दुष्ट मनोविकार होते हैं, उन सबसे हानिकारक और विषाक्त रासायनिक तत्त्व उत्पन्न होते हैं और जितने सुन्दर तथा शुद्ध मनोविकार होते हैं उनसे हमारे शरीरका पोषण करनेवाले और बल बढ़ानेवाले रासायनिक तत्त्व उत्पन्न होते हैं। हमारे मनमें उत्पन्न होनेवाला प्रत्येक विकार हमारे मस्तिष्कके कोषाणुओंमें एक प्रकारका विकार उत्पन्न करता है और वह विकार बहुत कुछ स्थायी रूपसे हमारे शरीरमें अपना घर कर लेता है।

उक्त प्रोफेसर महोदयका यह भी कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति कमसे कम एक घंटे तक अपने मनमें सुन्दर शुभ और आनन्ददायक विचार उत्पन्न करके अपने मन तथा शरीरकी बहुत अच्छी रचना कर सकता है। जिस प्रकार लोग अपना शरीर स्वस्थ रखनेके लिए नित्य नियमित रूपसे किसी न किसी प्रकारका व्यायाम करते हैं या टहलते हैं, उसी प्रकार नित्य और नियमित रूपसे अपने मन और शरीरके कल्याणके लिए उन्हें यह मानसिक व्यायाम भी अवश्य करना चाहिए। इस मानसिक व्यायामके लिए केवल यही आवश्यक है कि हम कुछ समयके लिए क्रोध, मत्सर, द्वेष, स्वार्थ और घृणा आदिके दूषित विचारोंको बिलकुल निकाल दें और उनके स्थानपर दया, सहानुभूति, परोपकार आदि कोमल और आनन्ददायक वृत्तियोंकी स्थापना करें। यह व्यायाम

नित्य प्रति एक घंटेसे डेढ़ घंटे तक और नियमित रूपसे होना चाहिए। प्रायः एक मास तक नियमित रूपसे यह व्यायाम करनेके बाद बहुत ही आश्चर्यजनक परिणाम देखनेमें आवेगा। शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकारकी क्रियाओंपर इस व्यायामका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट करनेमें यों तो तमाखू या सिगारेट, भाँग, शराब, गाँजा और अफीम आदि पीना या और अनेक प्रकारके अनाचार करना बहुत कुछ सहायक हुआ ही करता है, पर इसके अतिरिक्त उसके नाशके और भी अनेक उपाय तथा साधन हैं। क्रोधसे हमारे थूकमें ऐसा भीषण विष उत्पन्न होता है जो कुछ अधिक तीव्र होनेपर हमारे प्राण तक ले सकता है। इसी प्रकार और भी अनेक ऐसे मनोवेग हैं जिनके सहसा और अधिक मानमें उदय होनेसे, थोड़ी ही देरमें हृदय बहुत अधिक दुर्बल हो जाता है और कभी कभी आदमी मर भी जाता है। जब हम बहुत जल्दी जल्दी चलते या सीढ़ियाँ चढ़ते हैं, तब हमारा श्वास जल्दी जल्दी चलने लगता है, हमारा हृदय धड़कने लगता है, और शरीरमें पसीना निकलने लगता है। इसी प्रकार, जब हम कोई बहुत बड़ा अपराध करते हैं और हमारे पकड़े जानेकी आशंका होती है, तब भी हमारा श्वास बहुत तीव्र गतिसे चलने लगता है, हमा[रा] हृदय धड़कने लगता है और हम पसीना आ जाता है। परन्तु वैज्ञानिकोंने बहुत कुछ अनुसन्धान करके यह पता लगाया है कि श्वासकी इन दोनों गतियों, हृदयकी इन दोनों धड़कनों और दोनों पसीनोंमें बहुत अधिक अन्तर है। कुछ वैज्ञानिकोंने कई ऐसे वैज्ञानिक और रासायनिक उपाय निकाले हैं, जिनकी सहायतासे वे किसी आदमीके पसीनेसे ही यह बात जान लेते हैं कि वह पसीना अधिक परि-

श्रम करनेके कारण हुआ है अथवा कोई भीषण अपराध करनेके कारण । अपराधियोंके पसीनेमें, जब एक विशेष प्रकारका क्षार डाला जाता है, तब वह पसीना तुरन्त पीले रंगका हो जाता है । परन्तु साधारण परिश्रम करनेपर जो पसीना होता है, उसमें वह क्षार डालनेसे उसका रंग नहीं बदलता ।

प्रोफेसर गेट्स कहते हैं कि मान लीजिए कि एक कमरेमें दस बारह आदमी बैठे हैं । उनमेंसे किसीका चित्त उद्विग्न है, किसीको अपने किसी दुष्कृत्यके कारण पश्चात्ताप हो रहा है, कोई बड़ा भारी द्वेषी है, किसीका स्वभाव बहुत चिड़चिड़ा है, कोई सदा प्रसन्न रहनेवाला है और कोई दयालु तथा परोपकारी है । यदि उन सब आदमियोंका पसीना अलग अलग लेकर, रासायनिक प्रयोगोंसे परीक्षा की जाय, तो बिलकुल निश्चित रूपसे और ठीक ठीक यह मालूम हो जायगा कि कौनसा पसीना किस स्वभाव तथा प्रकृतिके आदमीका है ।

शायद यह बात तो सभी लोग जानते हैं, कि अनेक अवसरोंपर बहुतसे लोगोंके प्राण सिर्फ डर दहशतके मारे ही निकल गए हैं और कदाचित् विज्ञ पाठकोंको यह भी बतलानेकी आवश्यकता न होगी कि अनेक अवसरोंपर केवल साहससे ही मनुष्यमें बहुत अधिक बल आ जाता है । यदि किसी घोड़े या कुत्तेपर क्रोध करके उसे डरा दिया जाय, तो उसकी नाड़ीकी गति तुरन्त ही बहुत मन्द पड़ जाती है । इससे सिद्ध होता है कि भयका शरीरपर परिणाम होता है । यदि भयका पशुओंपर इतना अधिक प्रभाव पड़ता है, तो हम सहजमें समझ सकते हैं कि कोमल बालकोंपर उसका क्या प्रभाव पड़ता होगा । कभी कभी केवल रातभर शोक करनेसे ही लोगोंकी बहुत बुरी दशा हो जाती है । इसी प्रकारकी और भी अनेक ऐसी बातें बतलाई जा सकती हैं जिनसे

सिद्ध होता है कि मनोविकारोंका शरीरपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

महान् पुरुष वही है जो अपने मन और मनोविकारोंपर शासन करना जानता हो। ऐसा आदमी क्रोध आनेके समय तुरन्त अपनी मनोवृत्ति बदल लेता है और क्रुद्ध नहीं होता बल्कि प्रसन्न रहता है। ऐसा आदमी जब अपने सामने किसी प्रकारका प्रलोभन देखता है तो उसकी ओरसे तुरन्त मुँह फेर लेता है। यदि कभी ईर्ष्या करनेका अवसर आता है तो उसके स्थानपर वह अपने मनमें प्रेम और उदारता ले आता है। ऐसे आदमीके मनमें जब किसी प्रकारकी क्रूरताका भाव आने लगता है तब वह सहानुभूति दिखलाने लग जाता है। मतलब यह कि जब कभी कोई दुष्ट मनोभाव उत्पन्न होनेको होता है तब वह उसके विपरीत कोई सुन्दर भाव अपने मनमें ले आता है और इस प्रकार अपने शरीरको उस दुष्ट मनोभावके भीषण विषसे रक्षित रखता है। जब किसी प्रकारका विष किसीके शरीरमें प्रविष्ट कर जाता है तब योग्य डाक्टर ऐसा औषधोपचार करते हैं, जिससे उस विषकी शक्ति बिलकुल नष्ट हो जाय और उसका कोई प्रभाव न रह जाय। मनमें किसी प्रकारका दुर्भाव उत्पन्न होनेपर ठीक ऐसी ही प्रतिक्रिया करनी चाहिए। प्रसन्नतासे दुःख और चिन्ताके विषका नाश होता है। प्रेम और सहानुभूतिसे घृणा तथा ईर्ष्याका विष नष्ट होता है। स्वास्थ्यके विचार और कल्पनासे रोगके विचारके विषका नाश होता है। इसी प्रकार प्रत्येक प्रकारका विष उसके विपरीत भावसे नष्ट होता है। ज्यों ही मनमें यह विपरीत भाव उत्पन्न होता है त्यों ही दुष्ट विचारका विष नष्ट होने लगता है।

बालकोंको जिस प्रकार और सब तरह तरहकी विद्याएँ सिखाई जाती हैं, उसी प्रकार उन्हें यह भी सिखाया जाना चाहिए कि मनमें बुरे भाव

लानेका शरीरपर क्या दुष्परिणाम होता है और उस दुष्परिणामसे बचनेके लिए किस प्रकारकी प्रतिक्रियाएँ करनी चाहिएँ। यदि लोगोंको आरम्भसे ही इस प्रकारकी शिक्षा मिलने लगे, तो संसारमें रोग, दुःख और पीड़ा आदिका कहीं न नाम भी न रह जाय। उस दशामें न तो हमें इतने रोगी देखनेको मिलें और न इतने चिकित्सालय। न इतने अपराधी देखनेको मिलें और न इतने जेलखाने। न इतने मनहूस दिखलाई पड़ें और न इतने पागल। न इतने हत्यारे दिखलाई पड़ और न इतने आत्महत्या करनेवाले।

प्राय: लोग यह बात नहीं जानते कि मनमें किसी प्रकारका मनोभाव उत्पन्न होनेपर क्या क्या क्रियाएँ होती हैं और उनका हमारे शरीरपर क्या प्रभाव पड़ता है और इसी लिए अधिकांश लोगोंके मन और शरीरमें अनेक प्रकारके विष उत्पन्न हो जाते हैं जिनके परिणामस्वरूप अनेक प्रकारके रोग, अपराध तथा इसी प्रकारके दूसरे अनर्थ देखनेमें आते हैं। हम अपने मानसिक दोषोंके कारण स्वयं ही शरीर तथा मन विषाक्त कर लेते हैं और यह नहीं जानते कि हमारे स्वास्थ्य तथा सामाजिक कल्याणके लिए हमारा यह अज्ञान कितना अधिक हानिकारक है और हम अपने मनकी अवस्था ठीक न रखकर अपना, ईश्वरका तथा समाजका कितना बड़ा अपराध करते हैं। हम यह भी नहीं जानते कि हमारे शरीरमें जो विष उत्पन्न हो जाते हैं उनका किस प्रकार नाश करना चाहिए और उनके दूषित प्रभावसे अपने आपको किस प्रकार बचाना चाहिए। परन्तु यही सबसे बड़ी और ऐसी विद्या है जिसका जानना प्रत्येक व्यक्तिके लिए बहुत ही आवश्यक है और जिसका ज्ञान न होनेके कारण ही संसारमें इतनी विपत्तियाँ और दुःख दिखाई पड़ते हैं।

जो लोग अधिक क्रोध, शोक, दुःख, चिन्ता, ईर्ष्या और द्वेष आदि करते हैं वे प्रायः युवा और अधेड़ अवस्थामें ही बिलकुल वृद्ध और क्षीणकाय दिखाई पड़ते हैं। कभी कभी तो इस प्रकारके तीव्र दुष्ट मनोवेगोंके कारण लोग हफ्ते दो हफ्ते या महीने दो महीनेमें ही मर जाते हुए भी देखे गए हैं। कारण यही है कि इन मनोवेगोंसे भीषण विष उत्पन्न होते हैं जिन्हें हमारा शरीर सहन नहीं कर सकता और फलतः प्राण निकल जाते हैं। यदि ऐसे विषोंका प्रभाव दूर करनेवाली बहुत ही सहज क्रियाओंका लोगोंको पूरा पूरा ज्ञान हो जाय, तो संसारका बहुत अधिक कल्याण हो सकता है। यदि हमें ज्वर अथवा और किसी प्रकारका रोग होता है तो उसकी चिकित्सा करनेके लिए हमें किसी डाक्टर या वैद्यके पास जाना पड़ता है। परन्तु दुष्ट मनोवेगोंके कारण उत्पन्न होनेवाले विषोंकी चिकित्साके लिए तो हमें कहीं दूर जानेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। उनकी चिकित्सा तो स्वयं हमारे पासमें ही मौजूद रहती है और स्वयं हमारे हाथमें ही रहती है। यदि ऐसी सुगम और उत्तम चिकित्साके अपने पास रहते हुए भी हम उससे लाभ न उठा सकें तो यह हमारी कितनी बड़ी मूर्खता है।

जिस प्रकार जलकी सब प्रकारकी अपवित्रता और गन्दगी किसी न किसी प्रकारकी वैज्ञानिक क्रियासे नष्ट की जा सकती है, उसी प्रकार दूषित मनोविकारोंसे शरीर तथा मस्तिष्कमें उत्पन्न होनेवाले विष भी किसी न किसी मानसिक क्रियासे ही अवश्य दूर किए जा सकते हैं। यदि थोड़ा सा गरम पानी हो और उसमें बहुत सा ठंडा पानी मिला दिया जाय तो वह गरम पानी भी ठंडा हो जाता है। यदि हमारे मनमें थोड़ा सा विषाद उत्पन्न हुआ हो और उस समय हम अपने मनको बहुत अधिक प्रसन्न कर लें तो विषादसे उत्पन्न होनेवाला विष आपसे

आप नष्ट हो जायगा। मानसिक क्रियाओंसे उत्पन्न होनेवाले विषोंका प्रभाव दूर करनेके लिए हमें अपने मनमें तुरन्त ही विपरीत, सुन्दर और शुभ विचार लाने चाहिए जिससे कोई विष अधिक बढ़ने ही न पावे और उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाय। यदि हम यह सिद्धान्त अच्छी तरह जान जायँगे तो फिर न तो हम दुखी या खिन्न ही होंगे और न दुर्बल या रोगी ही।

सबसे पहले प्रेमको ही लीजिए। एक प्रेम भावसे ही हम अनेक प्रकारके विष दूर कर सकते हैं। स्वार्थपरता, लोभ, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा, पापपूर्ण वासना आदि अनेक दुष्ट मनोविकारोंके विष अकेले प्रेम भावसे ही दूर हो सकते हैं और इस प्रकार इसी एक शुभ भावके द्वारा हम अनेक प्रकारकी मानसिक तथा शारीरिक पीड़ाओंसे बहुत सहजमें बच सकते हैं। यदि हम अपने मनमें प्रेम, उदारता, सहानुभूति, प्रसन्नता, साहस, निर्भयता आदि अच्छी अच्छी बातोंको स्थान दे रक्खें, तो फिर उनके विपरीत दुष्ट भाव स्वयं ही हमारे पास न आ सकेंगे। जहाँ पूर्ण प्रकाश पहलेसे ही उपस्थित होगा वहाँ भला अन्धकार कैसे और क्या करने आवेगा? इसी प्रकार जिस हृदयमें पहलेसे ही अच्छे अच्छे भाव उपस्थित होंगे उस हृदयमें दुष्ट भाव कैसे प्रवेश कर सकेंगे? और जब दुष्ट भाव मनमें प्रवेश ही न कर सकेंगे तो फिर उनका विष भी उत्पन्न न हो सकेगा और हमें उसके दूर करनेकी भी आवश्यकता न रह जायगी। आग बुझानेकी लिए पानीकी आवश्यकता होगी; पर जहाँ पहलेसे ही पानी होगा वहाँ आग क्या लगेगी?

अधिकांश लोग बुरी बातों और बुरे भावोंसे दूर तो अवश्य रहना चाहते हैं, पर वे सब अपने मनमें अच्छी अच्छी बातें और अच्छे अच्छे भाव

नहीं लाना चाहते। वे अन्धकारको तो भगाना चाहते हैं पर उसके स्थानपर प्रकाश लाना नहीं चाहते और यही सबसे बड़ी कठिनता है। वे यह नहीं समझते कि जबतक मनमें प्रेम उत्पन्न न किया जायगा तबतक घृणा या ईर्ष्या द्वेष दूर ही नहीं हो सकता। जिस व्यक्तिके साथ हम घृणा करते हों उसके साथ तबतक हम बराबर घृणा करते रहेंगे जबतक हमारे हृदयमें उसके प्रति प्रेमका भाव उत्पन्न न होगा। यदि हम किसी कारणसे भयभीत हो गए हों तो हम तबतक भयभीत ही रहेंगे जबतक अपने मनमें साहस न उत्पन्न करेंगे। इसलिए हमें केवल बुरी बातोंको दूर करनेका ही प्रयत्न न करना चाहिए, केवल इतनेसे ही हमारा काम न चल सकेगा; बल्कि उन बुरी बातोंको हटानेके लिए हमें उनके स्थानपर अच्छी बातोंकी स्थापना करनी होगी और तभी हम उन बुरी बातोंको दूर करनेमें सफल हो सकेंगे।

मनकी उपमा एक उपजाऊ भूमिसे दी जा सकती है। यदि हम उसमें बुरी बातोंका बीज बोएँगे तो उसमें अधिकाधिक बुरी बातें ही उत्पन्न होती जायँगी और यदि हम उसमें अच्छी बातोंको स्थान देंगे तो फिर अच्छी ही बातोंकी वृद्धि होती जायगी। जब मनमें एक बार कोई अच्छा भाव भली भाँति स्थापित हो जाता है तब वह धीरे धीरे आपसे आप और भी अच्छी बातें ले आनेका प्रयत्न करता है। यदि हम और सब बातोंको छोड़कर सदा प्रसन्न ही रहनेका अभ्यास कर लें और दृढ़ निश्चय कर लें कि हम सदा सभी दशाओंमें प्रसन्न ही रहेंगे तो भी हमारे मार्गकी अधिकांश कठिनाइयाँ आपसे आप दूर हो जायँगी। उस दशामें जब हमारे मनमें किसी प्रकारका दूषित भाव आने लगेगा तब हम सोचेंगे कि इस दूषित भावका परिणाम हमारे लिए दुःखदायक होगा। बस यही सोचकर हम उस बुरी बातसे दूर रहेंगे, क्योंकि हम

पहलेसे ही सदा प्रसन्न रहनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर चुके हैं। अथवा यदि हम एक मात्र सत्यको ही अपने हृदयमें स्थान दें और प्रण कर लें कि हम सत्यसे कभी विचलित न होंगे, तो भी हम अनेक प्रकारके दोषों और दुःखोंसे अनायास ही दूर रहा करेंगे। सत्यकी प्रतिज्ञा न तो हमें झूठ बोलने देगी न किसीकी चोरी करने देगी, न किसीकी निन्दा करने देगी और न इसी प्रकारका और कोई दुष्कर्म करने देगी। फिर उस सत्यकी कृपासे हममें और भी अनेक प्रकारके शुभ गुण आने लगेंगे। हम न तो कायर हो सकेंगे, न सशंकित रहा करेंगे और न किसीके साथ ईर्ष्या या द्वेष ही करेंगे। मतलब यह कि हृदयमें पहले किसी एक शुभ गुणको पूर्ण रूपसे स्थान दे लेना चाहिए और प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए कि वह शुभ गुण हम कभी अपने हाथसे न जाने देंगे। इस प्रतिज्ञाका स्वयं तो बहुत कुछ शुभ परिणाम होगा ही, पर साथमें हममें और भी अनेक शुभ गुण आ जायँगे और धीरे धीरे हम सब प्रकारके दुर्गुणोंसे सदाके लिए रक्षित हो जायँगे। हमें तो इससे जो लाभ होगा वह होगा ही, पर साथ ही हमारे समाजको भी इससे अनेक लाभ होंगे। हमारी देखादेखी हमारे बहुतसे मित्र भी हमारे पथका अनुसरण करने लगेंगे। मतलब यह कि यदि हम केवल किसी एक गुणको भी अपने हृदयमें स्थान दें, तो उससे पहले तो स्वयं हमारे मनमें अनेक प्रकारके गुण उत्पन्न होंगे और तब हमारे द्वारा हमारे समाजमें भी उन गुणोंका यथेष्ट प्रचार होने लगेगा। एक बीजसे सहजमें सैकड़ों हजारों सुन्दर फल उत्पन्न होने लगेंगे। तो फिर क्यों न प्रत्येक व्यक्ति अपने मनमें ऐसे सुन्दर बीजोंका आरोपण करे और क्यों न अपना तथा अपने समाजका बहुत बड़ा कल्याण करे?

बहुतसे लोग प्रायः यही समझते हैं कि विचारोंका सम्बन्ध केवल मस्तिष्कसे ही है। बिचारकी जितनी क्रियाएँ और प्रतिक्रियाएँ होती हैं वे सब केवल मस्तिष्कमें होती हैं और उनका शेष सारे शरीरके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं होता। परन्तु यह समझना बहुत ही भ्रमपूर्ण है। वास्तविक बात यह है कि विचारका हमारे सारे शरीरके साथ बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि हम यह कहें कि एक प्रकारसे हमारा सारा शरीर ही मस्तिष्कमय है, तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। शरीर-शास्त्रके पंडितोंने परीक्षा और अनुभव करके देखा है कि बहुतसे अन्धे आदमियोंकी उँगलियों तकमें वही तत्त्व होता है जो साधारण लोगोंके मस्तिष्कमें होता है। बहुतसे अन्धे ऐसे होते हैं जो केवल हाथसे छूकर ही अपने मित्रोंको पहचान लेते हैं, चीजोंके रंग बतला देते हैं, और इसी प्रकारके और ऐसे अनेक काम करते हैं जो साधारण लोग केवल मस्तिष्कसे ही कर सकते हैं। इससे तथा इसी प्रकारके और अनेक अनुभवोंसे यह सिद्ध होता है कि विचार केवल मस्तिष्कका ही व्यापार नहीं है, बल्कि वह हमारे समस्त शरीरका व्यापार है। हमारा सारा शरीर ही मानो एक विशाल मस्तिष्क है। जो विचार हमारे मस्तिष्कमें उत्पन्न होता है वह तुरन्त ही आपसे आप हमारे सारे शरीरमें व्याप्त हो जाता है। कोई भयानक पदार्थ या दृश्य देखते ही शरीर थरथर काँपने लगता है और कोई विशेष आनन्दकी बात होते ही सारे शरीरमें रोमांच हो आता है। यहाँतक देखा गया है कि विशेष दुःखद समाचार सुननेके कारण मस्तिष्क और हृदयकी क्रियाओंके अतिरिक्त पाचनक्रिया तकमें बाधा पहुँचती है। यहाँतक कि बहुत अधिक शोकका समाचार सुननेके कारण कुछ लोगोंके बाल कुछ घंटोंमें ही पक गए हैं। इन सब बातोंसे यही सिद्ध होता है कि जो भाव या विचार मनमें उत्पन्न

होता है, उसका प्रभाव केवल मस्तिष्क तक ही परिमित नहीं रहता बल्कि सारे शरीरमें व्याप्त हो जाता है। अतः हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि जिस बात या क्रियासे कोई एक अंग पीड़ित या विकारयुक्त होता है, उस बात या क्रियासे हमारे शेष समस्त अंग भी पीड़ित या विकारयुक्त हो जाते हैं। अतः यह सिद्ध हुआ कि हमारे मनमें उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक विचारके परिणामस्वरूप या तो हमारे शरीरमें किसी प्रकारके बल आदिकी वृद्धि होती है और या किसी प्रकारका ह्रास। परीक्षा और अनुभव आदिसे यह भी सिद्ध हो चुका है कि जो लोग सदा शान्त, प्रसन्न और साहसी रहते हैं उनके शरीरके कोषाणु भी बहुत ही पुष्ट और नीरोग होते हैं। परन्तु जो लोग सदा दुखी, चिन्तित और भयभीत रहते हैं उनके शरीरके कोषाणु बहुत ही दुर्बल और रोगी रहते हैं। इसलिए अपने शरीरके स्वास्थ्यकी रक्षाके विचारसे प्रत्येक मनुष्यका यह बहुत ही आवश्यक कर्तव्य है कि वह अपने मनमें सदा अच्छे विचार रक्खे और किसी प्रकारके बुरे या दुष्ट विचारको कभी अपने पास तक न आने दे। जब कोई आदमी यह बात अच्छी तरह समझ लेगा कि बुरे भावों और विचारोंका शरीरके प्रत्येक कोषाणुपर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है, तब यदि वह समझदार होगा तो यथासाध्य अपने मनमें कभी कोई बुरा विचार न आने देगा। उस समय वह समझ लेगा कि सब प्रकारके रोगों और कष्टोंका मूल हमारे विचारोंमें ही है और तब वह उन दुष्ट विचारोंसे ठीक उसी प्रकार दूर रहेगा जिस प्रकार लोग जहरीले साँपों आदिसे दूर रहते हैं।

लोग बराबर दुष्ट विचारोंको अपने मनमें स्थान देते देते अपने शरीरके कोषाणुओंको बहुत ही दुर्बल और रोगी बना लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनके मनमें आपसे आप और भी अनेक बुरे

विचार उत्पन्न होने लगते हैं। इसीसे आगे चलकर लोगोंमें बहुत सी बुरी बुरी लतें पड़ जाती हैं और वे अनेक प्रकारके पापों और अपराधों आदिकी ओर प्रवृत्त होने लगते हैं। इस प्रकार वे रोगी भी होते हैं और पापी भी। परन्तु जो लोग अपने मनपर पूरा पूरा अधिकार रखते हैं, जो कभी अपने मनमें किसी प्रकारका दुष्ट विचार नहीं आने देते वे सदा सुखी और नीरोग रहते हैं और ऐसे ही लोग संसारमें महापुरुष कहलानेके अधिकारी होते तथा बड़े बड़े काम कर दिखलाते हैं। हमें भी उचित है कि हम अपने मन तथा विचारोंको सदा दूषित होनेसे बचाते रहें और संसारमें सदा सुखी रहनेके साथ ही साथ अच्छे अच्छे काम करनेमें समर्थ हों।

संसारमें जो अनेक प्रकारके कष्ट, अयोग्यताएँ, त्रुटियाँ और अपराध आदि दिखाई देते हैं, उन सबका कारण यही है कि लोग वैज्ञानिक ढंगसे ठीक ठीक विचार करना नहीं जानते। लोगोंके विचार इतने दूषित होते हैं कि उनका चरित्र ही बिलकुल नष्ट और निरर्थक हो जाता है। यदि लोग सदा उचित रूपसे विचार किया करें और अपने मनको पूर्ण रूपसे वशमें रक्खें, तो उनके मनमें कभी कोई अनुचित काम करनेकी आकांक्षा ही न हो और न किसी बुरे कामकी ओर उनकी प्रवृत्ति ही हो। वास्तवमें दूषित विचारोंके कारण सबसे पहले मानव शरीरके कीटाणु ही दूषित होते हैं जो बादमें उन्हें और अनेक प्रकारके दोषोंकी ओर प्रवृत्त करते हैं। इसीके परिणामस्वरूप उनमें बहुत सी बुरी बुरी आदतें पड़ जाती हैं; परन्तु यदि शरीरके कोषाणु इस प्रकार दूषित न किए जायँ तो संसारमें चारों ओर सुख और सच्चरित्रताका ही राज्य दिखाई दे।

प्रत्येक मनुष्य सदा एक ऐसे विचार-सागरमें निमग्न रहता है जिसमें हर समय सब ओरसे लहरें उठा करती हैं । यदि विरुद्ध दशामें बहा ले जानेवाले विचारोंसे बचनेकी योग्यता, सामर्थ्य और समझ हममें न हो, तो अवश्य ही हम उनकी लहरोंके साथ बहते चले जायँगे और अन्तमें किसी न किसी नाशक चट्टानसे जा टकरायँगे । अतः हमें जीवन क्षेत्रमें प्रविष्ट होते ही यह बात बहुत अच्छी तरह जान लेनी चाहिए कि हमारी जो शत्रु विचार लहरियाँ हमें विपरीत दिशामें बहा ले जाती हैं उनसे अपने आपको किस प्रकार बचाना चाहिए। हमें यह जान लेना चाहिए कि किस प्रकारके विचारों और भावोंके द्वारा हम विरोधी विचारों और भावोंका प्रभाव नष्ट कर सकते हैं । हमें अपने विचारों और भावोंपर पूरा पूरा स्वामित्व प्राप्त करना चाहिए । जब हम अपने विचारोंको ठीक तरहसे और उचित दिशामें प्रवाहित करना सीख लेंगे, तब आन्तरिक तथा बाह्य दोष हमपर अपना किसी प्रकारका प्रभाव न डाल सकेंगे । जो व्यक्ति अपनी बाल्यावस्थामें अथवा अधिकसे अधिक अपनी युवावस्थामें अपने विचारोंपर पूर्ण रूपसे अधिकार करना सीख जाता है और जो उन्हें आवश्यकतानुसार विपरीत दिशामें जानेसे रोककर उचित और अभीष्ट दिशामें संचालित करना सीख लेता है, वह बहुत बड़ा भाग्यवान् होता है । वही आदमी संसारमें सबसे अधिक सफल होता है; क्योंकि वह जो कुछ करना चाहता है वही कर लेता है ।

विलायतमें एक आदमी था जो पहले सदा बहुत ही दुखी, निराश और निरुत्साह रहा करता था । सदा चिन्तित और खिन्न रहनेके कारण उसका जीवन एक प्रकारसे बिलकुल नष्ट हो गया था । उसे अपने आपपर और अपनी योग्यतापर किसी प्रकारका विश्वास न रह गया था और उसने बहुत अच्छी तरह समझ लिया था कि अब इस संसा-

रमें मुझसे कभी कोई काम न हो सकेगा। कुछ दिनों बाद उसने एक ऐसी स्त्रीसे विवाह किया जो बहुत ही प्रसन्नचित्त थी और सदा हँसा करती थी। वह स्त्री जब उसे खिन्न और दुखी देखती तब हँस पड़ती थी और उसका खेद दूर करके उसे भी हँसा देती थी। कुछ दिनों तक उस प्रसन्नचित्त स्त्रीके साथ रहनेके कारण उसकी मनोवृत्ति बिलकुल बदल गई और वह सदा प्रसन्न रहने लगा। इस प्रसन्न रहनेका उसके जीवन और चरित्रपर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। थोड़े ही दिनोंमें उसमें जमीन और आसमानका फर्क हो गया। अब वह जो काम करता था उसीमें उसे सफलता होती थी। थोड़े ही दिनोंमें वह बहुत ही सुखी और सम्पन्न हो गया और उसके इस सारे सुख तथा सम्पन्नताका मुख्य कारण उसकी प्रसन्नचित्त स्त्रीका संग साथ था।

अन्तमें हम अपने पाठकोंको केवल यह बतला देना चाहते हैं कि मनुष्यमें जितने प्रकारके दोष आदि होते हैं उन सबका उद्गम भी स्वयं उन्हींमें होता है और उन्हें दूर करनेका रामबाण उपाय भी स्वयं उसीमें होता है। संसारमें सब प्रकारकी सफलता प्राप्त करनेका एक मात्र उपाय यही है कि हम अपने विचारोंको ठीक दिशामें प्रवाहित करें और उन्हें कभी दूषित न होने दें। जो लोग यह तत्त्व अच्छी तरह समझ लेते हैं उनके लिए संसारसे मानो दुःख और दरिद्रताका सदाके लिए नाश हो जाता है।

८—कल्पनाशक्ति और आरोग्य।

विलायतमें एक बार एक पादरी एक अस्पतालमें लाया गया था। वह कई रोगोंसे इतना अधिक ग्रस्त था कि उसमें सिर उठाने तककी शक्ति न थी। न जाने कैसे उसके मनमें यह बात बैठ गई थी कि मैंने अपने नकली दाँत निगल लिए हैं और अब वे दाँत अन्दर पेटमें जाकर मेरी आँतोंको काट रहे हैं। डाक्टरोंने अनेक प्रकारसे उसे समझा बुझाकर उसका यह भ्रम दूर करना चाहा; परन्तु कुछ भी फल न हुआ। उसकी यह धारणा बराबर बनी ही रही। परन्तु इसके थोड़े ही दिनों बाद उसकी स्त्रीका तार आया जिसमें लिखा हुआ था कि तुम्हारे जो नकली दाँत खो गए थे वे तुम्हारे बिस्तरके नीचे पड़े हुए मिल गए हैं। यह तार पढ़ते ही वह रोगी पादरी तुरन्त अपने मानसिक रोगसे मुक्त हो गया। उसे अपनी मूर्खतापर बहुत पश्चात्ताप हुआ। वह तुरन्त उठकर खड़ा हो गया और कपड़े पहनकर तथा अस्पतालका बिल चुकाकर तुरन्त ही वहाँसे पैदल चलता हुआ और बिना किसीकी सहायतासे आपसे आप अपने घर पहुँच गया।

इसी प्रकारकी एक और बात एक बार हमारे एक मित्र डाक्टरने बतलाई थी। वे कुछ दिनोंतक राजपूतानेकी कई रियासतोंमें रह चुके थे। एक बार उन्हें एक रियासतके किसी गाँवमें एक सरदारके बहुत बीमार होनेका समाचार मिला। उस सरदारके मनमें किसी प्रकार यह दृढ़ धारणा हो गई थी कि एक बड़ी सी काली नागिन मेरे पेटमें पहुँच गई है जो पेटके अन्दरके सब अंग काटे और खाए डालती है।

इस धारणाका परिणाम यह देखनेमें आता था कि वह सदा पेटमें बहुत बिकट पीड़ा होनेका सा नाट्य किया करता था। उस सरदारके कुछ मित्र उक्त डाक्टर साहबको उसकी चिकित्साके लिए ले गए। डाक्टर साहब उसके मानसिक रोगका सब हाल तो पहले ही सुन चुके थे, उन्होंने जाते ही सरदारकी नब्ज देखी और तब पेट देखा और कुछ देर तक सोचते रहनेके उपरान्त उन्होंने कहा—जान पड़ता है कि इनके पेटमें कोई काली नागिन है जो अन्दर ही अन्दर इनका पेट काट रही है। इतना सुनते ही सरदारकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। उसने समझा कि यही एक डाक्टर ऐसे हैं जिन्होंने मेर रोगका ठीक ठीक निदान किया है। क्योंकि अब तक जितने डाक्टर आते थे वे सब यही कहते थे कि पेटमें नागिन किसी प्रकार नहीं जा सकती और यह केवल भ्रम है। पर सरदार अपने आपको जिस रोगका रोगी समझता था वह रोग डाक्टर साहबने बिना उससे कुछ पूछे ही बतला दिया था। इससे डाक्टर साहबपर उसकी बहुत अधिक श्रद्धा और विश्वास हो गया। डाक्टर-साहबने कहा कि मैं तुम्हें एक सप्ताहमें बिलकुल नीरोग कर दूँगा और ऐसी दवा दूँगा जिससे वह नागिन पेटमें ही मर जायगी और उसके टुकड़े टुकड़े कटकर पाखानेके रास्ते निकल जायँगे। बस, डाक्टर साहबने एक नुस्खा लिख दिया जो कुछ दस्तावर था; पर साथ ही उस नुस्खेमें एक ऐसी दवा भी थी जिससे पाखाना बिलकुल काले रंगका होता था। सरदारने पाँच छः दिन तक दवा खाई। उन्हें नित्य काले रंगके चार पाँच दस्त हुआ करते थे और उनकी समझमें यही आता था कि मेर पेटके अन्दरकी नागिनके अंग कट कटकर निकल रहे हैं। एक सप्ताह बाद डाक्टरने कह दिया कि वह नागिन बिलकुल निकल गई। सरदारको पहलेसे ही अपने नीरोग होनेका विश्वास हो रहा था,

इसलिए उसके पेटकी पीड़ा भी दिनपर दिन बराबर कम होती जाती थी और अन्तमें एक सप्ताहमें वे बिलकुल नीरोग हो गए।

उक्त दोनों उदाहरण बिलकुल एकसे ही हैं और उनसे हम एक ही परिणामपर पहुँचते हैं। पादरीका जबतक यह विश्वास था कि मेरे पेटमें नकली दाँत चले गए हैं जो मेरे पेटको अन्दर ही अन्दर काट रहे हैं, तबतक संसारकी कोई दवा उसको फायदा नहीं पहुँचा सकती थी और इसी लिए वह अनेक प्रकारकी पीड़ाएँ अनुभव किया करता था। उसे नीरोग करनेके लिए इस बातका विश्वास दिलानेकी आवश्यकता थी कि या तो वे दाँत पेटमें पहुँचे ही नहीं हैं और या यदि पहुँच गए हैं तो वे अब निकल गए हैं। जब उसे यह विश्वास हो गया कि दाँत पेटमें पहुँचे ही नहीं हैं तब वह आपसे आप बिना किसी प्रकारकी चिकित्साके अच्छा हो गया। इसी प्रकार सरदारको इस बातका विश्वास होनेकी आवश्यकता थी कि या तो मेरे पेटमें नागिन पहुँची ही नहीं है और या यदि पहुँची है तो वह अब निकल गई है। जबतक उसे इन दोनोंमेंसे किसी एक बातका विश्वास न होता तबतक उसके नीरोग होनेकी कोई सम्भावना ही नहीं थी। ज्यों ही उसे इस बातका विश्वास हो गया कि मेरे पेटमेंसे वह नागिन निकल गई, त्यों ही वह आपसे आप अच्छा हो गया। वास्तवमें न तो पादरीके पेटमें कोई दाँत ही पहुँचा था और न सरदारके पेटमें कोई नागिन ही घुसी थी। परन्तु दोनों ही केवल अपने विश्वासके कारण अनेक प्रकारके शारीरिक कष्ट भोग रहे थे और जब उन्हें उसके विपरीत विश्वास हो गया तब वे आपसे आप अच्छे हो गए।

अच्छे अच्छे डाक्टर हमें यह भी बतलाते हैं कि अनेक प्रकारके बड़े बड़े संक्रामक रोग शरीरमें विष प्रविष्ट होनेसे तो होते ही हैं, पर साथ ही उनका हमारी मानसिक अवस्थाके साथ भी बहुत घनिष्ठ

सम्बन्ध है। यदि हमारे मनमें सदा उस संक्रामक रोगका भय बना रहेगा और हमें सदा उससे पीड़ित होनेकी आशंका बनी रहेगी, तो उस दशामें हमपर बहुत सहजमें उस संक्रामक रोगका आक्रमण हो सकेगा और जब एक बार किसी प्रकार उसका विष हमारे शरीरमें प्रविष्ट कर जायगा तब हममें अपने आपको उसके प्रभावसे बचानेकी शक्ति न रह जायगी; अपनी मानसिक दुर्बलता आदिके कारण हम तो मानो पहलेसे ही उसके लिए तैयार बने बैठे होंगे। ऐसी दशामें हमारा शरीर उस विषका कुछ भी प्रतिरोध या प्रतिकार न कर सकेगा; परन्तु यदि हम अपने मनको ठीक दशामें रक्खेंगे, उस रोगसे भयभीत न होंगे और सदा यही सोचते रहेंगे कि वह रोग हमको न होगा, तो एक बार शरीरमें उसका विष प्रविष्ट हो जानेपर भी हमारी कोई हानि न होगी। इसके सिवा यह भी प्रायः देखा जाता है कि जो दृढ़चित्त चिकित्सक अनेक प्रकारके भीषण और संक्रामक रोगोंकी दिन रात चिकित्सा किया करते हैं और जो सदा उन्हीं रोगोंके रोगियोंसे घिरे रहते हैं, वे भी जल्दी कभी उन रोगोंसे पीड़ित नहीं होते। बहुतसे डाक्टर और दाइयाँ आदि ऐसी होती हैं जो हैजे, प्लेग, चेचक आदिके दिनोंमें सैकड़ों हजारों रोगियोंकी चिकित्सा और सेवा शुश्रूषा किया करती हैं, परन्तु उन्हें कभी वे रोग नहीं होते। इसका कारण यही है कि उनके मनमें इस बातका दृढ़ विश्वास होता है कि यह रोग हमें कभी न होगा और केवल अपने मानसिक बलके कारण ही वे उन रोगोंसे बचे रहते हैं।

एक बहुत बड़ा पहलवान था जो एक बार एक बहुत ही भयानक दृश्य देखकर और उसकी भयंकरताका अनुमान मात्र करके ही इतना दुर्बल हो गया था कि वह आध सेर बोझ भी उठानेके योग्य न रह गया था। कुछ ऐसे आदमी भी देखे गए हैं जो क्लोरोफार्मसे

बहुत अधिक भयभीत होनेके कारण क्लोरोफार्मकी शीशी देखते ही बेहोश हो गए हैं और उन्हें अस्त्र-चिकित्साके लिए क्लोरोफार्म सुँघानेकी आवश्यकता ही नहीं रह गई। ऐसे लोग अपनी मानसिक क्रियासे बिना क्लोरोफार्मकी सहायताके आपसे आप बेहोश हो जाया करते हैं।

एक बार एक डाक्टर साहब घरसे मछलीका शिकार खेलनेके लिए निकले। रास्तेमें उन्हें समाचार मिला कि पास ही एक ऐसा रोगी है जिसे किसी कारणसे बहुत अधिक पीड़ा और कष्ट हो रहा है। उस समय डाक्टर साहबके पास न तो औषधों आदिका बक्स ही था और न उनके पास कोई दवा ही थी। पर फिर भी वे तुरन्त उस रोगीको देखने चले गए। वहाँ जाकर उन्होंने उस रोगीको बहुत ही अच्छी तरह देखा और तब मामूली आटेकी कुछ गोलियाँ बनाकर दे दीं और कह दिया ये गोलियाँ थोड़ी थोड़ी देरपर दी जायँ, दो तीन घंटेके अन्दर रोगी बिलकुल अच्छा हो जायगा। डाक्टर साहबके जानेके बाद रोगीको इस बातका बहुत अच्छी तरह विश्वास दिला दिया गया कि जो डाक्टर अभी तुम्हें देखनेके लिए आए थे वे शहरके बहुत बड़े अनुभवी और योग्य डाक्टर हैं और इनकी चिकित्सासे रोगियोंको अवश्य ही तुरन्त लाभ होता है। इस विश्वासका परिणाम यह हुआ कि साधारण आटेकी गोलियोंसे ही वह रोगी थोड़ी देरमें बिलकुल अच्छा हो गया।

ठीक इसीसे मिलता जुलता एक और अनुभव एक बार हमारे एक मित्र डाक्टरने बतलाया था। उन्होंने कहा था कि जब मैं झाँसीमें था तब एक बार रातको बारह या एक बजे एक रोगी मेरे पास बहुत चिल्लाता हुआ आया। पूछनेपर मालूम हुआ कि अंधेरी रातमें उसे रास्तेमें बिच्छूने काट लिया था। मैंने सोचा कि इस समय इतनी रातको कंपाउंडरको बुलवाना और अस्पताल खुलवाकर दवा निकलवाना बहुत

ही कठिन है, इसलिए मैंने उसे केवल विश्वासके बलसे अच्छा करना चाहा। मैंने उससे कहा कि भाई अगर मैं तुम्हें कोई दवा दूँगा तो उससे तुम्हें कई घंटोंमें आराम होगा; पर मुझे बिच्छूके काटनेका एक मन्त्र मालूम है जिससे बिच्छूका जहर पाँच मिनटके अन्दर ही बिलकुल उतर जाता है। तुम जाकर सामनेके नीमके पेड़मेंसे एक छोटी सी डाल तोड़ लाओ। वह आदमी किसी तरह रोता और कराहता हुआ उस पेड़के पास गया और बड़ी कठिनतासे एक छोटी सी डाल तोड़ लाया। मैंने उसी डालसे उसके काटे हुए स्थानको थोड़ी देरतक बार बार छुआ और साथ ही मैं यों ही झूठ मूठ कुछ मन्त्र भी पढ़ता गया। दस ही मिनटमें केवल विश्वासके कारण उसका सारा जहर उतर गया और वह बहुत प्रसन्नतासे वहाँसे चला गया। इतना कह चुकनेके बाद डाक्टर साहबने बहुत हँसते हुए कहा था कि इसके बाद मैं कई बरस तक झाँसीमें रहा, तबसे मेरे पास बिच्छूके काटे बहुतसे आदमी दूर दूरसे आने लगे। मैं उन्हें लगाने और खानेकी दवा देकर अच्छा करना चाहता था; पर वे लोग दवा लेनेके लिए राजी ही न होते थे और केवल मन्त्रबलसे ही अच्छे होना चाहते थे। बल्कि उनमेंसे अधिकांश तो नीमकी डाल अपने साथ ही ले आया करते थे। यद्यपि स्वयं मेरा मन्त्रबलपर कभी किसी प्रकारका विश्वास नहीं था और न अब है, पर विश्वासका यह प्रत्यक्ष फल मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे एक दो बार नहीं सैकड़ों बार देखा है।

एक बार फिलाडेल्फियामें एक प्रकारका बहुत ही भीषण और संक्रामक ज्वर फैला। उस समय वहाँ डाक्टर रश नामक एक बहुत बड़े और प्रसिद्ध डाक्टर थे जो उस ज्वरके बहुत बड़े चिकित्सक समझे जाते थे। उस ज्वरके सम्बन्धमें जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी उसमें

लिखा था कि डाक्टर रशकी उपस्थिति ही बहुत बड़ी दवा थी। केवल उन्हें अपने सामने उपस्थित देखकर ही बहुतसे ऐसे रोगी भी आपसे आप अच्छे हो जाते थे जिन्हें डाक्टर साहब कोई दवा ही नहीं देते थे। मानो डाक्टर साहबकी बातें ही बुखार उतार देनेके लिए काफी थीं।

एक बार एक युवती थिएटर देखनेके लिए गई। वहाँसे किसी कारणसे उसका जी डूबने लगा और वह बेहोश होने लगी। उस समय उसका प्रेमी भी जो कि एक डाक्टर था उसके साथ ही था। जब उस स्त्रीने कहा कि मेरी तबीयत बहुत घबराती है और मैं बेहोश हुई जाती हूँ, तब उस डाक्टरने चट अपने जेबमेंसे एक चीज निकालकर उसके मुँहमें डाल दी और कहा कि यह गोली अपने मुँहमें रखकर इसका रस चूसो। इससे पाँच मिनटके अन्दर ही तुम्हारी बेहोशी दूर हो जायगी, लेकिन यह गोली निगल मत जाना। वह स्त्री उसे मुँहमें रखकर बेहोशीकी हालतमें ही उसका रस चूसने लगी और थोड़ी ही देरमें उसे मालूम होने लगा कि मैं अच्छी हो रही हूँ। इसके कुछ ही देर बाद वह बिलकुल होशमें आ गई। इसके उपरान्त उसे यह जाननेका कुतूहल हुआ कि आखिर यह गोली कैसी है, जिससे इतनी जल्दी इतना लाभ हुआ और जिसे निगलनेके लिए मनाही की गई थी। जब उसने मुँहमेंसे वह चीज निकालकर देखी तो उसके आश्चर्यका ठिकाना न रह गया। वह एक मामूली बटन था और उसी बटनका रस चूसकर वह होशमें आई थी।

इसी प्रकारके और भी अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनसे यह बात भली भाँति सिद्ध हो सकती है कि मनका विश्वास ही अनेक प्रकारके रोग आदिमें सबसे बढ़कर फायदा करता है। शरीरमें जो रोग होता है वह तो होता ही है, पर उससे कहीं अधिक वह रोग हमारे

मस्तिष्कमें—हमारे विचारमें—होता है। हमारे देशमें बहुतसे लोग फलित और सामुद्रिक आदिपर विश्वास करते हैं और ज्योतिषियों आदिके कहनेपर पूरा विश्वास रखकर उनके बतलाए हुए समयपर आपसे आप बीमार पड़ जाते हैं और तब कहते हैं कि ज्योतिषीजीने बहुत ठीक फल बतलाया था। हम यह नहीं कहते कि ज्योतिषियोंका कहना ठीक हुआ करता है या ग़लत; हम तो केवल यही बतलाना चाहते हैं कि हमारा विश्वास ही हमारे लिए सबसे अधिक फलदायक होता है और विशेषतः जिन लोगोंका हृदय दुर्बल होता है उनपर इस प्रकारके विश्वासका और भी अधिक परिणाम होता है।

कुछ जादूगर जादूका एक प्रकारका खेल करते हैं। वे कुछ लड़-कोंको अपने पास बुला लेते हैं और उन्हें अनेक प्रकारकी बातें सुनाकर धीर धीरे उनके मनको यहाँ तक अपने वशमें कर लेते हैं कि जो कुछ कहते हैं उसे वे लड़के बिलकुल सच समझ लेते हैं और उसीके अनु-सार काम करने लगते हैं। यदि वह जादूगर कहता है कि तुम्हारे कपड़ोंमें आग लगी है तो वे यही समझ लेते हैं कि सचमुच हमारे कप-ड़ोंमें आग लगी है और वे उसे बुझानेका सा नाट्य करने लगते हैं। यदि उनसे कहा जाता है कि पानी बरस रहा है तो वे छायामें होते हुए भी छाया ढूँढ़ते फिरते हैं। इन सबका कारण यही है कि जादूगर उनके मनमें जिस बातके प्रति पूरा पूरा विश्वास उत्पन्न कर देता है उसीको वे बिलकुल ठीक समझने लगते हैं। वास्तवमें स्वयं उनका विश्वास ही काम करता है।

हमारी कल्पना शक्तिका हमारे शरीरपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। परन्तु हममेंसे बहुत कम लोग ऐसे हैं जो उस शक्तिका ठीक ठीक अनुमान कर सकते हों। यदि दस बीस आदमी मिलकर किसी एक आदमीके

पीछे पड़ जायँ और उसे पागल सिद्ध करना चाहें तो वे बहुत सहजमें उसे पागल बना सकते हैं। इसका कारण यही है कि वे सब लोग मिलकर अपने आचरण और व्यवहार आदिके कारण उसके मस्तिष्कमें यह बात भर देते हैं कि वह पागल है और तब वह सहजमें ही पागल हो जाता है। यहीं भारतवर्षमें एक अँगरेज नवयुवक अफसर था जो दिन भर बहुत अधिक काम करनेके कारण और यहाँकी भीषण गरमी न सह सकनेके कारण बहुत दुखी और चिन्तित हो गया था और इसी कारण उसकी तबीयत कुछ खराब हो गई थी। वह एक डाक्टरके पास गया। डाक्टरने बहुत अच्छी तरह उसकी जाँच की और कहा कि तुम्हारे स्वास्थ्य आदिके सम्बन्धमें सब बातें कल मैं एक पत्रमें लिखकर तुम्हारे पास भेजूँगा। दूसरे दिन उसे उस डाक्टरका एक पत्र मिला जिसमें लिखा हुआ था कि तुम्हारा बायाँ फेफड़ा बिलकुल खराब और बेकाम हो गया है और तुम्हारा जिगर भी बिलकुल खराब हो गया है। इसलिए उचित है कि तुम अपने सब कामोंकी बहुत जल्दी पूरी व्यवस्था कर लो। यद्यपि अभी कई हफ्तों तक तुम जीते रहोगे, तो भी तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम अपना कोई महत्त्वपूर्ण कार्य अनिश्चित दशामें मत छोड़ो और उसकी ठीक ठीक व्यवस्था कर लो। इस पत्रका उस नवयुवक अफसरपर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा और उसकी दशा खराब होने लगी। पहले चौबीस घंटोंके अन्दर ही उसे कलेजेमें बहुत ज्यादा दरद होने लगा और साँस लेनेमें बहुत कठिनता प्रतीत होने लगी। वह अपने मनमें यही धारणा करके बिस्तरपर पड़ गया कि अब मेरी मृत्यु बहुत समीप आ गई है और मैं उठ न सकूँगा। रातके समय उसकी दशा और भी जल्दी जल्दी खराब होने लगी। उसने अपने नौकरको भेजकर डाक्टरको फिर बुलवाया। डाक्टरने आते ही देखा कि

उसकी दशा बहुत खराब हो गई है। उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसने कहा कि कल तो जब मैंने तुम्हें देखा था तब तुम्हारी यह दशा नहीं थी। एक ही दिनमें तुम्हें यह क्या हो गया?

वह नवयुवक बहुत ही कमजोर हो गया था। उसने बहुत ही धीमे स्वरमें कहा कि मेरे जिगरमें कोई भारी रोग हो गया है।

डाक्टरने कहा—जिगरमें? कल तो तुम्हारा जिगर बिलकुल ठीक था।

नवयुवकने पूछा—और मेरे फेफड़ोंका क्या हाल है?

डाक्टरने उत्तर दिया—आखिर तुम्हें हो क्या गया है? जान पड़ता है कि तुम शराब तो कभी नहीं पीते। तुम्हारे फेफड़े भी ठीक ही हैं।

रोगीने बहुत ही धीरेसे कहा—यह सब तुम्हारे पत्रकी कृपा है। तुम्हीने न कल लिखा था कि अब तुम कुछ ही हफ्तों तक जीओगे।

डाक्टरने कहा—मेरे लिखनेका मतलब तो सिर्फ यह था कि तुम कुछ हफ्तोंके लिए पहाड़पर चले जाओ तो तुम्हारी तबीयत बिलकुल ठीक हो जायगी।

रोगीके मुँहपर मुरदनी छाई हुई थी और उसके शरीरमें कुछ भी दम न था। उसने बड़ी कठिनतासे अपने सिरहानेसे डाक्टरका वह पत्र निकालकर उसे दिखलाया। उसे देखते ही डाक्टर चिल्ला उठा—अरे यह तो दूसरे मरीजके नामका पत्र था। जान पड़ता है कि मेरे सहकारीने भूलसे तुम्हारे लिफाफेमें दूसरे रोगीका पत्र रख दिया।

इतना सुनते ही वह रोगी उठकर बैठ गया और कुछ ही घंटोंमें बिलकुल भला चंगा हो गया।

एक डाक्टरी स्कूलमें एक बहुत बड़ा और प्रसिद्ध डाक्टर विद्यार्थियोंको चिकित्साशास्त्रकी शिक्षा दिया करता था। वह अपने विद्यार्थि-

योंको प्रायः यही उपदेश दिया करता था कि अपनी कल्पना शक्तिसे सदा होशियार रहना चाहिए और कभी यह न सोचना चाहिए कि हम बीमार हैं। वह कहता था कि विद्यार्थियोंको अनेक प्रकारके रोगोंके लक्षण और निदान आदि बतलाए जाते हैं। परन्तु किसी विद्यार्थीको उन लक्षणोंको स्वयं अपने आपपर कभी न घटाना चाहिए और यह न समझ लेना चाहिए कि इस रोगसे तो हम भी पीड़ित हैं। उसने मूल पुस्तकके लेखकसे स्वयं अपना एक अनुभव कहा था। उसने बतलाया था कि एक बार मेरी यह धारणा हो गई कि मुझे एक बिकट रोग हो गया है। मेरी यह धारणा इतनी दृढ़ हो गई कि किसी दूसरे डाक्टरसे अपना हाल कहने तकका मुझे साहस न हुआ। मैं सोचता था कि मर जाना अच्छा है, पर किसी दूसरे डाक्टरसे अपना हाल कहना अच्छा नहीं है। मेरी भूख बिलकुल जाती रही, दिनपर दिन शरीर दुर्बल होने लगा और मैं अपना अध्यापनका कार्य करनेमें बिलकुल असमर्थ हो गया। एक दिन मेरा एक डाक्टर दोस्त मुझसे मिलनेके लिए आया। मेरी दशा देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। वह मुझसे पूछने लगा कि तुम्हें क्या हुआ है। मैंने उसे सब हाल बतलाया और कहा कि मैं समझता हूँ कि मुझे अमुक रोग हो गया है; परन्तु बहुत कुछ वादविवाद करके उसने अच्छी तरह मुझे विश्वास दिला दिया कि मुझे किसी प्रकारका कोई रोग नहीं है। जब मुझे अच्छी तरह विश्वास हो गया तब मेरी दशा सुधरनेमें कुछ भी देर न लगी। दो ही चार दिनोंमें मैं बिलकुल ठीक और पहलेकी ही तरह हो गया। मुझे भूख भी लगने लगी और मैं पहलेकी तरह हृष्टपुष्ट भी हो गया।

चिकित्साशास्त्रके इतिहासमें इस प्रकारके अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि बहुतसे लोग केवल किसी रोगकी कल्पना

करके ही उस रोगसे पीड़ित हो जाते हैं। एक बार विलायतके चिकित्सा-शास्त्रसम्बन्धी एक सामयिक पत्रमें नीचे लिखी दो घटनाएँ प्रकाशित हुई थीं।

एक बार लन्दनके रहनेवाले दो आदमी एक ऐसे देहातमें गए जहाँ एक विशेष प्रकारका भीषण ज्वर बहुत जोरोंसे फैला हुआ था। दोनों आदमी रातको एक ही स्थानपर सोए। उनमेंसे एक आदमी तो बहुत मजबूत दिलका था और अपने सम्बन्धमें व्यर्थकी और झूठी कल्पनाएँ नहीं करता था। वह जब प्रातःकाल सोकर उठा, तब नित्यकी भाँति बिलकुल भला चंगा था। परन्तु दूसरा आदमी कमजोर दिलका था और बहुत जल्दी अपने आपको रोगी समझ लिया करता था। उसे मारे चिन्ताके रातभर नींद नहीं आई थी और उसकी हालत खराब हो रही थी। लोगोंने यही समझा कि इस समय यहाँ जो ज्वर फैला हुआ है, वही इसे भी हो गया है। तुरन्त तार देकर लन्दनसे एक अच्छा डाक्टर बुलवाया गया। डाक्टर भी बहुत जल्दी ही आ पहुँचा। उसने आते ही उस आदमीके शरीरकी परीक्षा की और कहा कि इसे ज्वर बिलकुल नहीं हुआ है। इसने केवल अपने आपको रोगकी कल्पना करके ही रोगी बना लिया है। इस प्रकार कोई रोग न होते हुए भी उस व्यक्तिने अपने आपको स्वयं ही रोगी मान और बना लिया था।

इसी प्रकार एक बार और दो आदमी एक मकानमें जाकर ठहरे थे। उस मकानमें कुछ ही दिनों पहले एक आदमी हैजेसे मर चुका था। उन दोनोंमेंसे एक आदमी तो उसी कमरेमें सोया जिसमें पहले हैजेका रोगी मरा था। परन्तु, उसे यह बात मालूम नहीं थी कि इसमें हैजेका कोई रोगी मरा है। वह रातभर बड़े आनन्दसे सोया रहा और सबेरे उसे किसी प्रकारकी शिकायत नहीं हुई। दूसरा आदमी एक दूसरे कम-

रेमें सोया था। पर रातके समय किसी अनजानने उससे कह दिया था कि इसीमें कुछ दिनों पहले एक आदमी हैजेसे मर चुका है। रातभर मारे चिन्ताके उसे नींद न आई और सबेरे उठते ही उसे सचमुच हैजा हो गया और अन्तमें वह उसी रोगसे मर भी गया।

लोग इस प्रकारकी बातें प्रायः पढ़ा और सुना करते हैं और उनपर पूरा पूरा विश्वास भी रखते हैं। परन्तु फिर भी न जाने क्यों उनसे पूरी पूरी शिक्षा नहीं ग्रहण करते और समय आनेपर जबरदस्ती ही अपने आपमें किसी न किसी प्रकारके रोगकी कल्पना कर लेते हैं और अन्तमें उसी रोगसे पीड़ित भी हो जाते हैं। ज्यों ही हमारे मनमें इस बातका पूरा पूरा विश्वास हो जाता है कि हम अमुक रोगसे पीड़ित हो रहे हैं त्यों ही मानों हम उस रोगको अपने ऊपर आक्रमण करनेके लिए निमन्त्रित कर बैठते हैं। परिणाम यह होता है कि धीरे धीरे उस रोगके सब लक्षण हममें उत्पन्न होने लगते हैं और हम सचमुच उस रोगसे पीड़ित हो जाते हैं। उस समय हमारे मन और शरीरकी जीवनी शक्ति नष्ट होने और विपरीत दशामें कार्य करने लगती है। रोगोंसे बचनेकी हममें जो शक्ति होती है वह आपसे आप नष्ट होने लगती है और हम बराबर रोगी होते जाते हैं। अतः प्रत्येक समझदार मनुष्यका यह परम कर्तव्य है कि वह कभी इस प्रकार व्यर्थ अपने रोगी होनेकी कल्पना न किया करे, क्यों कि रोगकी कल्पना मनुष्यको कभी रोगी बनाए बिना नहीं छोड़ती।

१–आरोग्यपर विचारोंका प्रभाव ।

किसीने कहा है कि तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु, तुम्हारा वही मित्र है जो तुमसे भेंट होनेपर कहता है कि क्या हाल है, आज तो तुम्हारी तबीयत कुछ ठीक नहीं मालूम होती । बस ज्यों ही तुम अपने मित्रके मुँहसे यह बात सुनते हो, त्यों ही तुम्हारी तबीयत खराब होने लगती है । मानो वह मित्र यह एक बात कहकर ही तुम्हारे मस्तिष्कमें रोगी होनेकी कल्पना उत्पन्न करके किसी न किसी रोगका बीज बो देता है ।

मानसिक शक्ति कितनी प्रबल होती है और उसका शरीरपर कितना अधिक प्रभाव पड़ता है, इसका एक सबसे बड़ा प्रमाण यह है । जिन लोगोंकी कल्पनाशक्ति बहुत प्रबल होती है वे एक प्रकारका हिप्नाटिज्मका खेल किया करते हैं । वे किसी दुर्बलहृदय मनुष्यको चुन लेते हैं और उस-पर अपनी कल्पना शक्तिका इतना अधिक प्रभाव डालते हैं कि वे जो कुछ उससे कहते अथवा उसके मनमें जो विचार उत्पन्न करना चाहते हैं ठीक वही विचार उत्पन्न कर देते हैं । केवल मनमें वह विचार ही उत्पन्न नहीं करते, बल्कि उसके शरीरपर उसका परिणाम भी उत्पन्न करके दिखला देते हैं । वे उससे कहते हैं कि देखो हम तुम्हें गरम लोहेसे दागते हैं और इतना कह कर वे उसके किसी अंगपर बिलकुल ठंडा कोई सिक्का रख देते हैं । परन्तु उस आदमीके मनमें तो यही भाव रहता है कि मैं गरम लोहेसे दागा जा रहा हूँ । इसलिए फल यह होता है कि उसके जिस अंगपर ठंडा सिक्का रक्खा जाता है, उस अंगपर वैसा ही छाला हो आता है जैसा गरम लोहेसे दागनेसे हुआ करता है ।

जब कि एक आदमी अपने मनोबलसे दूसरे आदमीके शरीरपर छाले तक उत्पन्न कर सकता है, तब यदि वह अपने विचार या मनोबलसे अपने शरीरका कोई रोग दूर कर ले तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। जब कि एक आदमी किसीको ठंडे जलसे भरा हुआ गिलास पिलाकर और उसके मनमें यह भावना उत्पन्न करके कि इसमें शराब है, उसे वैसे ही नचा सकता है जैसे शराब पीकर कोई नाचता है, तब यदि आदमी अपने आपको रोगसे मुक्त करनेकी भावना करके नीरोग हो जाय, तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।

मनुष्योंपर तो इस प्रकारकी मानसिक क्रियाओंका जो कुछ प्रभाव होता है वह तो होता ही है, पर पशुओंतकपर इसका प्रभाव होता हुआ देखा गया है। एक बार एक घोड़ेके मनमें यह विचार उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया गया कि वह बीमार है। उसे चारों ओरसे कम्बल ओढ़ा दिए गए और उसके शरीरपर कई तरहकी दवाओंकी मालिश होने लगी। उसकी उसी प्रकार सेवा-शुश्रूषा होने लगी, जिस प्रकार उसकी बीमारीकी हालतमें हुआ करती थी। इन सब उपचारोंका फल यह हुआ कि उस घोड़ेकी भूख बिलकुल बन्द हो गई और उसने खाना पीना बिलकुल छोड़ दिया। यदि उसे जबरदस्ती कुछ खिलाने पिलानेका उद्योग किया जाता, तो उसमें सफलता नहीं होती थी। इसी प्रकारका एक और प्रयोग एक दूसरे घोड़ेके साथ किया गया। उसके पैरपर इस प्रकार मरहम पट्टी की गई जिस प्रकार किसी घोड़ेके पैरमें चोट लग जाने और उसके लँगड़े हो जानेपर की जाती है। इन सब बातोंका परिणाम यह हुआ कि दो एक दिन बाद, जब वह चलाया गया, तब वह लँगड़ाकर चलने लगा।

स्वयं माता पिताकी आशंकाओं आदिका उनके छोटे छोटे बालकों आदिपर भी प्रभाव होता हुआ देखा गया है। जिन दुर्बलहृदय माताओंको सदा इस बातकी चिन्ता लगी रहती है कि कहीं हमारा लड़का बीमार न हो जाय, कहीं उसे नजर न लग जाय, कहीं वह डर न जाय, कहीं उसे भूत प्रेतकी बाधा न हो जाय, उन माताओंके बच्चे स्वयं उन्हींकी आशंकाओंके कारण अनेक प्रकारके रोगोंसे पीड़ित हो जाते हैं; बल्कि यों कहना चाहिए कि वे अनेक प्रकारकी विपत्तियोंके आपसे आप शिकार हो जाते हैं। जब कभी पास पड़ोसमें किसी लड़केको कोई बीमारी होती है तब माताएँ प्रायः यह चिन्ता करने लगती हैं कि कहीं वही बीमारी हमारे लड़केको भी न हो जाय। वे दिन रात उस बीमारीके लक्षण अपने लड़केमें ढूँढ़ा करती हैं, और उसीके सामने प्रायः ऐसी बातें किया करती हैं, जिनसे उस बालकके हृदयमें उस रोगका भीषण चित्र खिंच जाता है। बस, वही चित्र कुछ समयमें अपना काम कर जाता है और बालक अकारण ही उस रोगसे पीड़ित हो जाता है।

मूल पुस्तकके लेखकने एक बार एक ऐसी स्त्रीको देखा था, जो दिनरात अपने लड़केके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें चिन्तित रहा करती थी। वह दिन भरमें दस पाँच बार उस छोटे बालकसे कहा करती थी कि बेटा, आज तो तुम्हारा चेहरा बहुत उदास दिखाई देता है। आज तो तुम बीमारसे जान पड़ते हो। आज तुम्हारा जी कैसा है। आज तुम्हें तबीयत खराब तो नहीं माळूम होती। साथ ही वह उसे तरह तरहकी दवाएँ भी दिया करती थी। सिर्फ अपने लड़केके साथ ही उसका यह व्यवहार नहीं था। घरमें और जितने लड़के बच्चे थे, उन सबके साथ भी वह इसी प्रकारकी बातें किया करती थी। उसे सदा इस बातकी चिन्ता लगी रहती थी कि कहीं कोई लड़का नंगे सिर बाहर न निकल जाय,

और उसे सरदी न हो जाय। कहीं उसके पैर पानीमें न भींग जायँ और कहीं उसे बुखार न आ जाय। इस प्रकारकी बातोंसे बचाए रखनेके लिए वह उन्हें दिन रात सचेत किया करती थी और कहा करती कि अगर तुम लोग मेरी बात न मानोगे तो तुम्हें अमुक रोग हो जायगा, अमुक व्याधि आ घेरेगी, आदि आदि। मतलब यह कि वह दिन रात अनेक प्रकारके बिकट रोगोंके चित्र उनके हृदय-पटलपर खींचा करती थी। इस प्रकारकी दिन रातकी बातोंका परिणाम भी वही होता था, जो होना चाहिए। अर्थात् घरके अधिकांश बालक सदा किसी न किसी रोगसे पीड़ित रहा करते थे और वह कहा करती थी कि मैं क्या करूँ, घरके बीमार लड़कोंकी सेवाशुश्रूषा करनेसे ही मुझे छुट्टी नहीं मिलती और इसी लिए मैं कहीं बाहर घूमने फिरने नहीं जा सकती।

बालकोंके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें जो दशा उस स्त्रीकी थी, ठीक वही उसके पतिकी भी थी। वह अपने छोटे छोटे बच्चोंको अपने पास बुलाकर प्रायः उसकी नाड़ी देखा करता था और कहा करता था कि आज तो तुम्हारा बदन गरम माळूम होता है, आज तो तुम्हें बुखार आना चाहता है, आज तुम्हारे सिरमें दर्द तो नहीं हो रहा है, आज तुम्हें कितने दस्त हुए थे, आज तुमने क्या खाया था, जरा अपनी जबान तो दिखलाओ। इन सब बातोंका उस छोटे बालकपर यही प्रभाव होता था कि पिताके कहनेके अनुसार वह अपने आपको बीमार समझने लग जाता था और जाकर बिस्तरपर पड़ रहा करता था।

प्रत्येक माता पिताको इस प्रकारकी दुष्ट भावनाओं और कल्पनाओंसे सदा बचते रहना चाहिए और अपनी मूर्खताके कारण बच्चोंमें कभी किसी प्रकार रोग या पीड़ा आदिका भाव न भरना चाहिए। ऐसी बातोंका फल केवल यही होता है कि जिन रोगों आदिसे वे अपने

बच्चोंको बचाना चाहते हैं, वे रोग अनायास ही उन्हें आ घेरते हैं। जरा उस बालककी दशाकी कल्पना तो कीजिए जिसे दिन रात तरह तरहके रोगोंकी आशंकाओंसे भयभीत रक्खा जाता है, जिनके सामने दिन रात रोगोंकी ही बातें की जाती हैं, जिन्हें सदा यही कहा जाता है कि अमुक काम न करो, अमुक तरहसे मत रहो, आदि। इस प्रकारकी बातें सुनते सुनते बच्चा यही समझने लगता है कि मैं या तो रोगी हूँ और या बहुत जल्दी रोगी हो जाऊँगा। वह यह भी समझने लगता है कि संसारमें अधिकांश काम ऐसे ही हैं जिन्हें करनेपर मनुष्य रोगी हो जाता है और बहुत थोड़े काम ऐसे हैं जिनके करनेसे वह रोगोंसे रक्षित रह सकता है। बस, उनके हृदयमें रोगों और उन्हें उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियोंकी भीषण कल्पना स्थान कर लेती है और उन्हें कभी नीरोग और सुखी नहीं रहने देती। अतः प्रत्येक माता पिताको यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि इस प्रकारकी बातोंसे बच्चोंका स्वास्थ्य बुरी तरहसे नष्ट हो जाता है और उन्हें बच्चोंके सामने इस प्रकारकी बातें करने अथवा स्वयं अपने मनमें इस प्रकारकी भावना करनेसे सदा बचना चाहिए।

एक बार एक स्त्रीने मूल पुस्तकके लेखकसे कहा था कि मैंने एक दिन एक सामयिक पत्रमें एक ऐसी कहानी पढ़ी थी जिसमें कई दुःखपूर्ण घटनाओंका वर्णन था। उस कहानीका मुझपर यह प्रभाव हुआ कि मैं दिन भर बीमारोंकी तरह बिस्तर पर पड़ी रही और मुझे तबीयत बहुत खराब मालूम हुई। वह कहानी एक प्रसिद्ध लेखककी लिखी हुई थी। उसकी शैली बहुत ही ओजपूर्ण और प्रभावशालिनी थी। परन्तु, उसकी कथावस्तु बहुत ही भीषण और दुष्ट प्रभाव उत्पन्न करनेवाली थी। उसी प्रभावके कारण उस स्त्रीके हृदयका दूषित अंश जाग्रत हो

उठा था, जिसने उसे दिन भर रोगियोंकी सी दशामें रक्खा था। प्रायः डाक्टरी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंकी भी यही दशा होती है। उन्हें शरीर शास्त्रकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए मुरदोंके अंगोंकी चीर-फाड़ करनी पड़ती है, सदा रोगियोंमें रहना पड़ता है और अनेक प्रकारके बिकट रोग देखने पड़ते हैं। दिन रात इस प्रकारके वातावरणमें रहनेके कारण वे यदि प्रायः रोगी नहीं तो कमसे कम खिन्नचित्त अवश्य रहते हैं और अक्सर उनकी तबीयत खराब और बिगड़ी हुई सी रहती है।

परन्तु जो लोग सदा प्रसन्न रहते हैं, सदा अपने स्वस्थ होनेकी ही भावना किया करते हैं, वे सदा नीरोग रहते हैं और उनकी तबीयत कभी खराब या भारी नहीं होती। रोगकी अवस्थामें हृदय प्रायः दुर्बल हो जाता है और वह सहजमें अच्छे और बुरे, दोनों प्रकारके प्रभाव ग्रहण कर लेता है। परन्तु, स्वस्थ होनेकी दशामें उसमें एक विशेष प्रकारका बल हुआ करता है, जिसके करण वह सब प्रकारके रोगों आदिसे रक्षित रहता है।

जब हम कभी बीमार पड़ते हैं और कोई बहुत ही प्रसन्नचित्त आदमी हमें देखनेके लिए आता है, तो उसकी बातोंसे ही हमें एक विशेष प्रकारका बल प्राप्त होता है और हममें आशा तथा उत्साहका संचार होता है। पर, जो लोग मनहूस होते हैं, उन्हें देखते ही हमें बहुत अधिक दुःख होता है। बात यह होती है कि वे आकर हमारी सारी आशाओंका नाश कर देते हैं और अपनी बातों और हाव भावसे ही हमें परम खिन्न और निरुत्साह कर देते हैं। वे जब चले जाते हैं, तब अपने पीछे एक प्रकारकी मुरदनी सी छोड़ जाते हैं। एक बार हमारे एक मित्र किसी हृदयसम्बन्धी रोगसे पीड़ित हुए थे और एक दैवी आघातके कारण बहुत दुर्बल हो गए थे। उन्हें देखनेके लिए एक ऐसे सज्जन गए,

जो कुछ मनहूस भी थे और जो दुनियादारी बिलकुल नहीं जानते थे। उन्होंने रोगीके पास जाकर उन्हें देखा और उनसे बहुत ही निराशापूर्ण शब्दोंमें बातें कीं। उन्होंने कहा कि हमारे गाँवमें भी एक आदमीको यही रोग हुआ था। परन्तु, क्या कहें यह रोग ही इतना भीषण और दुष्ट है कि इससे जल्दी आदमी बचता ही नहीं, आदि आदि। इस प्रकारकी बातोंका उस रोगीके हृदयपर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा और वास्तवमें बुरा प्रभाव पड़नेकी बात ही थी। यद्यपि अन्तमें इस प्रकारकी बातोंका कोई अनिष्ट प्रभाव नहीं पड़ा तथापि ऐसी बातें कभी वांछनीय नहीं होतीं और उनका फल भी अच्छा नहीं होता। पर यदि मरते हुए रोगीको भी ढारस दिलाया जाय और कहा जाय कि इसमें तो कुछ हुआ ही नहीं और तुम बहुत शीघ्र बिलकुल नीरोग हो जाओगे, तो उससे उसके हृदयमें एक नवीन बलका संचार होगा और बहुत सम्भव है कि वह अच्छा हो जाय अथवा कमसे कम कुछ समयके लिए उसकी मृत्यु टल जाय।

रोगियोंको उत्साहित करने और प्रसन्न रखनेकी बहुत अधिक आवश्यकता होती है। यदि किसी रोगीके चिकित्सक सम्बन्धी और मित्र आदि उसे सदा प्रसन्न रखनेका प्रयत्न किया करें और उसे इस बातकी आशा दिलाते रहें कि तुम बहुत ही शीघ्र पूर्ण नीरोग हो जाओगे तो प्रायः वह रोगी बहुत शीघ्र आरोग्य हो भी जायगा। जो चिकित्सक स्वयं सदा प्रसन्न रहते हैं और अपने रोगियोंको भी सदा प्रसन्न रखनेका प्रयत्न करते हैं, उन्हींको चिकित्सामें सबसे अधिक सफलता होती है। पर जो चिकित्सक मनहूस और रोनी सूरतके होते हैं, वे अधिक योग्य होने पर भी, विशेष सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। चिकित्सककी बातोंका दुर्बलहृदय रोगीपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। अतः चि-

कित्सकको सदा यही उचित है कि वह रोगीको सदा प्रसन्न रखने और उसे ढारस बँधानेका प्रयत्न किया करे। हमारे यहाँ भी लोलिम्बराजने अच्छे वैद्योंके लक्षण इस प्रकार दिए हैं—

गुरोरधीताखिलवैद्यविद्यः पीयूषपाणिः कुशलः क्रियासु।
गतस्पृहो धैर्यधरः कृपालुः शुद्धोऽधिकारी भिषगीदृशः स्यात्॥

इस श्लोकमें 'पीयूषपाणिः' पद बहुत ही अर्थपूर्ण और मार्मिक है। इसका साधारण अर्थ वह है कि वैद्यका हाथ अमृतके समान होना चाहिए। मतलब यह है कि उसके हाथका स्पर्श होते ही रोगीको यह जान पड़ना चाहिए कि मुझे अमृतकी प्राप्ति हुई है। उसका हाथ लगते ही उसे आनन्द और विश्वास होना चाहिए और यह बात तभी हो सकती है जब कि वह प्रसन्नचित्त हो और रोगीको भी देखते ही प्रसन्न कर सकता हो।

बहुत से वैद्योंका यह सिद्धान्त हुआ करता है कि यदि रोगीका रोग असाध्य जान पड़े, तो उसे स्पष्ट बतला देना चाहिए कि इस रोगसे तुम अच्छे नहीं हो सकते। इस तरहके कुछ पाश्चात्य चिकित्सक अपने मतके समर्थनमें यह तर्क उपस्थित करते हैं कि रोगीको चिकित्सकसे अपनी ठीक ठीक अवस्था जाननेका अधिकार होता है और उस अधिकारसे उसे वंचित नहीं करना चाहिए। परन्तु यह सिद्धान्त बहुत ही हानिकारक और भ्रमपूर्ण है। कोई चिकित्सक कभी दृढ़तापूर्वक यह तो कह ही नहीं सकता कि मेरा निदान बिलकुल ठीक है और उसमें कभी गलती हो ही नहीं सकती। प्रायः देखा गया है कि जिन रोगियोंके बारेमें बड़े बड़े वैद्य और डाक्टर आदि जवाब दे देते हैं वे रोगी भी कभी कभी आराम हो जाते हैं। इसलिए, यदि किसी रोगीका रोग सचमुच असाध्य ही जान पड़े तो भी उससे कभी यह नहीं कहना चाहिए कि

तुम नहीं बचोगे। निराशापूर्ण बातोंका रोगीपर बहुत ही घातक परिणाम होता है और आशापूर्ण बातें उसके स्वास्थ्यके लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध होती हैं।

प्रायः ऐसे रोगी देखनेमें आते हैं, जो अपने रोगसे मुक्त होनेके लिए सब प्रकारके कष्ट सहनेके लिए तैयार होते हैं। वे चाहते हैं कि चाहे जैसे हो, हम बहुत जल्दी अच्छे हो जायँ। उन्हें कोई योग्य चिकित्सक मिल जाता है, अथवा कोई पेटेण्ट दवा मिल जाती है और वे शीघ्र आरोग्य हो जाते हैं। बहुतसे लोग आब-हवा बदलकर या किसी झरने, कुंड, तीर्थ आदिमें स्नान करके अच्छे हो जाते हैं। अपने अच्छे होनेका कारण वे चाहे जो कुछ समझा करें, पर वास्तवमें वे इसी लिए अच्छे होते हैं कि अच्छे होनेसे पहले ही वे अपनी प्रवृत्ति आरोग्यकी ओर कर लेते हैं। वे स्वयं ही और अनजानमें अपनी मानसिक स्थिति ऐसी बना लेते हैं कि साधारण साधनोंसे भी सहजमें नीरोग हो जाते हैं।

यदि हम लोगोंमें कोई सबसे बड़ा दोष है, तो वह यही कि हम अपने अन्तस्थ बलपर निर्भर नहीं रहते; यहाँ तक कि हम उस बलसे परिचित ही नहीं होते। इसी लिए हम लोगोंको लाचार होकर बाह्य उपचारों आदिपर ही निर्भर रहना पड़ता है और हम स्वावलम्बी न रहकर परावलम्बी हो जाते हैं। प्रत्येक समझदार मनुष्यका यह परम कर्तव्य है कि वह इस प्रकारकी शोचनीय मनोवृत्तिका सदाके लिए अन्त कर दे, और इस बातका भली भाँति ज्ञान प्राप्त करे कि हमारे मनमें ही हमें नीरोग करनेकी कितनी अधिक शक्ति है। जब हम यह बात जान लेंगे, तब बहुत सहजमें पूर्ण और स्थायी शारीरिक सुख तथा मानसिक शान्ति प्राप्त कर लेंगे और यही हमारा परमपुरुषार्थ तथा यही परम सफलता है।

१०—वृद्धावस्थाका निवारण।

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलिः।
दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते॥
अर्थप्राशनशंकया न कुरुतेऽप्यालापमात्रं सुहृत्।
हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते॥

—भर्तृहरि।

जापानवालोंका यह विश्वास है कि यदि राजा मर जाय, तो उसके साथ स्वयं भी आत्महत्या करके, अपने प्राण दे देना महत्ताका लक्षण है। इस विश्वासके अनुसार जापानके राजाके मरनेपर, प्रायः वहाँके एक दो बड़े सरदार आत्महत्या कर लेते हैं। अभी बहुत हालमें कदाचित् इसी वर्षके आरम्भमें, जापानके सम्राट्के मरने पर भी ऐसा ही हुआ था।

अभी कुछ दिन हुए न्यूयार्कके सर्वप्रधान न्यायालय या सुप्रीम कोर्टके एक जजके मन्त्रीने अपनी सत्तरवीं वर्षगाँठके दिन आत्महत्या कर ली थी। उसके शवके पास एक पुस्तक पाई गई थी, जिसमें एक स्थानपर लिखा हुआ था कि बाईबिलमें सत्तर वर्षकी आयु निश्चित की गई है। जब मनुष्यकी अवस्था सत्तर वर्षकी हो जाती है, तब उसका प्रत्यक्ष कार्य समाप्त हो जाता है और इस संसारमें उसके जीवनकी मर्यादाका अन्त हो जाता है।

उक्त कथनका उस व्यक्तिपर इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि उसने निश्चय कर लिया था कि जब मेरी अवस्था सत्तर वर्षकी होगी, तब मैं आत्महत्या कर लूँगा और अन्तमें अपनी सत्तरवीं वर्षगाँठके दिन उसने अपने उस निश्चयका पालन भी कर डाला।

प्रायः सभी देशोंमें धार्मिक दृष्टिसे कुछ न कुछ आयु निश्चित की हुई होती है; और बहुतसे लोग उसीके अनुसार वह मर्यादा समाप्त होने पर जान बूझकर अपने प्राण त्याग देते हैं। हमारे यहाँके शास्त्रोंमें यह मर्यादा सौ वर्षकी निश्चित है। इसी लिए प्राचीन महाभारत कालमें, जब लोग सौ वर्षके लगभग पहुँचते थे अथवा उससे कुछ पहले ही, जब वे अपने शरीरमें किसी साधारणसे भी साधारण रोगके लक्षण देखते थे, तब प्रायः किसी ऊँचे पर्वत या टेकरी परसे कूदकर अथवा और किसी प्रकार आत्महत्या कर लिया करते थे।

जब कभी कोई आदमी मूर्खताका कोई काम कर बैठता है, तब प्रायः लोग कहा करते हैं कि इसकी अक्ल सठिया गई है। यह कहावत इस आधारपर चल पड़ी है कि जब आदमी साठ वर्षका हो जाता है, तब उसकी अक्ल मारी जाती है और वह कोई समझदारीका काम करनेके योग्य नहीं रह जाता। इसी प्रकारकी और भी कोई कहावतें और विश्वास लोगोंमें प्रचलित हैं। परन्तु, यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय, तो जान पड़ेगा कि इस प्रकारकी कहावतों और विश्वासों आदिसे मानव जातिका बहुत बड़ा अपकार होता है। इस प्रकारकी बातोंका प्रभाव यह होता है कि बहुतसे लोग स्वयं अपनी निश्चित की हुई आयु तक पहुँचनेसे कुछ पूर्व ही इस संसारसे चल बसते हैं। परन्तु, यह समझ लेना कि मनुष्यकी आयु इतनी ही है, और किसीको उससे आगे नहीं बढ़ना चाहिए, मानो उस परमेश्वरकी निष्पक्षतापर कलंक लगाना है। फल जब तक बहुत अच्छी तरह नहीं पक लेता, तब तक वह कभी डालसे नहीं गिरता। ऐसी दशामें यदि मनुष्य जान बूझकर, असमयमें ही अपने प्राण त्याग दे, तो क्या उसका वह काम समझदारीका समझा जायगा? कदापि नहीं।

अभी तक सब लोगोंकी समझमें अच्छी तरह यह बात नहीं आई है कि हम लोग अपनी मनोवृत्तियोंके कैसे और कहाँ तक गुलाम बने हुए हैं, और हमारे भावों तथा विचारोंका हमारे जीवनक्रमपर क्या प्रभाव पड़ता है। साधारणतः सब लोग यही समझते हैं कि हमारे बापदादाओंने जो आयु पाई थी, उससे अधिक आयु हम किसी प्रकार पा ही नहीं सकते। बल्कि हमारे देशमें तो बहुतसे लोग यही समझते हैं कि आयुकी मर्यादा दिनपर दिन कम होती जा रही है और अनेक कारणोंसे यहाँ ऐसा ही देखनेमें भी आता है। परन्तु, इस प्रकारकी कल्पनासे हमारी आयुके क्षीण होनेमें बहुत अधिक सहायता मिलती है। बहुतसे लोग बिना किसी विशेष कारण या व्याधिके, यों ही, केवल इसी कल्पनाके कारण, अकालमृत्युको प्राप्त होते हैं।

जो आदमी अपने मनमें अच्छी तरह यह समझता हो कि चालीस वर्ष तक पहुँचते पहुँचते मनुष्यके शरीरमें वृद्धावस्थाके लक्षण दिखलाई देने लगते हैं, पचास वर्षकी अवस्थामें पूर्ण रूपसे वृद्धावस्था आ जाती है और साठ वर्षकी अवस्था होनेपर तो मनुष्य सिवा मरनेके और किसी कामका रह ही नहीं जाता, वे मानो व्याधियों आदिसे बचनेकी अपनी शक्तिका आपसे आप नाश करने लगते हैं और स्वयं ही मृत्युकी ओर बढ़ने लगते हैं। ऐसे आदमियोंको मृत्युके मुखमें जानेसे संसारकी कोई शक्ति नहीं बचा सकती। कारण यह है कि विचार ही सबसे आगे चलनेवाला दूत है। यदि हमारा विचार वृद्धावस्थाके अनुकूल होगा, तो उसके साथ साथ वृद्धावस्था भी रक्खी ही हुई है। परन्तु, जिस आदमीके विचारोंमें कुछ जोर होगा और जो उपयुक्त तथा सात्विक रीतिसे जीवन निर्वाह करेगा, उसका शरीर भी बराबर तरुण ही बना रहेगा। किसीने बहुत ठीक कहा है कि जब तक मन स्वीकृति न दे, तब तक

शरीर कभी वृद्ध हो ही नहीं सकता; क्योंकि मन ही शरीरका निर्माता है। अर्थात् वृद्धावस्था सबसे पहले मनमें आती है और तब शरीरपर उसके लक्षण दिखलाई देने लगते हैं। जब हम देखते हैं कि हमारी ही अवस्थाके और संगी साथी वृद्ध हो चले हैं, उनके बाल पक गए हैं, उनके दाँत टूटने लगे हैं, उनके शरीरपर झुर्रियाँ पड़ने लगी हैं और उनकी कमर झुक चली है, तब अपने शरीरमें ये सब लक्षण न होने-पर भी हम अपने आपको केवल उनकी देखा देखी वृद्ध समझने लगते हैं। हम सोचने लगते हैं कि अब हमारे वृद्ध होनेमें भी अधिक विलंब नहीं है। परिणाम यह होता है कि कुछ ही समयमें हम सचमुच वृद्ध हो जाते हैं। जब हमारे मनमें यह बात अच्छी तरह बैठ जाती है कि हम वृद्ध होने लग गए हैं और शीघ्र ही पूर्ण रूपसे वृद्ध हो जायँगे, तब हमार वृद्ध होनेमें देर नहीं लगती और इस प्रकार हम केवल अपनी मनोवृत्ति और आनुवंशिक संस्कारोंके ही कारण समयसे बहुत पहले ही वृद्ध हो जाते हैं।

परन्तु यदि हम अपने मनमें यह बात अच्छी तरह समझ लें कि हम वृद्ध नहीं होंगे, यदि हम अपने विचारोंमें सदा युवावस्थाका सा बल रक्खें और यदि हमारे सामने केवल युवावस्थाका ही और आशापूर्ण आदर्श हो, तो फिर हम जल्दी वृद्ध न हो सकेंगे। यदि हमें कोई ऐसी संजीवनी शक्ति मिल सकती है जिसके कारण हम बराबर युवा बने रहें, तो वह स्वयं अपने मनमें ही मिल सकती है। हम खिजाब लगाकर या नकली दाँत लगाकर कभी जवान नहीं हो सकते। जवान होनेके लिए हमें सबसे पहले इस विचारसे पीछा छुड़ाना चाहिए कि हम वृद्ध हो रहे हैं। हमें अपने विचारोंमें, अपनी धारणामें, यौवन लाना चाहिए और नहीं तो फिर संसारका कोई उपाय हमें जवान नहीं बना सकेगा।

यदि हम अपने मनमें यह बात अच्छी तरह बैठा लें कि हम सदा जवान बने रहेंगे और कभी बुड्ढे न होंगे तो फिर हम शरीरसे भी सदा जवान ही बने रहेंगे। मनमें इस प्रकारकी दृढ़ धारणा होते ही मानो हम वृद्धावस्थापर आधी विजय प्राप्त कर लेंगे। सब लोगोंको यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि अपनी अवस्थाके सम्बन्धमें हमारे मनमें जो विचार होगा उसीके लक्षण हमारे शरीरपर दिखाई देंगे। हमारी अवस्था चाहे कितनी ही अधिक क्यों न हो जाय; परन्तु यदि चाहें तो उस समय भी हम जवान ही बने रहेंगे। क्योंकि हमारे मनमें सदा जो विचार चक्कर लगाया करते हैं वही हमारे शरीरसे व्यक्त होते हैं। सदा प्रसन्न रहने और अपने मनमें सदाशाएँ बनाए रखनेका फल यह होता है कि वृद्धावस्था हमारे पास नहीं आने पाती।

हम लोगोंमें सबसे बड़ा दोष यही है कि हम कोई बात होनेसे पहले ही उसकी कल्पना कर बैठते हैं। संसारकी आजकल जो अवस्था है, उसके कारण सब लोगोंको उतावले होनेकी आदत सी पड़ जाती है। इस उतावलेपनके कारण हमारी मनोवृत्ति कठोर और रूक्ष हो जाती है और हमारी कल्पना शक्तिका ह्रास होने लगता है। परन्तु हमें इस प्रकारका ह्रास नहीं होने देना चाहिए। दिन रात चिन्तित रहने और चक्कीकी तरह पिसते रहनेसे जीवन दूभर हो जाता है और उसीका परिणाम हमारे चेहरे और शरीरपर दिखाई देने लगता है। हमारी जीवनी शक्ति नष्ट होने लगती है, शरीरमें झुर्रियाँ पड़ने लग जाती हैं; बहुत अधिक और व्यर्थकी चिन्ताओंके कारण हम जल्दी जल्दी मृत्युकी ओर बढ़ने लगते हैं। परन्तु जो लोग सदा प्रसन्न और निश्चिन्त रहते हैं, वे कभी जल्दी वृद्ध नहीं होते। हमारे वृद्ध होनेका एक और कारण यह होता है कि हमारी वृद्धि रुक जाती है। जब हम चालीस पचास

वर्षके हो जाते हैं तब हम अपने आपको वृद्ध समझते हुए नई नई बातों तथा नए नए विचारोंके ग्रहण करनेमें असमर्थ समझने लगते हैं और उनकी ओरसे यह समझकर उदासीन हो जाते हैं कि इस अन्तिम अवस्थामें नई बातें सीखकर ही क्या करेंगे। परन्तु ऐसा विचार बहुत ही भ्रमपूर्ण है। कभी किसीको केवल अपनी अवस्थाका विचार करके, यह नहीं सोचना चाहिए कि अब हम और आगे बढ़कर क्या करेंगे, नई बातें जानकर क्या करेंगे। क्योंकि इस प्रकारका विचार ही हमारी मानसिक वृद्धिको रोक देता है और जहाँ हमारी मानसिक वृद्धि रुकी कि हमारी शारीरिक वृद्धि भी रुक जाती है और हम वृद्ध होने लगते हैं।

हमें सदा अपने युवा रहनेका ही विचार करना चाहिए। यदि कभी कोई काम हमारे सामने आ पड़े तो कभी यह नहीं कहना चाहिए कि अब तो हमसे यह काम नहीं हो सकता; हाँ, एक समय ऐसा भी था जब कि हम ऐसे ऐसे बहुतसे काम बहुत सहजमें कर दिया करते थे। हमें सदा युवकोंका सा जीवन व्यतीत करना चाहिए। अपने विचारों और कार्योंमें हमें सदा युवक बने रहना चाहिए। अवस्था बहुत अधिक हो जाने पर भी आवश्यकता पड़ने पर हमें नवयुवकों बल्कि बालकोंकी तरह उत्साह दिखलाना चाहिए। हमें अपने समस्त व्यवहार ऐसे रखने चाहिए कि हमें कभी कोई वृद्ध कह ही न सके। यदि हम सब कामोंमें युवकोंकी सी तत्परता और उत्साह दिखलावेंगे और सदा सब कामोंमें आगे बढ़ते रहेंगे, तो वृद्धावस्थाका हमपर कोई प्रभाव न हो सकेगा। यह समझना कि अमुक अवस्था तक पहुँचते पहुँचते हम वृद्ध हो जायँगे अथवा मर जायँगे हमारे जीवनक्रममें ऐसी बाधाएँ उपस्थित करता है कि फिर हम बिना मरे या वृद्ध हुए रह ही नहीं सकते।

यदि हम सदा जवान बने रहना चाहते हों तो हमें सबसे पहले यह उचित है कि अपने जीवनमें जितनी दुःखद, अप्रिय और खेदकारक घटनाएँ हुई हों उन सबको हम एकबारगी भूल जायँ। बीती हुई दुःखमय और अप्रिय बातोंका स्मरण हमें व्यर्थ ही दुखी करके हमारी जीवनी शक्तिका नाश करता है। अस्सी वर्षकी अवस्थाकी एक स्त्रीसे किसीने पूछा था कि इतनी अधिक अवस्था हो जाने पर भी आप क्यों अधिक वृद्ध नहीं मालूम होतीं? उसने उत्तर दिया कि मैं अप्रिय बातोंको विस्मृत कर देना जानती हूँ।

हमारे शरीरकी रचना ही ऐसी है कि उसके पोषण और वर्धनके लिए बहुत सी चीजें दूसरोंसे प्राप्त होती हैं। यदि हम संसारकी सब बातोंसे सदा कुछ न कुछ शिक्षा ग्रहण करते रहें, यदि सदा कुछ न कुछ नई बातें जानते और सीखते रहें, सदा कुछ न कुछ ग्रहण करके अपने शरीरका पोषण और वर्धन करते रहें, तो हम कभी जल्दी वृद्ध नहीं हो सकते। यदि हम अपने संगी साथियों आदिसे बिलकुल अलग हो जायँ और किसीसे कोई सम्बन्ध न रक्खें, तो हमारी मानसिक शक्तियोंका शीघ्र ही ह्रास होने लगेगा। जो मन पुरानी बातोंसे सम्पर्क नहीं रखता और नई बातों तक नहीं पहुँचता उसकी वृद्धि रुक जाती है। वह मानो वृद्धावस्थाको प्राप्त हो जाता है और जब मन वृद्ध हो गया तब शरीरको वृद्ध होते देर नहीं लगती।

संसारमें जितना सहज वृद्ध होना है उतना सहज शायद और कोई काम नहीं है। इसके लिए हमें इस बातकी भावना करनेकी आवश्यकता होती है कि हम वृद्ध हो रहे हैं और बहुत ही शीघ्र पूर्ण वृद्ध हो जायँगे। यदि हम सदा अपने आपमें वृद्धावस्थाके लक्षण ढूँढ़ते रहें, सदा मृत्युसे

भयभीत रहा करें, सदा यही सोचते रहें कि हमारी शक्तियाँ क्षीण होती जा रही हैं और हमारा अन्तकाल समीप आ रहा है तो हम बहुत ही शीघ्र और बहुत ही सहजमें वृद्ध हो जायँगे। इस प्रकारके विचार हमारी जीवनी शक्तिके लिए बहुत घातक होते हैं और हमें शीघ्र ही वृद्ध बनाकर मृत्युके मुखमें पहुँचा देते हैं। इस प्रकारके विचारोंसे हमारा शरीर जितना अधिक क्षीण होता है उतना और किसी प्रकार हो ही नहीं सकता। क्योंकि ऐसे विचारोंके कारण हममें वह शक्ति ही नहीं रह जाती, जिसकी सहायतासे हम वृद्धावस्थाको आनेसे रोक सकते हैं।

मनुष्यमें विशेषता यही है कि वह सोचना और विचार करना जानता है। यह जहाँ अपनी इस शक्तिसे बहुतसे अच्छे अच्छे काम करता है वहाँ वह इससे अपना बहुत कुछ अपकार भी कर लेता है। प्रायः सभी पशुओंकी कुछ न कुछ आयु निश्चित होती है और वे पशु या जीव जन्तु आदि अपनी उस निश्चित आयुका भोग भी करते हैं। परन्तु मनुष्य प्रायः अकाल मृत्युको प्राप्त होते हैं। इसका कारण यही है कि पशुओं और जीव जन्तुओं आदिमें सोचने विचारनेकी शक्ति नहीं होती। वे किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करते और विशेषतः अपनी आयु या जीवनके सम्बन्धमें तो वे बिलकुल ही निश्चिन्त रहते हैं। निश्चिन्त क्या रहते हैं, उनमें चिन्तित होनेकी शक्ति ही नहीं होती। यही कारण है कि वे सुखपूर्वक अपनी पूरी आयु भोगते हैं। पर मनुष्य जो कि अपने विचारशील होनेका अभिमान करता है अपनी इसी विचारशील-ताके कारण समयसे बहुत पहले ही मृत्युका ग्रास बन जाता है।

पेरिसके डाक्टर मेचनिकाफका कथन है कि मनुष्योंको कमसे कम एक सौ बीस वर्षकी अवस्था तक जीवित रहना चाहिए। परन्तु आज-

कल लोगोंकी औसत आयु इसकी आधी भी नहीं होती। कारण यही है कि लोग अनेक प्रकारसे अपना जीवन और अपने विचार दूषित कर लेते हैं जिससे वे पूरी क्या आधी आयु भी नहीं भोग पाते।

लन्दनसे चिकित्साशास्त्रसम्बन्धी एक बहुत प्रतिष्ठित और ऊँचे दरजेका पत्र निकलता है जिसका नाम लैन्सेट है। कुछ वर्ष हुए उस पत्रमें संसारके एक सबसे बड़े डाक्टरने एक ऐसी घटनाका उल्लेख किया था, जिससे यह बात भली भाँति सिद्ध होती है कि मनमें शरीरको जवान बनाए रखनेकी कितनी अधिक शक्ति है। एक युवती स्त्रीको उसके प्रेमीने किसी कारणसे छोड़ दिया था। उसके वियोगमें वह इतनी दुःखी हुई कि उसका दिमाग़ खराब हो गया और वह बिलकुल पागल हो गई। संसारकी सब बातोंसे वह इतनी बेखबर हो गई कि उसे इस बातका कुछ ध्यान ही न रह गया कि समय कैसे और कितना बीतता है। उसे विश्वास था कि मेरा प्रेमी फिर मेरे पास आवेगा और मुझसे मिलेगा। इसलिए वह वर्षों तक उसकी प्रतीक्षामें नित्य अपनी खिड़कीमें खड़ी रहा करती थी। धीरे धीरे इस प्रकार बहुत दिन बीत गए और उसकी अवस्था प्रायः सत्तर वर्षकी हो गई। उस समय एक बार कुछ अमेरिकनोंने उसे देखा, जिनमें कुछ अच्छे अच्छे डाक्टर भी थे। पर उसे देखकर उनमेंसे कोई यह न कह सका कि इसकी अवस्था बीस वर्षसे अधिककी है। न तो उसका एक भी बाल पका था और न उसके चेहरेपर एक भी झुर्री दिखाई देती थी। उसके सब अंग वैसे ही कोमल और स्निग्ध थे, जैसे युवती स्त्रियोंके हुआ करते हैं। इसका कारण यही था कि युवावस्थामें जब वह पागल हुई थी, तबसे कभी उसके मनमें वृद्ध होनेका एक बार भी विचार नहीं आया था। वह अपने मनमें सदा यही समझती थी कि मैं अभी युवती हूँ

और मेरा प्रेमी अभी मुझसे मिलनेके लिए आता है। न तो उसे संसारमें किसी बातकी चिन्ता ही रह गई थी और न उसके मनमें कभी यह विचार ही आता था कि आज मैं तीस वर्षकी हुई, आज मैं चालीस वर्षकी हुई और आज मैं पचास वर्षकी हो गई। उसके मनमें सदा यही विश्वास बना रहा कि मैं उसी समय और उसी अवस्थामें हूँ जिस समय और जिस अवस्थामें मेरा प्रेमी मुझे छोड़कर गया है। उसके इसी मानसिक विश्वासने उसके शारीरिक न्हासको रोक रक्खा था। उस समय भी वह शारीरिक दृष्टिसे ठीक उतनी ही बड़ी और वैसी ही थी जितनी बड़ी और जैसी वह पागल होनेके समय थी। उसकी मानसिक अवस्थाने उसकी शारीरिक अवस्थाको भी ठीक अपने अनुरूप ही बना रक्खा था और इसी लिए वह अब तक वृद्धा न होकर युवती ही बनी रही थी।

यदि पचास वर्षकी अवस्थामें ही किसीके सिरके बाल झड़ जायँ, दाँत टूट जायँ, आँखें जवाब दे दें और दिमाग काम न करे तो यह केवल लज्जाकी ही बात नहीं है बल्कि परमात्माका एक प्रकारका अपमान है। पचास वर्षकी अवस्थामें तो मनुष्यको युवक होना चाहिए और युवावस्थासे बुढ़ापेके चिह्नोंका क्या सम्बन्ध और फिर मानसिक शक्ति तो बराबर बढ़ती ही रहनी चाहिए। वृद्धावस्थाका तो मनुष्यमें केवल यही चिह्न दिखलाई देना चाहिए कि उसकी बुद्धि और अनुभव बढ़ा चढ़ा हो, वह अधिक सुंदर और बलवान् हो और अधिक तथा उत्तम काम करे। पर यह तभी हो सकता है जब कि हम वृद्धावस्थाका ध्यान बिलकुल छोड़ दें। हम कभी यह न समझें कि हमारी अवस्था बहुत अधिक हो गई है, अब हमारा शरीर नहीं चलता, अब हमारे विश्राम करने और मरनेके दिन आ गए हैं। बल्कि इसके विपरीत हमें सदा

यही समझते रहना चाहिए कि हम युवक शक्तिशाली और समर्थ हैं और बराबर ऐसे ही बने रहेंगे।

जो व्यक्ति युवक बना रहना चाहता हो उसे उचित है कि वह यौवनके शत्रुओंसे सदा दूर रहे। यौवनका सबसे अधिक नाश यँहा समझनेसे होता है कि हम वृद्ध हो चले हैं और हमें सांसारिक कार्योंसे धीरे धीरे अपना हाथ खींचना चाहिए। यदि हम युवावस्थाका अपना सारा कार्य जारी रक्खेंगे, अपने मनमें कभी वृद्धावस्थाका विचार न लावेंगे और अपने आपको सदा युवक ही समझते रहेंगे तो फिर हम सदा युवक ही बने रहेंगे। परन्तु जब हम अपने मनमें युवावस्थाकी आशाएँ, उमंगें और आकांक्षाएँ निकाल देंगे और युवकोंका सा आचरण छोड़ देंगे तो फिर हमारे वृद्ध होनेमें किसी प्रकारका सन्देह न रह जायगा।

एक बार एक ऐसे सज्जनसे जिनकी अवस्था बहुत अधिक हो गई थी किसीने पूछा कि इतनी अधिक अवस्था हो जानेपर भी आप बिलकुल जवानसे क्यों माल्रम होते हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि मैं प्रायः तीस वर्ष तक एक हाईस्कूलका प्रधानाध्यापक था और सदा अपने स्कूलके लड़कोंके साथ हिला मिला और खेला कूदा करता था। मैं अपने विचारों और भावनाओंको सदा युवकोंके विचारों और भावनाओंके ही समान रखता था। यही कारण है कि अब तक मैं बहुत कुछ जवान ही माल्रम पड़ता हूँ और इसी लिए वृद्धावस्था मुझपर अधिकार नहीं कर सकी है। बात बहुत ही ठीक है। प्रकृतिका यही सिद्धान्त और नियम है कि या तो हर एक चीज़ बढ़ती और उन्नति करती रहे और या नष्ट हो जाय। यदि हम अपनी वृद्धि रोक लेंगे तो हमारा नाश अवश्यम्भावी है। इस लिए हमें अपने मनमें सदा इस बातका दृढ़

विचार रखना चाहिए कि हम सदा युवक ही बने रहेंगे और अपने सब व्यवहार भी युवकोंकेसे ही रखने चाहिए। हमें सदा यही समझते रहना चाहिए कि हम सदा स्वस्थ रहेंगे और कभी वृद्ध न होंगे। और तब इस प्रकारके दृढ़ विचारोंका परिणाम भी इन्हींके अनुकूल देखनेमें आवेगा। यदि कोई तुमसे यह कहे भी कि तुम्हारी अवस्था अधिक हो चली है और तुम वृद्धसे मालूम होते हो, तो उन्हें उत्तर दो कि मैं कैसे वृद्ध हो सकता हूँ? मैं तो सिद्धान्त सत्य हूँ। सत्य और सिद्धान्त भी कहीं वृद्ध होता है?

यों तो हमें कभी यह नहीं सोचना चाहिए कि हम वृद्ध हो रहे हैं; पर विशेषतः सोनेके समय तो हमें वृद्धावस्थाके विचारसे और भी दूर भागना चाहिए। उस समय तो हमें अपने आपको और भी अधिक युवक समझना चाहिए। क्योंकि उस समय हमारे मनमें जो विचार होता है, उसका हमारे शरीरके संघटनपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है और उस प्रभावका पूरा पूरा वर्णन पिछले एक प्रकरणमें दिया जा चुका है। प्रातःकाल उठनेके समय भी हमें अपने युवक होनेका ही विचार मनमें रखना चाहिए। मतलब यह कि हर समय और हर अवस्थामें अपने सामने यौवनकी ही मूर्ति, यौवनका ही आदर्श रखना चाहिए। वृद्धावस्थाके सब प्रकारके विचारों और भावोंको दूर करके हमें यही समझना चाहिए कि अवस्था अधिक होनेसे मनुष्यमें योग्यता और अनुभव आदिकी वृद्धि होती है और वह अधिक कार्य करनेके योग्य बनता है। हमारी जीवनी शक्ति दिनपर दिन बढ़ती ही जाती है और न तो उसमें किसी प्रकारका ह्रास होता है और न होना चाहिए।

यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो जान पड़ेगा कि प्रकृतिने हमें स्थायी यौवन दिया है। हमारे शरीरमें जो चीज़ पुरानी और निकम्मी

होती है वह आपसे आप निकल या नष्ट हो जाती है और उसके स्थान-पर नई चीज आ जाती है। हमारे शरीरमें एक भी कोषाणु ऐसा नहीं है जो पुराना होते ही नष्ट न हो जाता हो और जिसके स्थानपर नए कोषा-णुकी सृष्टि न होती हो। इसीसे सिद्ध होता है कि वृद्धावस्था बिलकुल कृत्रिम और अप्राकृतिक है। शरीरशास्त्रके ज्ञाता हमें बतलाते हैं कि हमारे शरीरके कुछ कोषाणु तो ऐसे हैं जो तीन चार रोजमें बदल जाते हैं और कुछ ऐसे हैं जो कुछ हफ्तों या महीनोंमें बदलते हैं। अस्थि-योंसे सम्बन्ध रखनेवाले अंश कुछ अधिक समयमें बदलते हैं। पर फिर भी इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं कि छः महीनेसे दो वर्षके अन्दर हमारे सारे शरीरकी कायापलट हो जाती है। आजसे दो वर्ष पहले हमारे शरीरमें जितनी चीजें थीं उनमेंसे एक भी आज नहीं रह जाती। वे सब पुरानी चीजें नष्ट हो जाती हैं और उनके स्थानपर बिलकुल नई चीजें आ जाती हैं। जब प्रकृतिकी ऐसी व्यवस्था है, तब फिर वृद्धावस्थाकी सम्भावना स्वयं हमारे विचारों और भावनाओंको छोड़कर कहाँ रह गई? हमारी वृद्धावस्था तो केवल हमारे दूषित आचार-विचार और प्रकृतिविरुद्ध रहन-सहनके कारण ही होती है। यदि हम अपनी इन सब बातोंको ठीक कर लें, तो फिर वृद्धावस्था कभी हमारे पास नहीं आ सकती और हम सदा सब प्रकारसे युवक ही बने रह सकते हैं।

हमारे पुराने कोषाणु तो नष्ट ही हो जाते हैं। अब रहे हमारे नए कोषाणु, उनपर वृद्धावस्थाका जो प्रभाव देखनेमें आता है वह केवल हमारे दूषित विचारों और रहन-सहनका ही होता है। यदि हमारे विचा-रोंमें बुढ़ापा आ गया हो तो फिर उन कोषाणुओंके द्वारा हमारे शरीर-पर बुढ़ापेके लक्षण अवश्य दिखलाई पड़ने लगेंगे। पर यदि हमारे मनमें यौवनके भाव होंगे तो उन कोषाणुओंके द्वारा हमारी युवावस्था भी

बनी रहेगी। यह तो निश्चित ही है कि हमारा यौवन या वृद्धावस्था हमारे शरीरके करोड़ों अरबों कोषाणुओंसे ही प्रकट होती है। फिर जो कोषाणु साल दो सालसे अधिक पुराने नहीं होते, वे आखिर इतने वृद्ध क्यों मालूम होते हैं? इसी लिए कि उनपर हमारे वृद्धावस्थाके विचारोंका प्रभाव पड़ता है। विचारोंका यह प्रभाव बहुत ही महत्त्वपूर्ण और प्रत्येक व्यक्तिके ध्यान देने योग्य है। परन्तु यदि हमारे विचारोंमें यौवनका सा भाव हो तो फिर हम कभी वृद्ध नहीं हो सकते, क्यों कि हमारा शरीर तो नित्य नया बनता ही रहता है।

प्रायः बहुत से ऐसे नवयुवक देखे जाते हैं जिनके शरीरपर वृद्धावस्थाके अनेक लक्षण देखे जाते हैं। इसका कारण यही है कि वे प्रायः दुखी और चिन्तित रहते हैं और उनका आचार-विचार बहुत ही दूषित होता है। दुःख, चिन्ता, स्वार्थपरायणता, भय, आशंका, आदिका मनुष्यके शरीरपर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है और इन सब बातोंके कारण उसमें नया जीवन होते हुए भी जीवनी शक्तिका पूरा पूरा संचार नहीं होने पाता। अतः प्रत्येक समझदार व्यक्तिको सब प्रकारके दूषित और खेदोत्पादक विचारों तथा कार्योंसे बराबर बचना चाहिए। यदि हमारे विचार ठीक और शुद्ध होंगे तो हमारे कोषाणु भी ठीक और शुद्ध रहेंगे और उस दशामें हम वृद्ध न हो सकेंगे। इसके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि हम किसी अवस्थामें भी चिन्तित या अप्रसन्न न हों। हमें सदा अपने सामने सुख, शान्ति, सामर्थ्य और आशाकी ही मूर्ति रखनी चाहिए और यह समझना चाहिए कि हम बराबर उन्हींकी ओर बढ़ रहे हैं। हमें यह समझ लेना चाहिए कि संसारका प्रत्येक अणु मूर्तिमान् स्वास्थ्य है और उसका किसी प्रकार नाश नहीं हो सकता। हममें एक ऐसी शक्ति है जो न तो कभी बीमार होती है

और न कभी मरती है। वह शक्ति ईश्वरका अंश है और उसीके द्वारा हमारा सदा सब प्रकारका कल्याण होता रहता है। अपने मनमें इस प्रकारका दृढ़ विचार रखनेका शरीरपर बहुत ही सुन्दर और शुभ परिणाम होता है।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सदा प्रसन्न रहते हैं। चाहे कितनी ही बड़ी कठिनता क्यों न आ पड़े, पर वे कभी चिन्तित या दुःखी नहीं होते। ऐसे लोग प्रायः बहुत स्वस्थ और नीरोग होते हैं। इसका कारण यही है कि वे अपने विचारोंके द्वारा अपने शरीर और कोषाणुओंको वृद्ध नहीं बनाते। हमें अपने समाजमें ऐसे लोगोंको ढूँढ़ना चाहिए, उनका अनुकरण करना चाहिए और उनके आदर्शसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। यदि हम सदा प्रसन्न रहना और अपने आपको सदा नवयुवक समझना सीख लेंगे, तो फिर हम देखेंगे कि हमारे शरीरपर उसका कैसा अच्छा प्रभाव होता है और अवस्थाके अधिक होनेसे भी हम वृद्ध होनेसे किस प्रकार बच सकते हैं। जब हम यौवनके विचारोंके अभ्यस्त हो जायँगे, तब वृद्धावस्था आपसे आप दूर चली जायगी। जब हम यह बात अच्छी तरह समझ लेंगे कि हमारा शरीर नित्य नया होता रहता है और उसके सब पुराने अंगोंके स्थानपर नए अंग बनते रहते हैं, तब हमारे वृद्ध होनेकी कोई सम्भावना ही न रह जायगी।

उच्च आदर्शों और प्रसन्नतापूर्ण विचारोंमें यौवन-रक्षाकी बहुत अधिक और विलक्षण शक्ति है। हमें उस शक्तिका अनुभव करना चाहिए और देखना चाहिए कि उसके द्वारा हम वृद्धावस्थासे कहाँ तक बच सकते हैं। यदि हम सदा कुछ न कुछ सीखनेकी चेष्टा करते रहेंगे, सदा उन्नत होने और आगे बढ़नेकी चेष्टा करते रहेंगे, तो हम कभी

वृद्ध हो ही नहीं सकते। जिन कार्योंसे आदमीकी 'नैतिक, मानसिक, आत्मिक और शारीरिक उन्नति होती है, उन कार्योंसे यौवन-रक्षामें बहुत अधिक सहायता मिलती है। वृद्धावस्था तो खाली नैतिक, मानसिक और आत्मिक ह्रासके कारण ही आती है। जो लोग सब प्रकारके दुष्कर्मोंसे बचे रहते हैं, वे सदा प्रसन्न रहते हैं और जो लोग सदा प्रसन्न रहते हैं वे कभी वृद्ध हो ही नहीं सकते। यदि हमें जीवनसे किसी प्रकारका सुख न मिलता हो, तो फिर हमारे वृद्ध होनेमें अधिक समय नहीं लगता। अतः सब लोगोंको सदा प्रसन्नतापूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिए। जीवन सदा आदर्श होना चाहिए और आदर्शमें कभी वृद्धावस्था आती ही नहीं। हमें सदा अपने आपको नवयुवक समझना चाहिए और वृद्धावस्थाका कभी ध्यान भी न करना चाहिए। जो अमृत हमारे यौवनको स्थायी रख सकता है वह कहीं बाहर नहीं है, बल्कि स्वयं हमारे शरीरमें ही है। हमें केवल उचित रूपसे विचार करने और उचित रूपसे जीवन व्यतीत करनेकी आवश्यकता है।

वृद्धावस्थाको रोकनेके लिए संसारमें जितनी ओषधियाँ हैं, उन सबसे बढ़कर प्रेम है। यदि हम सब प्रकारके भले कामोंसे प्रेम रक्खें, अपने सब मित्रों और सम्बन्धियोंसे प्रेम रक्खें, यहाँ तक कि जीव और वस्तु मात्रसे प्रेम रक्खें तो कभी वृद्ध हो ही नहीं सकते। प्रेमके द्वारा मनुष्यमें बहुत ही उच्च तथा सुन्दर विचार और भावनाएँ होती हैं, जिनके द्वारा मनुष्यका यौवन स्थायी होता है। किसी व्यक्ति या वस्तुके सम्बन्धमें विचार करनेके समय हमें सदा इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि उसमें कुछ ईश्वरीय अंश है। बस इससे बुरे विचारों और दूषित भावनाओंका आपसे आप नाश हो जायगा। और जब बुरे विचार तथा दूषित भावनाएँ दूर हो जायँगी तब मन और जीवन आपसे आप शुद्ध

हो जायगा और उसमें एक ऐसा बल आ जायगा जिससे वृद्धावस्था कभी पास आ ही नहीं सकती।

मनुष्य मृत्युसे सदा डरता रहता है और उसकी बहुत अधिक दिनों तक जीवित रहनेकी बड़ी कामना होती है। यदि हम यह मान लें कि ईश्वरने हममें जीवित रहनेकी लालसा तो भर दी है; पर हमारे अधिक समय तक जीवित रहनेका कोई साधन हममें उत्पन्न नहीं किया, तो ईश्वर बड़ी भारी भूल करनेका दोषी ठहरता है। जब हम सृष्टिके अन्यान्य जीवोंके जीवन और आयु आदिकी ओर ध्यान देते हैं, तो हमें मानना पड़ता है कि मनुष्य आजकलकी अपनी औसत आयुसे कहीं अधिक बड़ी आयु भोगनेके लिए बनाया गया है। स्वयं मनुष्यका शारीरिक संघटन ही यह बात सिद्ध करता है कि उसकी आयु बहुत अधिक है। हमारे यहाँ शास्त्रोंमें मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी कही गई है और कभी कभी लोग उससे भी कहीं अधिक आयु भोगते हुए देखे गए हैं। परन्तु यदि साधारणतः लोग इतनी आयु तक न पहुँचकर चालीस, पचास या साठ वर्षकी अवस्थामें ही कालके मुखमें समा जायँ, तो इसमें दोष किसका है? हमें उत्पन्न करनेवाले उस परमात्माका या स्वयं हमारा? हम तो समझते हैं कि दोष सोलहों आने हमारा ही है। लोग कहा करते हैं कि सौ वर्षकी आयु तो सतयुगमें हुआ करती थी, यह तो कलियुग है। तो फिर हम इस कलियुगको ही सतयुग क्यों न बनानेका प्रयत्न करें? अपनी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक दुर्बलताएँ हम स्वयं ही दूर कर सकते हैं। इसी लिए भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको उपदेश दिया था—

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ ५-६॥

११—आत्मविश्वास

किसीने कहा है कि यदि किसीमें पर्वतों तकको हिला देनेकी शक्ति है, तो वह केवल आत्मविश्वासमें ही है। संसारकी सब प्रकारकी शक्तियाँ केवल आत्मविश्वाससे ही उत्पन्न होती हैं। हम चाहे कितना ही बड़ेसे बड़ा काम क्यों न करना चाहें, यदि हममें अपनी शक्तिपर पूरा पूरा भरोसा है तो वह काम हम बहुत सहजमें और अवश्य कर लेंगे। हम जिस कामके करनेपर यह समझकर तुल जायँगे कि इसे हम अवश्य ही पूरा कर लेंगे, तो फिर उसके पूरा होनेमें कोई शक्ति बाधा नहीं डाल सकती। सच तो यह है कि हममें जिस सीमा तक आत्म-विश्वास होता है उस सीमा तक हम कोई काम भी कर सकते हैं। जिसमें आत्मविश्वासकी मात्रा जितनी ही अधिक होगी वह उतने ही बड़े और भारी काम कर सकेगा। भला जो आदमी यह समझकर पहलेसे ही हिम्मत हार जाय कि यह काम मुझसे न होगा वह उस कामको क्या पूरा करेगा?

यदि हम अपनी शक्तियोंपर पूरा पूरा भरोसा करके किसी काममें लग जायँ और उस समय कोई व्यक्ति आकर हमसे कहे कि तुम इस काममें व्यर्थ लगे हो, तुमसे वह कदापि न होगा, तो हमें उस व्यक्तिको अपना पूरा पूरा शत्रु ही समझना चाहिए। ऐसे आदमियोंसे हमें सदा दूर रहना चाहिए जो हमें उत्साहित करनेके बदले उलटे हमें निरुत्सा-हित करें। क्योंकि ऐसे ही आदमी हमें ऊपर चढ़नेसे रोकते और नीचेकी ओर ढकेलते हैं।

इस समय हमें मानव समाजकी जो इतनी अधिक उन्नति दिखाई दे रही है वह केवल ऐसे ही महानुभावोंके द्वारा हुई है जिनका आत्म-विश्वास असीम और अमर्यादित था । जिस समय सारा संसार उनकी हँसी उड़ाता है, उन्हें कोई बड़ा काम करनेके अयोग्य समझता है और उनके सत्साहसको दुस्साहस समझता हुआ उनकी निन्दा करता है, उस समय ऐसे लोग इन बातोंकी कुछ भी परवाह न करते हुए और अपनी शक्तियोंपर पूरा पूरा विश्वास रखते हुए अपनी कल्पनाओंको मूर्त्त-स्वरूप देनेका प्रयत्न करते रहते हैं और अन्तमें पूर्ण रूपसे सफलमनोरथ होते हैं । यदि संसारमें इस प्रकारके महात्मा न उत्पन्न हुए होते, तो सम्भवतः अब तक भी संसार अपनी उसी आरम्भिक अवस्थामें, उसी जंगलीपनकी हालतमें, दिखाई देता । आजकी सी उन्नतिका कहीं नाम भी न होता ।

जब तक हम किसी प्रकारकी सफलताकी कामना न करें और अपने आपको उस सफलताके योग्य न बना लें, तब तक संसारकी और कोई शक्ति हमें सफल नहीं बना सकती । सफल-मनोरथ होनेके लिए सबसे पहले दृढ आत्म-विश्वासकी आवश्यकता होती है । बिना आत्म-विश्वासके संसारमें कभी कोई काम नहीं होता । संसारका कोई काम केवल संयोगवश ही नहीं हो जाया करता । हर एक कामके लिए एक नियम होता है और जब तक उस नियमका पालन न हो तबतक वह काम कभी पूरा नहीं होता । प्रत्येक कार्यके लिए एक कारणकी आवश्यकता होती है ओर वह कारण भी उतना ही बड़ा होना चाहिए जितना बड़ा कि वह कार्य हो । इसी लिए महान् सफलताका उद्गम भी महान् आशा और विश्वासमें होता है । हमारी चाहे कितनी ही अधिक शिक्षा क्यों न हुई हो, हममें चाहे सब प्रकारके कितने ही अधिक गुण

क्यों न हों; परन्तु फिर भी हमारी सफलता कभी हमारे विश्वाससे बढ़-कर नहीं हो सकती। जो आदमी यह समझता है कि हम अमुक काम कर सकेंगे वही वह काम कर सकता है और जो आदमी यह समझता है कि हमसे यह काम न हो सकेगा, उसके किए वह काम सचमुच कभी न हो सकेगा। यह एक ऐसा नियम है जिसमें किसी प्रकारका अपवाद नहीं है।

लोग चाहे हमारे विचारोंकी हँसी उड़ावें और चाहे हमें हवाई किले बाँधनेवाला समझें; परन्तु यदि हममें पूर्ण आत्म-विश्वास होगा तो हम हवामें किला बनाकर भी उन हँसनेवालोंको लज्जित कर देंगे। परन्तु यदि हममें अपने आपपर विश्वास ही न होगा, तो फिर हम क्या करेंगे? कुछ भी नहीं। ज्यों ही हम अपने आपपर अविश्वास करते हैं, त्यों ही मानो हम अपनी सारी शक्तियोंका नाश कर बैठते हैं। चाहे हमारी सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाय, हमारी तन्दुरुस्ती भी जवाब दे दे और संसारमें कोई हमारा विश्वास न करे, हमें इन सब बातोंकी कभी परवाह न करनी चाहिए। क्योंकि जब तक हममें आत्म-विश्वास है, तब तक हम संसारमें सब कुछ करके दिखला सकते हैं। संसारमें न तो कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिए और न कोई ऐसी विपत्ति होनी चाहिए, जो हमारे आत्म-विश्वा-सको आघात पहुँचा सके। यदि हम अपने आपपर विश्वास रखते हुए सदा आगे बढ़ते रहेंगे, तो संसार आपसे आप हमारे लिए मार्ग बनाने लगेगा।

एक बार कोई सिपाही एक पत्र लेकर नेपोलियनके पास गया। नेपो-लियनके सामने पहुँचते पहुँचते पत्र देनेसे पहले ही उसका घोड़ा गिर पड़ा और मर गया। नेपोलियनने वह पत्र पढ़कर उसका उत्तर लिखवाया और उस

सिपाहीको देकर कहा कि तुम अभी मेरे घोड़ेपर सवार होकर जाओ और अभी यह उत्तर पहुँचाओ। उस सिपाहीने नेपोलियनके घोड़ेकी ओर देखकर झिझकते हुए कहा—नहीं श्रीमान्, यह ऐसा बढ़िया घोड़ा मेरे चढ़नेके योग्य नहीं है। नेपोलियनने तुरन्त उत्तर दिया—संसारमें कोई चीज ऐसी बढ़िया नहीं है जो एक फ्रान्सीसी सिपाहीके योग्य न हो।

संसार प्रायः ऐसे ही लोगोंसे भरा हुआ है जो इस फ्रान्सीसी सिपाहीकी भाँति यही समझते हैं कि औरोंके पास जो बढ़िया बढ़िया चीजें हैं हम उनके योग्य नहीं हैं और यही कारण है कि उन बढ़िया चीजोंके योग्य बहुत कम लोग निकलते हैं। परन्तु जो लोग अपने आपको अच्छीसे अच्छी चीजके योग्य समझते हैं, वही वे चीजें प्राप्त भी कर सकते हैं। जब हम खुद ही अपने आपको बौना समझते हैं, तब हम देवोंकेसे काम कैसे कर सकते हैं? जब हम पहलेसे ही अपने आपको सब प्रकारसे अयोग्य, असमर्थ और अभागा समझते हैं, तो फिर हम क्योंकर योग्य, समर्थ और भाग्यवान् हो सकते हैं? जो लोग संसारमें बहुत बड़े काम कर सकनेके योग्य होते हैं, वे भी अपने आपको अयोग्य और असमर्थ समझ कर केवल छोटे मोटे कामोंसे ही सन्तुष्ट हो बैठते हैं और कभी कोई बड़ा काम नहीं कर पाते। वे अपनी शक्तियोंका पूरा पूरा उपयोग करना जानते ही नहीं, बल्कि यों कहना चाहिए कि वे अपनी शक्तियोंसे परिचित ही नहीं होते। भला ऐसे आदमी शक्ति रखते हुए भी उसका क्या उपयोग कर सकते हैं? बल्कि हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि संसारमें बहुत ही थोड़े लोग ऐसे हैं जो अपनी आधी शक्तियोंसे भी भली भाँति परिचित हों। बहुत बड़ी संख्या ऐसे ही लोगोंकी है, जो सब प्रकारकी शक्तियाँ रखते हुए भी अपने आपको नितान्त अयोग्य और असमर्थ समझते हैं और फलतः

अयोग्यों तथा असमर्थोंका सा जीवन व्यतीत करके इस संसारसे चले जाते हैं। इस प्रकार हम केवल अपनी ही हानि नहीं करते बल्कि सारे संसारकी हानि करते हैं।

जो आदमी अपने आपको मिट्टी समझता हो, उसका परिणाम कुचले जानेके सिवा और क्या हो सकता है? अपने आपको दुर्बल, अयोग्य और असमर्थ समझना ही दुर्बल, अयोग्य तथा असमर्थ बनना है। परन्तु जो व्यक्ति अपनी शक्तियोंपर विश्वास रखता है, जो कठिनसे कठिन कार्योंको भी अपने करनेके योग्य समझता है, वह मानो अपने चारों ओर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर लेता है, जो उसके सफल और विजयी होनेके लिए परम अनुकूल होती है। अपने आपको कोई काम करनेके योग्य समझना ही मानो वह काम आधेसे अधिक कर डालना है।

हम प्रायः लोगोंको किसीके सम्बन्धमें यह कहते हुए सुनते हैं कि वाह वाह उनका क्या कहना है। वे तो बड़े भाग्यवान् हैं। उनके सब काम आपसे आप हो जाते हैं। वे अगर मिट्टीको भी छू दें, तो वह सोना हो जाती है। पर वास्तवमें किसीके सम्बन्धमें ऐसी बात केवल भाग्यसे नहीं होती। इतने बड़े भाग्यवान् होनेके लिए मनुष्यको विचार-शील, दृढप्रतिज्ञ और आत्मविश्वासी होना पड़ता है। जो व्यक्ति किसी क्षेत्रमें पहुँचनेसे पहले ही अच्छी तरह यह बात समझे हुए रहता है कि मैं अवश्य सफलमनोरथ और विजयी होऊँगा वह मानो सफल और विजयी होनेकी परिस्थितियोंको अपने साथ लेकर चलता है। ऐसा आदमी स्वयं अपने आत्म-विश्वाससे तो शक्ति प्राप्त करता ही है, अपने मित्रों और परिचितोंसे भी शक्ति प्राप्त करता है। क्योंकि उसके मित्र उसकी योग्यता और उसकी कार्यकुशलतासे परिचित होते हैं और सदा सब प्रकारसे उसे उत्साहित करते रहते हैं। फिर भला ऐसे आदमीके सफ-

लमनोरथ और विजयी होनेमें क्या सन्देह हो सकता है ? अब भी संसारके कई भागोंमें कुछ ऐसे जंगली पाए जाते हैं जो यह समझते हैं कि जिन शत्रुओंपर हम विजय प्राप्त करते हैं उनकी सारी शक्ति हमारे शरीरमें आ जाती है । एक तरहसे यह बात बहुत ठीक है । संसारके प्रायः सभी क्षेत्रों और सभी कार्योंमें यह बात देखी जाती है कि जब हम किसी एक काममें सफल होते हैं, तब हममें एक ऐसा उत्साह आ जाता है जो हमें उससे अधिक कठिन या बड़ा काम करनेके योग्य बना देता है । इस प्रकार हम ज्यों ज्यों काम करते जाते हैं त्यों त्यों हमारी शक्ति और योग्यता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है । इसलिए यदि जंगलियोंका यह विश्वास हो कि हम जिन शत्रुओंपर विजय प्राप्त करते हैं उनकी शक्ति भी हममें आ जाती है, तो इसमें कुछ अनौचित्य नहीं है ।

यदि हम कोई बड़ा काम करना चाहते हों तो हमें उचित है कि सबसे पहले अपनी सारी विचारशक्ति, अपना सारा ध्यान, उसी बातपर जमा दें और अपने मनमें इस बातका दृढ विश्वास कर लें कि हम यह काम अवश्य और बहुत सहजमें कर लेंगे, तो हमारा वह विश्वास अवश्य फलदायक होगा; हमारे हाथसे वह काम अवश्य पूरा उतर जायगा ।

हमारी जितनी मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ हैं, आत्म-विश्वास उन सबका सरदार है । वह स्वयं तो जो काम करता है वह करता ही है, हमारी सब शक्तियोंमें दूना और तिगुना बल पहुँचाता है । जबतक आत्म-विश्वास रूपी सेनापति आगे नहीं बढ़ता, तबतक और सब शक्तियाँ चुपचाप खड़ी उसका मुँह ताका करती हैं । पर जब आत्म-विश्वास अपना पूरा पूरा काम करने लगाता है, तब बिलकुल दबी हुई शक्तियाँ भी उठ खड़ी होती हैं और हमें आपसे आप ले चलकर सफलता तथा विजय तक पहुँचा देती हैं । जब आत्म-विश्वासके कारण हममें साहस उत्पन्न होता

है, तब हमारी कोई शक्ति ऐसी नहीं रह जाती जो अपना पूरा पूरा काम न करती हो। आदमी तो खैर आदमी ही है, घुड़दौड़का घोड़ा भी तबतक दौड़में नहीं जीत सकता जबतक उसमें पूरा पूरा आत्म-विश्वास न हो।

सभी लोग किसी न किसी तरहका काम करते हैं, पर उनमेंसे सफलमनोरथ होनेवाले बहुत ही थोड़े होते हैं, अधिकांश विफल होकर ही रह जाते हैं। इसका कारण यही है कि उनमें विचारोंकी दृढता नहीं होती। विजयी वही होता है जो यह बात अच्छी तरह समझ लेता है कि चाहे कुछ भी हो मैं बिना विजय प्राप्त किए कभी चैन न लूँगा। एक प्रकारकी ऐसी दृढता, एक प्रकारका ऐसा विश्वास होता है, जो कभी पीछे हटना जानता ही नहीं। ऐसा ही विश्वास, ऐसी ही दृढता, मनुष्यको बड़ी बड़ी कठिनाइयोंका सामना करके अग्रसर होनेमें समर्थ करती है। परन्तु जहाँ जरा भी अनिश्चय, जरा भी अविश्वास हुआ कि सारा काम चौपट हो जाता है। सफल और विफल विजयी और पराजितमें बस यही अन्तर है, जो देखनेमें तो बहुत थोड़ा जान पड़ता है पर जिसका परिणाम बहुत अधिक बड़ा और व्यापक होता है। अतः जो लोग किसी काममें पूरी पूरी सफलता प्राप्त करना चाहते हो, उन्हें सबसे पहले अपने विचारों और भावोंमें परिवर्तन करना चाहिए। उन्हें अपने मनसे शंका, झिझक, अनिश्चय, अविश्वास आदि घातक बातोंको बिलकुल निकाल देना चाहिए और अपने आपपर पूरा पूरा विश्वास रखते हुए और सफलताकी पूरी पूरी आशा रखते हुए काममें लग जाना चाहिए। उस समय वे देखेंगे कि सफलता कितनी जल्दी, कितना आपसे आप, उनके पास आ पहुँचती है। उस समय उन्हें आत्म-विश्वासके इस शुभ परिणामपर आश्चर्य होगा। वे समझ लेंगे कि हमें एक ऐसा मूल मन्त्र

मिल गया है, जो हमें सदा सब कार्योंमें विजयी बना सकता है; फिर आशंका, सन्देह, अनिश्चय या अविश्वास उनके पास भी न फटक सकेगा।

हम जो कार्य वास्तवमें सम्पादन करना चाहते हों, उसका आविर्भाव सबसे पहले विचारमें होना चाहिए। यदि हममें अभिप्रेत या इच्छित वस्तुका ठीक ठीक परिज्ञान हो और उसे प्राप्त करनेकी हममें बलवती कामना हो, तो हमारी सफलताका मार्ग बहुत कुछ परिष्कृत हो जाता है। यदि आरम्भमें हमारा विचार ही निर्बल होगा, तो उसकी पूर्ति क्या होगी? आज तक संसारमें जितने बड़े बड़े काम हुए हैं वे प्रबल कामना और बलवती इच्छाके ही कारण हुए हैं। बड़े कामोंमें पहले चारों ओरसे निराशा ही निराशा दिखाई देती है, कहीं किसी ओर प्रकाशका नाम तक नहीं दिखाई देता। परन्तु केवल बलवती कामना और प्रबल इच्छाके कारण उत्पन्न उत्साह और साहससे वे बड़े बड़े काम अन्तमें पूरे होकर ही रहते हैं। इसीके कारण लोग बड़ेसे बड़ा आत्मत्याग करनेके लिए तैयार हो जाते हैं और जिन बातोंका होना स्वप्नमें भी असम्भव समझा जाता है, वही बातें प्रत्यक्ष रूपमें कर दिखलाते हैं। इसका कारण यही है कि हमारा विचार और हमारा विश्वास जैसा होता है वैसे ही हम भी हो जाते हैं। जिस आदमीमें विश्वासकी जितनी ही कमी होती है, उसे प्राप्ति भी उतनी ही कम होती है। पर जिसका विश्वास पूरा और दृढ़ होता है, उसीको अधिक प्राप्ति होती है। मतलब यह कि विश्वासकी मात्राका सफलताकी मात्राके साथ बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है।

जो लोग केवल अपने ही पुरुषार्थ और बाहुबलसे इस संसारमें महान् हुए हैं, यदि उनकी जीवनियों और कार्योंपर भली भाँति विचार किया

जाय, तो जान पड़ेगा कि आरम्भसे ही उनमें बहुत अधिक आत्म-विश्वास था। उनमें अध्यवसाय भी बहुत अधिक था। वे अपनी धुनके पक्के थे और उन्हें अपनी योग्यताका पूरा भरोसा और सफलताका पूरा विश्वास था। उनकी मानसिक प्रवृत्ति दृढ़तापूर्वक उनके उद्देश्य या लक्ष्यकी ओर लगी हुई थी और जो आशंकाएँ तथा भय आदि साधारण योग्यता तथा विश्वासके लोगोंको आगे बढ़ने नहीं देते थे वे उनके पास तक नहीं फटकने पाते थे। यही कारण था कि ज्यों ज्यों वे महात्मा आगे बढ़ते थे त्यों त्यों संसार आपसे आप उनके लिए मार्ग बनाता जाता था।

जिन लोगोंको हम किसी काममें बहुत अधिक सफलता प्राप्त करते हुए देखते हैं, उनके सम्बन्धमें हम और तो सैकड़ों हजारों तरहकी बातें सोच जाते हैं, पर वास्तवमें उनकी सफलताका जो मूल कारण होता है उसकी ओर हम ध्यान ही नहीं देते। हम यह तो कहने लगते हैं कि वे बड़े भाग्यवान् हैं, बड़े चालाक हैं, बड़े बड़े लोगों तक बहुत जल्दी पहुँच जाते हैं, उनकी रिश्तेदारी अच्छे अच्छे लोगोंमें हैं, आदि आदि। परन्तु उनमें जो वास्तविक गुण होते हैं और जिनके कारण उन्हें सफलता होती है, उन गुणोंकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता। सफलताके लिए सबसे पहले कोई नई बात निकालनेकी आवश्यकता होती है, फिर उसके सम्बन्धमें निरन्तर विचार करना पड़ता है और तब अन्त तक उसके लिए दृढ़तापूर्वक प्रयत्न करना पड़ता है। वास्तवमें वे अपनी समस्त मानसिक शक्तियाँ उसी कार्यके सम्पादनमें लगा देते हैं और अपनी सफलताका दृढ विश्वास रखते हैं। वे अपने मस्तिष्कमें जिस पदार्थका चित्र बनाते हैं, उसे वे प्रत्यक्ष रूपमें भी गढ़कर दिखला देते हैं। बस यही उनकी सफलताका मुख्य रहस्य होता है और इसीका हमें भी ध्यान रखना चाहिए।

हमें अपनी सफलताका विश्वास तो होना ही चाहिए, पर वह विश्वास अधूरा या अधकचरा नहीं होना चाहिए; बल्कि अधिकसे अधिक जितना दृढ हो सकता हो उतना और हार्दिक होना चाहिए। अर्थात् हमें अपनी सफलतामें कभी तिलमात्र भी सन्देह नही होना चाहिए। सफलतामें जितना ही सन्देह होता है, प्रयत्नमें उतनी ही दुर्बलता आती है और फिर सफलता उतनी ही दूर हो जाती है। दृढ विश्वास ही सफलताकी जान है। भीषण ताप ही धातुओंको गलाता है। इसी प्रकार पूर्ण अध्यवसाय और दृढ विश्वास ही कठिनसे कठिन कार्य सिद्ध करता है। जिस काममें पूरी तरहसे जी नहीं लगता वह कभी पूरा नहीं होता। समाजमें साधारण कोटिके लोगोंकी संख्या इसी लिए अधिक है कि अधिकांश लोग पूरा जी लगाकर कोई काम नहीं करते। उनका निश्चय और प्रयत्न दोनों ही अधूरे और बेदम होते हैं और इसी लिए उनको कभी पूरी और ठीक सफलता नहीं होती।

सफलताके लिए ऐसे दृढ निश्चयकी आवश्यकता है जो कभी पराङ्मुख या पराजित होना जानता ही न हो। ऐसा निश्चय मनुष्यको सदा आगे ही बढ़ाता चलता है और चाहे कितनी ही जोखिम क्यों न सहनी पड़े, उसे कभी पीछे नहीं हटने देता। जब किसी मनुष्यका अपनी शक्ति और योग्यतापर विश्वास नहीं रह जाता, तब वह सफलताके लिए पूरा प्रयत्न करना छोड़ देता है और उसका प्रयत्न अधूरा रह जाता है। उस समय उसकी और तो कोई सहायता की ही नहीं जा सकती; यदि कुछ किया जा सकता है, तो केवल यही कि उसमें फिरसे आत्म-विश्वास उत्पन्न किया जाय और उसके मस्तिष्कसे यह विचार निकाल दिया जाय कि सब काम भाग्य या संयोगसे होते हैं और उसके मनमें यह बात बैठा देनी चाहिए कि सफलता पूरा पूरा

प्रयत्न करनेसे ही होती है; ईश्वरने उसे केवल भाग्य या संयोगपर निर्भर नहीं रक्खा है । उसे यह बात अच्छी तरह समझा देनी चाहिए कि यदि भाग्य कोई चीज है, तो तुम उससे भी बढ़कर कुछ हो; बल्कि तुम स्वयं उस भाग्यके विधाता हो । उसे समझा देना चाहिए कि स्वयं तुममें ही एक ऐसी शक्ति है, जिसका मुकाबला कोई बाहरी शक्ति नहीं कर सकती। बस, जब उस आदमीमें इतनी दृढता, इतना साहस, और इतना विश्वास आ जायगा, तब उसके सब काम आपसे आप होने लग जायँगे और उसके मार्गकी कठिनाइयाँ आपसे आप दूर होने लगेंगी ।

हममें जिस बातकी जितनी ही अधिक लगन होगी, जिस कामके लिए हम जितने ही अधिक तन्मय होंगे, वह बात—वह काम हम उतना ही अधिक, उतना ही उत्तम और उतना ही सहजमें कर सकेंगे । हम नीचेकी ओर देखकर अपने आपको और नीचे गिरा देते हैं । पर हमें सदा ऊपरकी ओर, सदा आगेकी ओर, अपनी दृष्टि रखनी चाहिए। तभी हम आदर्श उच्चता और महत्ता तक पहुँच सकते हैं । जो व्यक्ति दृढतापूर्वक कार्यसिद्धिकी ओर अग्रसर होता है, वह सफलता तक नहीं पहुँचता; बल्कि स्वयं ही मूर्त्तिमान सफलता हो जाता है । फिर उसे बाहरसे सफलता प्राप्त करनेकी नहीं रह जाती । वह स्वयं ही अपने आपमेंसे सफलताका निर्माण कर लेता है। यही सफलताका मूल मन्त्र और यही मुख्य रहस्य है । इसे हृदयंगम कर लेनेपर कभी विफल या निराश होनेकी नौबत नहीं आती। ऐसा व्यक्ति स्वयं एक प्रकाश बन जाता है और जहाँ प्रकाश हो वहाँ अन्धकारका प्रवेश क्योंकर हो सकता है ?

जो काम देखनेमें असम्भव या बहुत कठिन जान पड़ता हो, यदि वही काम कोई आदमी साहसपूर्वक करने लग जाय और साथ ही उसे

अपनी सफलताका पूर्ण निश्चय भी हो, तो इससे यही सिद्ध होता है कि उस आदमीमें अवश्य कार्य करनेका कोई बहुत बड़ा गुण है और वह काम करनेके योग्य है। और काम करनेके लिए इसी गुणकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है। जिसमें यह गुण होगा, वह अन्यान्य बड़े बड़े गुणोंके न होनेपर भी कठिनसे कठिन काम कर ले जायगा। परन्तु यदि उसमें यही मूल गुण न होगा, तो फिर चाहे उसमें और कितने ही बड़े गुण क्यो न हों पर प्रायः उसे विफलमनोरथ ही होना पड़ेगा। वह आत्म-विश्वास ही है, जो मनुष्यमें ईश्वरीय गुण और ईश्वरीय शक्ति उत्पन्न करता है। अपने आपमें सामर्थ्य और बल आदिका अनुभव करना मानो अपने आपमें ईश्वरीय शक्तिका अनुभव करना है और जब मनुष्यमें ईश्वरीय शक्ति आ जाय, तो फिर उसके लिए कोई कार्य असम्भव नहीं रह जाता।

जिस कोलम्बसने अमेरिकाका पता लगाया था, वह आत्म-विश्वासकी मानो प्रत्यक्ष मूर्ति था। स्पेनके राजमन्त्री उसकी हँसी उड़ाया करते थे और उसके विचारों तथा बातोंमें उन्हें पागलपनका भान होता था। यदि वह उन लोगोंके हँसी उड़ानेपर ध्यान देता तो कमसे कम उसे तो अमेरिकाका पता लगानेका कभी सौभाग्य प्राप्त न होता। फिर उसके बाद और कोई चाहे पता लगाता या न लगाता। पर नहीं, वह अपनी धुनका पक्का था और उसे अपने आपपर पूरा पूरा भरोसा था। वह अच्छी तरह जानता था कि मैं जो कुछ सोचता या समझता हूँ, वह बहुत ठीक है और उसे मैं पूरा कर दिखलाऊँगा। वह एक छोटेसे जहाजपर सवार होकर अज्ञात समुद्रमें चल पड़ा। उसके साथी मल्लाहोंने उसका बहुत विरोध किया और घर लौट चलनेके लिए बहुत ज़ोर दिया; परन्तु वह उन लोगोंकी बातोंमें नहीं आया। वह एक खास

कामके लिए घरसे निकला था। वह समझता था कि मैं यह काम अवश्य करूँगा और इसी लिए वह बिना काम किए घर नहीं लौट सकता था। मल्लाहों तथा दूसरे साथियोंने विद्रोह किया और उसे चुपचाप उठाकर समुद्रमें फेंक देने तकका विचार किया; परन्तु वह बराबर आगे बढ़ता गया और नित्य प्रति अपनी डायरीमें यही लिखता गया कि आज हम अपने रास्तेपर पश्चिमकी ओर बढ़े और अन्तमें उसके इस दृढ निश्चयका जो परिणाम हुआ उससे सारे संसारकी काया पलट गई।

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो इस प्रकारके सैकड़ों हजारों महापुरुष मिलेंगे, जिन्होंने केवल अपने अध्यवसाय, दृढ़ निश्चय और आत्म-विश्वासके भरोसे ही संसारमें असम्भव समझी जानेवाली सैकड़ों हजारों बातोंको सम्भव कर दिखलाया और इस प्रकार सिद्ध कर दिया कि दृढ निश्चय और आत्म-विश्वासके सामने संसारमें कोई बात असम्भव नहीं है। कोई ऐसा आविष्कारक, कोई ऐसा धर्मप्रवर्तक, कोई ऐसा वीर, कोई ऐसा महापुरुष नहीं हुआ जिसमें दृढ निश्चय और आत्म-विश्वास न हो। सच तो यह है कि बिना इन दोनों बातोंके मनुष्यमें महत्त्व आ ही नहीं सकता। वह किसी प्रकार बड़ा बन ही नहीं सकता। यही बातें ऐसी हैं जो अन्तमें मनुष्यको पूर्ण सफल और विजयी बनाकर छोड़ती हैं। वास्तविक बात यह है कि महत्ता तो ईश्वर स्वयं ही हममें भर देता है, पर हम उसपर उचित ध्यान नहीं देते और जबरदस्ती अपने आपमें अयोग्यता और तुच्छता आदिका आरोप करके अयोग्य और तुच्छ बन जाते हैं। परन्तु यदि हम अपने विचारोंको कुछ और प्रशस्त करें, अपनी दृष्टि कुछ और विस्तृत करें, तो अनायास ही हम उन गुणोंसे अलंकृत हो सकते हैं, जो किसी वीर या महापुरुषमें पाए जाते हैं। यदि हम नीचेकी ओर देखना छोड़कर ऊपरकी ओर देखना

आरम्भ करें, तो अवश्य ही उस स्थानपर पहुँच सकते हैं, जहाँ महत्ताके सिवा और कुछ है ही नहीं ।

यदि मनुष्यकी अवनतिका कोई सबसे बड़ा कारण है अथवा हो सकता है, तो वह एक ही कारण है और वह कारण है अपना ठीक ठीक महत्त्व न समझना, अपने आपको स्वयं अपनी नजरोंमें गिरा देना। अपने आपको अयोग्य समझनेसे बढ़कर मूर्खतापूर्ण विचार संसारमें और कोई नहीं हो सकता। क्योंकि जो आदमी खुद ही यह समझता हो कि अमुक कार्य मुझसे नहीं हो सकेगा, उस आदमीसे वह कार्य संसारकी और कोई शक्ति नहीं करा सकती। सबसे पहले आत्म-विश्वासको मार्ग प्रदर्शन करना पड़ता है। तब उसके पीछे पीछे और शक्तियाँ चलती हैं। यदि हम अपने लिए पहलेसे ही बहुत ही संकुचित सीमा निर्धारित कर लें, तो फिर उस सीमासे आगे बढ़नेका हमें और अधिकार ही नहीं रह जाता। इसलिए हमें अपना उद्देश्य अधिकसे अधिक आगे बढ़ा ले जाना चाहिए जिसमें हमें आगे बढ़नेके लिए बराबर स्थान मिलता रहे और कहीं पहुँचकर रुकना न पड़े।

हम यह बात मानते हैं कि किसी व्यक्तिके लिए अपने आपको बहुत बड़ा समझना और अपने मनमें ऊँचीसे ऊँची कल्पनाओंको स्थान देना बहुत ही कठिन है। परन्तु उससे भी बढ़कर कठिनता तो यह है कि बिना ऐसा किए वह कभी महान् वीर और विजयी हो ही नहीं सकता। मनुष्य जबतक ऊँची बातोंकी कल्पना न करे और उन कल्पनाओंको कार्य रूपमें परिणत करनेके लिए अपनी योग्यता और बलपर पूरा पूरा भरोसा न रक्खे, तब तक वह आगे बढ़ ही नहीं सकता। सबसे पहले स्वयं उच्चाकांक्षी होना ही योग्यताका एक बहुत बड़ा प्रमाण है और यदि साथमें यह भी विश्वास हो कि हम अपनी आकांक्षा अवश्य

पूरी कर लेंगे, तो फिर उसकी योग्यतामें और किसी बातकी कसर ही नहीं रह जाती। जिस परमात्माने हममें उच्चाकांक्षाएँ उत्पन्न की हैं, उसने साथ ही उसकी पूर्त्तिके साधन भी हममें रख दिए हैं। उसने हमें व्यर्थ इधर उधर टक्करें मारनेके लिए नहीं पैदा किया है; बल्कि किसी विशेष उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिए उत्पन्न किया है। अतः हमें सदा यह विश्वास रखना चाहिए कि हममें उस उद्देश्यकी पूर्त्तिका सामर्थ्य भी अवश्य है। तभी हम वास्तवमें उस उद्देश्यकी पूर्त्ति भी कर सकते हैं और अपना जन्म तथा ईश्वरका प्रयत्न दोनों सफल कर सकते हैं।

हमारे जीवनमें जितनी घटनाएँ होती हैं, अथवा जितने कार्य होते हैं उन सबका कारण स्वयं हममें उपस्थित रहता है। हमींसे सब कार्य निकलते हैं। जहाँ जो चीज पहले पहल दिखलाई पड़ती है वह वहींसे उत्पन्न होती है। हम जिस बातकी कामना करते हैं और जिसके लिए प्रयत्न करते हैं वही काम हमसे होता है। हममें एक ऐसी शक्ति होती है जो उस काम या बातको आपसे आप आकृष्ट करके हम तक पहुँचा देती है। अतः यदि हम किसी व्यक्तिको किसी क्षेत्रमें बहुत अधिक सफलता प्राप्त करते हुए देखें, तो हमें समझ लेना चाहिए कि उसने उसी सफलताका विचार किया है, उसीके लिए प्रयत्न किया है, उसीके लिए अपने आपको योग्य समझा है और उसीके लिए अपने आपको समर्थ बनाया है। उसने जो पद या मर्यादा आदि प्राप्त की है, वह स्वयं उसके विचारों और प्रवृत्तियोंका फल है। इसलिए अपने देशके नवयुवकोंको हम सबसे पहले और सबसे बड़ी यही सलाह देंगे कि अपने आपपर जहाँ तक अधिक हो सके, विश्वास करो। अर्थात् उन्हें सबसे पहले इस बातका पूरा पूरा विश्वास रखना चाहिए कि अपने भाग्यके विधाता और निर्माता हम स्वयं हैं। उन्हें समझ लेना चाहिए कि हममें

एक ऐसी अलौकिक और अपूर्व शक्ति है जिसे यदि हम जाग्रत करके काममें लगा सकें, तो हम जो काम चाहें वही पूरा कर सकते हैं। जब वे यह तत्त्व भली भाँति समझ लेंगे तब उनका जीवन भी श्रेष्ठ हो जायगा और वे सब प्रकारसे सफल तथा सुखी भी हो जायँगे। संसारमें विश्वास ही एक ऐसी चीज है जो हमारे लिए सुख, समृद्धि, सुनाम और सफलताका द्वार खोल सकती है। उसीके द्वारा हममें अजेय बल आ सकता है और उसीके द्वारा हम उन भाग्यवानोंमें परिगणित हो सकते हैं, जिनके स्पर्श मात्रसे मिट्टी भी सोना हो जाती है। उसीके द्वारा मनुष्यमें एक ऐसा तेज उत्पन्न हो जाता है जो उसके चारों ओर पूर्ण प्रकाश करनेके अतिरिक्त उसके मार्गमें पड़नेवाली सब विघ्न बाधाओंको तिनकेकी तरह जला देता है। उसीके द्वारा उसे एक अपूर्व दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है जिसकी सहायतासे वह ऐसी ऐसी चीजें देख सकता है जो किसी और प्रकार दिखाई ही नहीं पड़ सकतीं। जब उस आत्म-विश्वासके कारण हमें वे चीजें दिखलाई पड़ने लगती हैं, तब हम सब बातोंका विचार छोड़कर उन्हें प्राप्त करनेके लिए अग्रसर होने लगते हैं और अन्तमें उन्हें प्राप्त करके ही विश्राम लेते हैं। बल्कि उन चीजोंके प्राप्त हो जानेपर भी हम विश्राम नहीं लेते। क्योंकि उस समय हमें उनकी अपेक्षा और भी अधिक महत्त्वकी तथा सुन्दर चीजें दिखलाई देने लगती हैं और तब हम उन्हें प्राप्त करने लग जाते हैं। तात्पर्य यह कि उस समय हम एक ऐसे मार्गपर पहुँच जाते हैं जिसमें निरन्तर आगे ही बढ़ते जाते हैं और हमारे रुकने या पीछे मुड़नेकी कोई सम्भावना ही नहीं रह जाती। यही जीवनका वास्तविक पथ होता है और प्रत्येक समझदार आदमीको इसीका पथिक बनना चाहिए। इसी पथके पथिकोंने बड़े बड़े पहाड़ काटकर फेंक दिए हैं, बिकट नदियों-

पर पुल बाँधे हैं, समुद्रके नीचे सुरंगें खोदी हैं और शून्य आकाशमें चलनेके लिए भी वैसा ही दृढ मार्ग बनाया है जैसा कि घन पृथ्वीपर मिलता है।

विश्वास कभी धोखा नहीं देता। वह सदा जादूका सा काम करता है। बन्धन, बाधाएँ और सीमाएँ उसके सामने कोई चीज नहीं हैं। आगे बढ़ने और उन्नति करनेका उससे बढ़कर कोई साधन नहीं है। वही संकल्प-सिद्धियोंका दाता है और वही समस्त सौभाग्यका सृष्टा है। उसीका ध्यान करो, उसीका चिन्तन करो और उसीको प्राप्त करनेका प्रयत्न करो। तुम्हारी सारी कामनाएँ पूरी होंगी। तुम्हारा इहलोक भी सुधरेगा और परलोक भी। फिर तुम्हें संसारमें उससे बढ़कर और कोई चीज दिखलाई ही न पड़ेगी।

१२–दृढ़ निश्चय

हम जो काम करना चाहते हैं उसके पूरा करनेमें हमारा दृढ़ निश्चय भी बहुत बड़ा सहायक होता है। किसी कार्यके सम्बन्धमें हमारा निश्चय जितना ही अधिक दृढ़ होता है उसमें सफलता भी उतनी ही अधिक होती है। हमें जो कुछ करना हो, वह बहुत ही दृढ़ता और तत्परताके साथ करना चाहिए। तोपके गोलेको लोहेकी किसी मोटी चादरमें धीरे धीरे धँसानेका प्रयत्न कभी सफल नहीं हो सकता। सफलता तभी होगी जब वह गोला विद्युत्के वेगके साथ चलेगा। उसी दशामें वह सीधा जाकर चादरके पार हो सकेगा। ठीक यही दशा मनुष्यके प्रयत्नोंकी होती है।

प्रायः लोग कहा करते हैं—देखिए यदि ईश्वरने चाहा तो, यदि हमारे भाग्यमें हुआ तो, यदि हो सका तो, आदि आदि। पर वे लोग यह बात नहीं जानते कि उनके कथनमें लगा हुआ यह ' यदि ' सन्दिग्धताका सूचक होता है और इससे वक्ताकी अयोग्यता तथा अकर्मण्यता सूचित होती है। परन्तु यदि कोई दुर्बलहृदय आदमी भी किसी अवसरपर कोई बात दृढ़तापूर्वक कह बैठे, तो इससे उसके हृदयमें एक नया बल आ जायगा और वह अधिक तत्परतापूर्वक काममें लगकर अपेक्षाकृत अधिक सफलता प्राप्त कर सकेगा।

मनुष्यको कभी इस ढंगसे कोई बात नहीं कहनी चाहिए जिसमें किसी प्रकारका सन्देह या अनिश्चय सूचित होता हो। यहाँ तक कि हमें कभी यह भी नहीं कहना चाहिए कि हम कभी न कभी सफल

होंगे। हमें सदा यही कहना चाहिए कि हम मूर्तिमान् सफलता हैं और सफल-मनोरथ होना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। हमें यह नहीं कहना चाहिए कि एक वह समय भी आवेगा जब कि हम प्रसन्न और सुखी होंगे। बल्कि हमें यह कहना चाहिए कि हमारा जन्म ही सदा सुखी और प्रसन्न रहनेके लिए हुआ है।

हम जो कुछ प्राप्त करना चाहते हों, उसपर हमें अपना पूरा पूरा अधिकार समझना चाहिए। हमें समझना चाहिए कि वह चीज हमारे लिए ही बनी है और हमारा जन्म उसीके लिए हुआ है। इस प्रकारके विचारसे हममें एक ऐसा अलौकिक बल आ जायगा जिससे हमारे उद्देश्यकी सिद्धिमें बहुत अधिक सहायता मिलेगी। हमें सदा यही सोचते और समझते रहना चाहिए कि—हम स्वास्थ्य हैं, हम बल हैं, हम सिद्धान्त हैं, हम सत्य हैं, हम न्याय हैं, हम सौन्दर्य हैं। क्योंकि हम इन्हीं सब बातोंके आदर्शपर बनाए गए हैं। इस प्रकारके सोचने और समझनेका परिणाम यह होगा कि हमारे जीवनमें इन सब बातोंका आपसे आप विकास होने लगेगा।

बात यह है कि हम जो कुछ अपने सम्बन्धमें सोचते हैं वही बन जाते हैं; उसके अतिरिक्त और कुछ बन ही नहीं सकते। जो लोग धन उपार्जन करनेवाले होते हैं, वे सबेरे उठकर यह नहीं सोचते कि देखो आज न जाने क्या होगा। देखें आज कुछ मिलता है या नहीं। अच्छा, हम प्रयत्न करेंगे, चाहे सफलता हो और चाहे न हो। बल्कि उन्हें इस बातका दृढ़ निश्चय होता है कि हम आज भी अवश्य कुछ उपार्जन करेंगे और नित्यकी अपेक्षा कुछ अधिक ही उपार्जन करेंगे। अपने मनमें इसी बातका दृढ़ निश्चय रखते हुए वे दृढ़तापूर्वक अपने काममें लग जाते हैं

और बिना कुछ उपार्जन किए नहीं रहते। प्रत्येक व्यक्तिको अपने उद्देश्यके सम्बन्धमें सदा इसी प्रकारका विचार रखना चाहिए और केवल विचार ही नहीं रखना चाहिए बल्कि उस विचारपर दृढ़तापूर्वक विश्वास भी रखना चाहिए। क्योंकि बिना विश्वासका और कोरा विचार कुछ भी मूल्य नहीं रखता।

मनुष्यकी उद्देश्यसिद्धिपर इस दृढ़ निश्चयका जो शुभ परिणाम होता है, उससे सब लोग परिचित नहीं होते। परन्तु जो लोग उससे परिचित होते हैं, वे इसके रामबाण होनेमें कभी किसी प्रकारका सन्देह नहीं करते। इस प्रकारका दृढ़ निश्चय मनुष्यकी सोई हुई शक्तियोंको जाग्रत कर देता है और उसे कार्य करनेमें बहुत अधिक समर्थ बना देता है।

इस सम्बन्धमें एक बात और है। वह यह कि हम जो निश्चय करते हैं वह निश्चय केवल मनमें ही न होना चाहिए बल्कि हमें अपने मुँहसे उस निश्चयका उच्चारण भी करना चाहिए। मनमें तो दिन रातमें हजारों बातें सोची जाती हैं। इसलिए केवल मनमें सोची हुई बातोंका हमपर उतना अच्छा और अधिक प्रभाव नहीं पड़ता; परन्तु जिस निश्चयका हम अपने मुँहसे उच्चारण करते हैं उसका हमपर विशेष और स्थायी प्रभाव होता है। बहुधा हमारी सोई हुई शक्तियाँ इसी प्रकार जोरसे उच्चारण किए हुए निश्चयोंके द्वारा ही जाग्रत होती हैं। प्रायः लोगोंका मन दुर्बल हुआ करता है और वह एकाग्र होकर दृढ़तापूर्वक कोई निश्चय नहीं कर सकता। ऐसे मनका निश्चय प्रायः कोई निश्चय नहीं होता। परन्तु यदि उसी निश्चयमें हम मौखिक उच्चारण भी मिला दें, उससे सम्बन्ध रखनेवाले शब्द हमारे मुँहसे निकलकर हमारे कानोंमें

प्रवेश करें, तो हमपर उनका कुछ और ही प्रभाव पड़ता है। उस दशामें उसमें मानो दूना जोर आ जाता है। हम प्रायः देखते हैं कि मामूली तौरपर हम अपने मनमें जो बातें सोचा करते हैं, उन बातोंका हमपर कोई स्थायी प्रभाव नहीं होता। परन्तु यदि वही बातें हम किसी पुस्तकमें पढ़ते हैं तो उनका हमपर बहुत अच्छा और स्थायी प्रभाव होता है। हम चित्र आदि देखकर पहाड़ों, समुद्रों आदि अनेक प्राकृतिक पदार्थोंकी बहुत कुछ कल्पना कर लेते हैं। परन्तु उन कल्पनाओंका हमपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु यदि हम प्रत्यक्ष रूपसे पहाड़ों या समुद्रों आदिको देख लें, तो उनका हमपर एक विशेष और स्थायी प्रभाव होता है। इस प्रकार यदि हम अपने मनमें कोई बात सोच लें, तो उस सोचने मात्रका हमपर कोई विशेष प्रभाव नहीं होता; परन्तु यदि हम उसी सोची हुई बातका मुँहसे उच्चारण करें और उसी बातको फिर अपने कानोंसे सुनें, तो उसका हमपर एक विशेष और स्थायी प्रभाव होता है। उस दशामें उसमें एक विशेष प्रकारकी स्पष्टता, एक विशेष प्रकारका बल आ जाता है जो साधारण रूपसे सोची हुई बातमें कदापि नहीं हो सकता। केवल मनमें सोची हुई बात कार्य रूपमें परिणत नहीं की जा सकती, क्योंकि दिन रातमें हजारों बातें सोची जाती हैं और इसलिए कोई खास कामकी सोची हुई बात भी उन्हीं साधारण बातोंकी कोटिमें आ जाती है; परन्तु यदि वही बात एक या अनेक बार मुँहसे कह भी डाली जाय तो उसका हमपर कुछ और ही प्रभाव होता है। उस दशामें हमारा वह निश्चय बहुत अधिक दृढ़ हो जाता है और हममें उसे कार्य रूपमें परिणत करनेकी एक नई शक्ति आ जाती है। दो चार बार इस बातका अनुभव करके प्रत्येक पाठक इस सिद्धान्तकी सत्यताका निश्चय कर सकता है।

हममें जो दुर्बलताएँ और त्रुटियाँ हैं उनका निवारण और पूर्ति इस क्रियासे बहुत सहजमें हो सकती है। पाश्चात्य देशोंमें बहुत से लोग ऐसे हैं जिन्होंने इस प्रक्रियासे बहुत अधिक लाभ उठाया है। वे मानो अपने आपसे बातें करते हैं और अपने सम्बन्धमें उन्हें जो कुछ कहना होता है वह वे अपने आपसे ही कह लेते हैं। इस प्रकारके आत्मगत कथनका परिणाम वही होता है जो किसी सच्चे मित्र अथवा अच्छे महात्माओंके उपदेशों और परामर्शोंका होता है। इस प्रक्रियासे केवल कामनाएँ ही पूरी नहीं की जाती हैं, बल्कि अपने व्यक्तिगत दोष भी दूर किए जाते हैं। इसलिए इससे हमारी आत्मिक उन्नति भी हो सकती है और नैतिक उन्नति भी।

जब किसीको इस प्रकार अपने आपसे बातें करनी हों, तब उसे जनसमूहसे बहुत दूर किसी ऐसे एकान्त स्थानमें चले जाना चाहिए जहाँ औरोंकी उपस्थितिका अनुभव न हो सके और जहाँ स्वच्छन्दतापूर्वक अपने आपसे बातें की जा सकें। ऐसे स्थानपर पहुँचकर सोचना चाहिए कि हममें कौनसी त्रुटि है अथवा हमारी कार्यसिद्धिमें कौनसी बात बाधक है। यदि हम किसी काममें लगे हों, तो उसके सब अंगोंपर विचार करना चाहिए। तात्पर्य यह कि हमें अपनी जो वर्तमान आवश्यकताएँ प्रतीत होती हों उनपर हमें विचार करना चाहिए और तब उनके सम्बन्धमें अपना कर्तव्य निश्चित करना चाहिए; और जब वह कर्तव्य निश्चित हो जाय, तब हमें अपने आपको जोरसे वह निश्चय कह सुनाना चाहिए। हमें जोरसे और इस प्रकार स्पष्ट शब्दोंमें कहना चाहिए जिसमें वह बात हमें बहुत अच्छी तरह सुनाई दे। हमें कहना चाहिए कि हम भविष्यमें अमुक दोष न करेंगे, हम अमुक प्रकारका व्यवहार या आचरण न करेंगे, हम अमुक कार्य अमुक प्रकारसे करेंगे,

आदि आदि। इस प्रकारके आत्मगत कथनका हमारे आचरण और कार्योंपर इतना अधिक और इतना शुभ परिणाम होगा कि उसे देखकर हमें परम आश्चर्य होगा और हम सदाके लिए समझ लेंगे कि अपने दोषोंके दूर करने और अपने कार्योंमें सफलता प्राप्त करनेका, इससे अच्छा और सुगम और कोई साधन है ही नहीं। इस प्रकार एकान्तमें जोर जोरसे अपने आपको सुनाकर हम जो उपदेश देंगे, जो परामर्श देंगे, वह किसी बड़े महात्मा या साधुके दिए हुए उपदेशों आदिसे कम प्रभावशाली न होगा।

मान लीजिए कि किसी व्यक्तिमें चिड़चिड़ापन बहुत अधिक है और उसके अधिकांश कार्य इसी एक दुर्गुणके कारण नष्ट होते हैं। उसे उचित है कि वह एकान्तमें जाकर नित्य अपने इस दोषपर विचार करे और सोचे कि इससे मेरी कब, कहाँ, और कितनी अधिक हानि हुई है। तब फिर उसे अपने आपसे कहना चाहिए कि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि यह चिड़चिड़ापन ही मेरे सब काम खराब करता है, यह मेरी बहुत बड़ी मानसिक दुर्बलता है। मुझे जो कुछ करना चाहिए, वह मैं इसीके कारण नहीं कर सकता हूँ। इस दोषके कारण लोग मेरी हँसी भी उड़ाते हैं, मुझे चिढ़ाते भी हैं और मुझे बेवकूफ भी बनाते हैं और मेरे सब कार्योंमें बाधक भी होते हैं। इसलिए मुझे इस दोषसे अपना पीछा छुड़ाना चाहिए और जिस प्रकार हो अपने स्वभावका, अपने स्वभावके इस चिड़चिड़ेपनका अन्त करना चाहिए। यद्यपि और बहुतसे साधारण लोगोंकी अपेक्षा मुझमें अनेक गुण अधिक हैं; परन्तु फिर इस एक दुर्गुणके कारण ही मेर सफल होनेमें अनेक बाधाएँ होती हैं। परन्तु अब मैं अपने इस दुर्गुणपर पूर्ण विजय प्राप्त करनेका दृढ़ निश्चय करता हूँ। चाहे जो हो, अब मैं इससे अवश्य अपना पीछा

छुड़ाऊँगा और आजहीसे इसका अन्त करना प्रारम्भ करूँगा, आदि आदि।

यदि कोई व्यक्ति चरित्रभ्रष्ट हो तो उसे अपने आपसे कहना चाहिए कि मेरे शरीर और मेरी आत्माका मेरे अनाचारके कारण बहुत बुरी तरह नाश हो रहा है। इसके कारण मैं अपने समस्त भावी सुखोंका नाश कर रहा हूँ। मैं केवल अपना ही सर्वस्व नष्ट नहीं कर रहा हूँ बल्कि अपनी स्त्री, अपने बाल बच्चों और अपने परिवारके लोगोंका भी बहुत अहित कर रहा हूँ और समाजमें बहुत बुरा आदर्श खड़ा कर रहा हूँ। आजसे मैं शपथ खाता हूँ कि मैं कभी कुमार्गमें प्रवृत्त न होऊँगा और न कभी कोई ऐसा कार्य करूँगा जिसके कारण मैं लोगोंकी नजरोंसे गिर जाऊँ। मैं अपने पिछले अनाचारोंके लिए पश्चात्ताप करता हूँ और भविष्यमें उनसे घृणा करनेका दृढ़ निश्चय करता हूँ। अबतक मैं आदमीयतसे बहुत गिरा रहा हूँ, पर अब मैं अपने आपको सुधारूँगा और अपने आपको चरित्रवान् बनाऊँगा, आदि आदि।

जब कभी एकान्तमें अवसर मिले तब मनुष्यको अपने आपको सुधारने और उन्नत करनेके लिए इसी प्रकार अपने आपसे बातें करनी चाहिए। थोड़े ही दिनोंमें उसे यह देखकर बहुत अधिक आश्चर्य होगा कि इस प्रकार अपने आपसे बातें करनेका उसके चरित्रपर कैसा अच्छा प्रभाव पड़ता है और वह कितनी जल्दी बुरी आदतों और बुरे कामोंको छोड़कर उनसे बिलकुल अलग हो जाता है। इस प्रकारकी बातोंसे थोड़े ही दिनोंमें उस व्यक्तिमें इतना अधिक बल आ जायगा कि वह अपनी सारी दुर्बलताओं और सारे दोषोंका एकदम नाश कर देगा और फिर कभी उनके फेरमें न पड़ेगा।

परन्तु इसके साथ एक बात और है। जब इस प्रकार अपने आपसे बातें की जायँ, तब अपने मनमें इस बातका दृढ निश्चय भी होना चाहिए कि हममें अपने दोषोंपर विजय प्राप्त करनेकी पूरी पूरी सामर्थ्य है और अब हम कभी इन दोषोंके फेरमें न पड़ेंगे। यदि हमारे विश्वासमें कुछ भी कमी होगी, अथवा अपनी योग्यता तथा सामर्थ्यमें कुछ सन्देह होगा तो परिणाम उतना अधिक शुभ न होगा। इसलिए दोषोंपर विजय प्राप्त करनेकी अपनी योग्यतापर पूरा पूरा विश्वास रखना चाहिए। कहना चाहिए कि मेरा जन्म इसलिए नहीं हुआ है कि दोष और दुर्गुण मुझपर प्रभुत्व स्थापित करें। और जब तक मैं अपने दोषों और दुर्गुणोंको दूर न करूँगा तब तक मेरा वास्तविक उद्देश्य कभी सिद्ध न होगा। जब तक मुझमें ये शत्रु रहेंगे, तब तक ये मेरी सारी योग्यताओंका नाश करते रहेंगे और मुझे कभी आगे बढ़नेका अवसर न देंगे। परन्तु अब मैं इन दोषों और दुर्गणोंको अपने आपमें नहीं रखना चाहता और चाहे जैसे होगा मैं इनका समूल नाश करके छोडूँगा। अब मैं कभी बुरी बातोंके पास भी न जाऊँगा और न बुरे आदमियोंके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध रक्खूँगा। मैं मनुष्य हूँ और मुझे वास्तविक अर्थमें मनुष्य बनना चाहिए। अपने पशुताके भावोंको मुझे निकाल बाहर करना चाहिए। मुझमें एक विशेष दैवी शक्ति है जो ऐसी बुरी बातोंसे बहुत घृणा करती है। उसीकी सहायतासे मैं अपने ये सारे दोष दूर करूँगा और अपना चरित्र सदा निर्मल तथा निष्कलंक रक्खूँगा।

यदि इस प्रक्रियाका तुरन्त ही कोई शुभ परिणाम देखनेमें न आवे, तो निराश नहीं होना चाहिए। बराबर दृढ़ निश्चय और विश्वासपूर्वक अपने आपसे बातें करते रहना चाहिए। अन्तमें अवश्य ही मनोरथ

सिद्धि होगी। इच्छाशक्ति तो इस काममें सहायता करेगी ही, पर इच्छाशक्तिकी अपेक्षा दृढ़ निश्चयमें हजार गुना अधिक बल है; और सबसे अधिक बल इस बातमें है कि मनुष्य समझे कि मुझमें एक दैवी अंश है जो सबसे अधिक बलवान् है और जो मुझे अवश्य विजयी करेगा। जब किसी व्यक्तिको अपने अन्दर रहनेवाले दैवी अंशके दर्शन होने लगेंगे, तब वह उसके बल और सहायताका अनुभव करने लगेगा। जब वह अपने अन्दर रहनेवाले ईश्वरीय अंशकी सहायताका विश्वास और भरोसा करने लगेगा, तब मानो वह ईश्वरीय सत्ताके साथ मिलकर एक हो जायगा। उस दशामें संसारकी कोई शक्ति उसके मुकाबलेमें न ठहर सकेगी और वह जिस ओर दृष्टि डालेगा, उसी ओर उसे विजय प्राप्त होगी।

यों देखनेमें तो यह विचार बिलकुल मूर्खतापूर्ण बल्कि पागलोंकासा जान पड़ता है कि कोई आदमी एकान्तमें जाकर जोर जोरसे अपने साथ बातें करे; वह स्वयं ही बोलनेवाला हो और स्वयं ही सुननेवाला। लेकिन यदि अपने दोष दूर करनेके लिए यह प्रक्रिया की जाय, तो इसमें सन्देह नहीं कि इससे बहुत अधिक लाभ उठाया जा सकता है। संसारमें छोटा या बड़ा कोई ऐसा व्यक्तिगत दोष नहीं है, जो इस प्रकार एकान्तमें अपने आपसे बातें करके दूर न किया जा सकता हो। मान लीजिए कि आप बहुत ही शरमीले हैं और चार आदमियोंके सामने जानेमें और उनसे बातचीत करनेमें आपको बहुत लज्जा जान पड़ती है। अब यदि आप एकान्तमें बैठकर अपने आपसे कहने लगें कि यह हमारा बड़ा भारी दोष है और जैसे होगा हम अपना यह दोष दूर करेंगे, तो सचमुच आपका यह दोष बहुत ही शीघ्र दूर हो जायगा। इसी प्रकार और

भी जितने दोष हैं, वे सब दूर किए जा सकते हैं। आवश्यकता है केवल दृढ़ निश्चय और अभ्यासकी।

जब कोई व्यक्ति अपना कोई दोष दूर करनेके लिए अपने आपसे बातें करता हो, उस समय उसे अपने मनमें कभी इस बातका ध्यान नहीं लाना चाहिए कि लोग मुझे देखते होंगे और देखकर हँसते होंगे। उस समय उसे अपने मनमें समझना चाहिए कि मैं किसीसे छोटा नहीं हूँ बल्कि सबके समान हूँ। कोई कारण नहीं है कि कोई मुझपर हँसे। इस प्रकारका विश्वास रखनेसे उसमें अधिक दृढ़ता तथा बल आवेगा और शीघ्र सफलता प्राप्त होगी।

यदि कोई व्यक्ति बराबर अनिश्चयकी अवस्थामें पड़ा रहता हो और जल्दी किसी बातका निश्चय न कर सकता हो, तो उसे उचित है कि वह दृढ़तापूर्वक यह निश्चय कर ले कि अब मैं अपने मनमें किसी प्रकारका सन्देह उत्पन्न होनेका अवसर ही न आने दूँगा और सन्देह आनेसे पूर्व ही कुछ न कुछ दृढ़ निश्चय अवश्य कर लूँगा और उसीके अनुसार कार्य भी आरम्भ कर दूँगा। सदा अनिश्चित दशामें पड़े रहने और कुछ भी न करनेकी अपेक्षा कोई गलती कर बैठना कहीं अच्छा है। इसमें मनुष्य चाहे पहले कुछ भूलें कर बैठे, परन्तु उसमें कर्मण्यता तो आवेगी। फिर कुछ दिनोंमें काम करते करते वह उचित और उपयुक्त निर्णय करना भी सीख लेगा।

मतलब यह कि हममें जो दोष हों उन दोषोंको निकालने और उनके विपरीत गुण स्थापित करनेका प्रयत्न करना चाहिए। यदि किसीमें अपनी योग्यतापर विश्वास न होगा, तो उसमें अपने आपपर विश्वास उत्पन्न हो जायगा। यदि उसमें साहसका अभाव होगा, तो वह साहसी हो जायगा।

आवश्यकता केवल इस बातकी है कि मनुष्य यह बात भली भाँति अपने मनमें समझ ले कि मुझमें एक ईश्वरीय शक्ति है जो मुझे सदा सब कामोंमें विजयी रक्खेगी। सबसे बड़ी कठिनता तो यही है कि लोग वास्तवमें जितने योग्य होते हैं उसकी अपेक्षा अपने आपको कहीं कम योग्य समझते हैं। वे अपनी शक्तियोंकी ठीक ठीक कल्पना नहीं करते। वे जान बूझकर अपनी दृष्टिमें अपना महत्त्व कम कर देते हैं, अपने आपको छोटा बना लेते हैं और स्वयं ही अपने आपको तुच्छ दृष्टिसे देखने लगते हैं। इसका कारण यही है कि वे यह बात नहीं जानते कि प्रत्येक मनुष्यमें एक ईश्वरीय अंश होता है जो उसे सर्वश्रेष्ठ बना सकता है। परन्तु जब मनुष्यको इस बातका ज्ञान हो जाता है तब उसमें एक नई शक्ति आ जाती है। उस दशामें वह अपनी शक्तियोंकी ठीक ठीक कल्पना करने लगता है और कठिनसे कठिन कार्य करनेमें भी समर्थ हो जाता है। प्रत्येक व्यक्तिको सबसे पहले अपनी इसी ईश्वरीय शक्तिका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। यही ज्ञान मनुष्यकी समस्त शक्तियोंको जाग्रत करके कार्य करनेके योग्य बनाता है और उसकी सारी त्रुटियोंको दूर करता है। यदि यह ज्ञान जीवनके आरम्भमें ही प्राप्त हो जाय, तो मनुष्य उससे बहुत अधिक लाभ उठा सकता है। अपने अन्तर्गत ईश्वरीय शक्तिका ठीक ठीक ज्ञान और कल्पना न होनेके कारण ही लाखों करोड़ों आदमी जन्मभर अनेक प्रकारके कष्ट भोगते रहते हैं और अन्तमें अनेक प्रकारकी दुर्दशाएँ भोगकर बड़ी बुरी तरहसे मर जाते हैं। यह सुन्दर मीठे जलकी बढ़िया नदीके किनारे प्यासे मरना नहीं है तो और क्या है? हमें ईश्वरने एक ऐसी खानका मालिक बना दिया है जिसमें सब कुछ मौजूद है। आवश्यकता है केवल उस खानका ज्ञान होनेकी और उसे खोदकर अपनी आवश्यकताके अनुसार चीजें

निकालनेकी। हमें सबसे पहले अपनी आवश्यकताओंका ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और तब उसी ईश्वरीय खानमेंसे वे सब चीजें निकालनी चाहिए। अपने उद्देश या आदर्शकी ओर अपनी सारी शक्तियोंके साथ बढ़ना आरम्भ कर देना चाहिए और कभी किसी दशामें भी पराङ्मुख न होना चाहिए। हमें अपने मनसे नकारात्मक तत्त्व बिलकुल निकाल देना चाहिए और समझ लेना चाहिए कि हम स्वयं ही अपने ईश्वर और स्वयं ही अपने सौभाग्यके निर्माता हैं। जो आदमी ये सब बातें अच्छी तरह समझ लेता है फिर उसे किसी चीजका अभाव नहीं रह जाता। वह सब तरहसे सुखी, सम्पन्न और सफल हो जाता है; और यही जीवनका चरम उद्देश्य है जिसे सिद्ध करनेका सब लोगोंको पूरा पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

१३—मानसिक सूचना।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥

....

स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

—गीता।

जो लोग अपराधी होते हैं वे शरीरसे तो पीछे अपराध करते हैं परन्तु सबसे पहले वे अपने मनसे अपराध करते हैं। पहले वे अपने मानसिक जगतमें किसी अपराधकी बार बार कल्पना करके मानो उस अपराधका अभ्यास करते हैं और तब अन्तमें शरीरद्वारा वह अपराध करते हैं।

न्यूयार्कमें एक ऐसा अपराधी था जिसने वहाँके भिन्न भिन्न जेलोंमें पचीस वर्ष बिताए थे। एक अवसरपर उसने कहा था कि मैंने कभी स्वप्नमें भी अपराधी होनेका विचार नहीं किया था। परन्तु आरम्भसे ही मेरी प्रवृत्ति ऐसे काम करनेकी ओर थी जो दूसरोंको असम्भवसे जान पड़ते हों। जब मैं कभी किसी बहुत बड़े आदमीके मकानपर जाता था, तो मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न होता था कि मैं किसी प्रकार रातके समय इस प्रकार इस मकानमें पहुँच जाऊँ कि जिसमें कोई मुझे देख न सके। जब कई बार इस प्रकारका विचार मेरे मनमें उत्पन्न हुआ, तब अन्तमें एक बार मैंने यह विचार कार्यरूपमें परिणत कर डाला। एक बार रातके समय मैं एक बड़े आदमीके मकानपर पहुँच गया और जब कि सब लोग सोए हुए थे तब मैं बहुत अभिमानपूर्वक हर एक कमरेमें यह सोचता हुआ घूमने लगा कि देखो मैं कितना बड़ा

बहादुर हूँ कि यहाँ तक पहुँच गया। यहाँ किसीको मेरे आनेकी खबर भी नहीं हो रही है और मैं आनन्दसे सारे घरमें घूम रहा हूँ। तबसे मेरा साहस बढ़ गया और मैं प्रायः अवसर देखकर इसी प्रकार लोगोंके मकानोंमें घुसने लगा। जब जब मैं किसी मकानसे निकलता था तब तब मैं यही समझता था कि मैं कोई बहुत बड़ा और बहादुरीका काम करके आ रहा हूँ। मैं उन मकानोंसे कुछ चीजें भी उठा लाया करता था; परन्तु वे चीजें बहूमूल्य होनेके कारण नहीं उठाया करता था बल्कि यह समझ कर उठाया करता था कि मैं कितनी बड़ी जोखिमका काम कर सकता हूँ। उस समय मैं स्वप्नमें भी इस बातका अनुमान नहीं कर सकता था कि मेरा यह काम अनुचित है और चोरीमें गिना जायगा। धीरे धीरे मुझे इस तरहके काम करनेकी आदत पड़ गई और उस आदतसे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया। जब पहले पहल मैं पकड़ा गया तब भी मैं यह नहीं समझ सकता था कि मैं किसी समय बड़ा भारी अपराधी बन जाऊँगा। परन्तु अन्तमें हुआ यही; मैं धीरे धीरे अभ्यस्त अपराधी बन गया !

उक्त घटनासे पता चलता है कि मनमें कोई बुरी कल्पना करना, किसी प्रकारका दुष्ट विचार लाना, कितना अधिक भयंकर और घातक होता है। यदि मनमें एक बार भी कोई बुरा विचार लाया जाय, एक बार भी कोई दुष्ट कल्पना आवे, तो बहुत सम्भव है कि कुछ समयमें वही हमारी आदतमें दाखिल हो जाय। हम मनमें बुरी कल्पनाएँ और बुरे विचार लाते लाते अन्तमें उनके इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि फिर उनसे अपना पीछा किसी प्रकार नहीं छुड़ा सकते।

बड़े बड़े चोरोंकी बातोंसे पता चलता है कि वे लोग चोरी करनेसे बरसों पहले अपने मनमें चोरी करनेके तरह तरहके उपाय सोचा करते

थे। वे मकानोंमें घुसनेके नए नए उपाय सोचा करते थे और उन उपायोंको ऐसे ढंगसे काममें लाना चाहते थे कि जिसमें वे पकड़े न जायँ। मनमें इस प्रकारके चोरीके विचार लाते लाते अन्तमें वे इतने पक्के चोर हो गए कि चोरी उनकी आदतमें दाखिल हो गई और वे इच्छा होनेपर भी इससे अपना पीछा छुड़ानेमें असमर्थ हो गए। उनमेंसे तो बहुतेरे ऐसे थे जो अपने मनमें चोरी करनेके उपाय तो सोचा करते थे, पर कभी चोर बनना नहीं चाहते थे। परन्तु उनके दूषित विचार अन्तमें अपना काम कर ही गए और वे इच्छा न होनेपर भी चोर और बदमाश हो गए। जो लोग और किसी प्रकार किसी बुरे काममें नहीं फँस सकते थे उन्हें इन दूषित विचारोंने ही भीषण अपराधी बना दिया और उनका जीवन बहुत बुरी तरहसे नष्ट कर दिया।

मनुष्यको स्वयं उसीके दूषित विचार अपराधी नहीं बनाते हैं बल्कि औरोंके दूषित विचार भी उसे बहुत कुछ खराब कर देते हैं। यदि किसी साधारण नौकरपर उसका मालिक सन्देह करने लगे, उसे चोर या बदमाश समझने लगे, तो प्रायः वह नौकर विवश होकर चोर या बदमाश बन जाता है। जो लोग यों कभी बेईमानी नहीं करते, उनपर जब बेईमानी करनेका सन्देह किया जाता है तब प्रायः वे समय पाकर बेईमान हो जाते हैं। इसका कारण कदाचित् यही है कि जब किसी आदमीपर चोरी या बेईमानीका सन्देह किया जाता है, तब उसके मनमें चोरी या बेईमानीका जो भाव उत्पन्न होता है वही जड़ पकड़ लेता है और अन्तमें बढ़ता बढ़ता उसे चोर और बेईमान बना देता है। जब तक हमें किसी आदमीके चोर या बेईमान होनेका पूरा पूरा प्रमाण न मिल जाय, तबतक हमें कभी उसपर चोरी या बेईमानीका सन्देह न करना चाहिए। क्योंकि इस प्रकारका सन्देह करना ही उस व्यक्तिके

पक्षमें बहुत अधिक घातक हो जाता है । प्रत्येक व्यक्तिका मन एक बहुत ही पवित्र क्षेत्र होता है। उसमें कोई दूषित विचारका बीज बोनेका हमें कोई अधिकार नहीं है। जिस प्रकार हमें स्वयं अपने मनमें कोई दूषित विचार नहीं लाना चाहिए, उसी प्रकार किसी दूसरेके मनमें भी हमें कोई दूषित भाव या विचार नहीं उत्पन्न करना चाहिए। केवल दूसरोंके सन्देह करनेके ही कारण बहुतसे लोगोंका जीवन बहुत बुरी तरहसे और सदाके लिए नष्ट हो गया है।

बहुतसे लोग अनजानमें या जान बूझकर दूसरोंमें शंका, भय, विफलता, असत्यता आदि अनेक प्रकारके दूषित भावोंका बीजारोपण करते हैं। ये दूषित विचार और लोगोंके मनमें जड़ पकड़ लेते हैं और समय पाकर बहुत ही बुरे फल लाते हैं । इससे सदा प्रसन्न रहनेवाले लोग सशंकित हो जाते हैं, निर्भय रहनेवाले लोग भयभीत हो जाते हैं और सफल-मनोरथ होनेवाले लोग विफल-मनोरथ हो जाते हैं । परन्तु यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो हमें औरोंमें इस प्रकारके बुरे भावोंका संचार करनेका कोई अधिकार नहीं है।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि कोई कोमलमति बालक किसी कारणसे कोई छोटा मोटा अपराध कर बैठता है और उस अपराधके कारण कारागारमें भेज दिया जाता है। वहाँ वह बड़े बड़े चोरों और डाकुओं आदिके साथ रहते रहते स्वयं भी भारी चोर या डाकू बन जाता है। भले आदमियोंके साथ तो उसका कोई सम्बन्ध रह ही नहीं जाता, सिर्फ चोरों और डाकुओंका साथ रह जाता है। फिर भला वह चोर या डाकू न हो तो और क्या हो? उसे न तो अच्छे आदमियोंका संग साथ मिलता है, न अच्छी पुस्तकें पढ़नेको मिलती हैं और न अच्छी

बातें सुननेको मिलती हैं। चारों ओर चोर, बदमाश, डाकू, लुटेरे और उठाईगीरे आदि रहते हैं और उन्हींकी बातें सुननेको मिलती हैं। उनकी बातोंका उसपर स्वभावतः यही परिणाम होता है कि वह भी अन्तमें चोर, डाकू, लुटेरा या उठाईगीरा हो जाता है। यदि वह कारागारमें बन्द करनेकी जगह किसी अच्छे खुले मैदानमें रक्खा जाय, जहाँ उसे अच्छे अच्छे लोगोंका साथ मिले, अच्छी बातें सुननेको और अच्छी पुस्तकें पढ़नेको मिलें, खेती बारी या और कोई अच्छा काम सिखलाया जाय, तो वह कभी चोर या बदमाश नहीं हो सकता; बल्कि एक चतुर और सुयोग्य नागरिक हो सकता है। जो व्यक्ति सारे संसारसे अलग करके कारागारमें बुरे आदमियोंके साथ रक्खा जाता है, वह बहुत ही दुःखी और निरुत्साह हो जाता है और अपने आसपासके लोगोंकी बुरी आदतें सीख लेता है। इसका कारण यही है कि उसके मनमें सदा जो भाव उठते रहते हैं, वही पुष्ट हो जाते हैं और अन्तमें उसके जीवनका मुख्य अंग वन जाते हैं; और ऐसा होना नितान्त स्वाभाविक है।

मनुष्यके जैसे विचार होते हैं वह वैसा ही वन जाता है। ये विचार हमें समाजमें लोगोंसे बातचीत करनेमें, पुस्तकें तथा समाचारपत्र आदि पढ़नेमें तथा इसी प्रकारके और अनेक साधनोंसे प्राप्त होते हैं; और इन्हीं विचारों तथा भावोंसे हमारी प्रवृत्तियाँ तथा हमारा स्वभाव बनता है। यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि कोई अच्छी पुस्तक पढ़ने या अच्छा नाटक देखनेका पाठकों या दर्शकोंपर कैसा अच्छा प्रभाव पड़ता है। यदि अधिक उत्तेजक या दुःखद घटनापूर्ण कोई पुस्तक पढ़ी जाय, तो मन कितना चंचल और दुःखी हो जाता है? युरोप और अमेरिकाके कई बड़े बड़े और नामी चोरों तथा डाकुओं आदिके सम्बन्धमें अनुसन्धान करनेपर पता चला है कि चोरी

और डाके आदिकी ओर उनकी प्रवृत्ति केवल ऐसे उपन्यास पढ़कर अथवा नाटक आदि देखकर ही हुई है जिनमें भीषण डाकों और चोरियों आदिका वर्णन या चित्रण था। बहुतसे लोग केवल जासूसी उपन्यास पढ़कर भी और बहुतसे लोग सिनेमा आदि देखकर भी चोर और डाकू बन गए हैं। इसका कारण यही है कि कोमलमति नवयुवक अनजानमें ही चोरी और डाके आदिके भाव अपने मनमें भरने लग जाते हैं और अन्तमें वे प्रत्यक्ष रूपमें वही काम कर बैठते हैं जो अनेक बार अपने मानसिक क्षेत्रमें किया करते हैं।

समाचारपत्रोंमें हत्याओं और आत्महत्याओं आदिके समाचार पढ़कर लोगोंकी प्रवृत्ति ऐसे ही ऐसे कामोंकी ओर हो जाती है। अमेरिकाके कई अधिकारियोंने कई बार वहाँके समाचारपत्रोंके अधिकारियोंका ध्यान इस बातकी ओर आकृष्ट किया है कि वे आत्महत्याओं आदिके विस्तृत विवरण न प्रकाशित किया करें, क्योंकि उन्हें इस बातके अनेक प्रमाण मिलते रहते हैं कि ऐसे समाचार पढ़कर लोगोंकी प्रवृत्ति आत्महत्या आदिकी ओर होने लगती है। इन सब बातोंका ध्यान रखते हुए तो यही कहना पड़ता है कि बहुतसे लोगोंको कारागारका दंड व्यर्थ ही दिया जाता है। वास्तवमें वह दंड उन लोगोंको दिया जाना चाहिए जो उनके मनमें दूषित विचार करके उन्हें कुमार्गमें प्रवृत्त करते हैं।

हमें सदा इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि औरोंमें अनजानमें अथवा जान बूझकर बुरे भाव भरनेसे बढ़कर भीषण पाप और कोई नहीं है। जिस प्रकार हमें किसी व्यक्तिको मार डालनेका कोई अधिकार नहीं है, उसी प्रकार हमें उसमें बुरे भाव भरनेका भी कोई अधिकार नहीं है। मनमें यदि एक बार कोई अपवित्र भाव आ जाता है, तो फिर

वह सहजमें निकाले नहीं निकल सकता। इसलिए हमें अपने प्रत्येक कार्य और प्रत्येक बातमें इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि उसके द्वारा कोई ऐसा बुरा भाव न उत्पन्न हो, जो स्वयं हमारे जीवनपर अथवा हमारे पार्श्ववर्त्तियोंके जीवनपर किसी प्रकारका बुरा प्रभाव डाले। जब हम कोई सुन्दर महाकाव्य या वीरगाथा पढ़ते हैं, तो हमारे मनमें कितना उत्साह, कितना आनन्द, कितना सद्भाव और कितनी वीरता उत्पन्न होती है? यदि कुरुचिपूर्ण पुस्तकें पढ़नेसे या गन्दी बातें सुननेसे हमारे मनपर इसके विपरीत प्रभाव पड़े तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

सब लोगोंको इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक बालकके मनमें सदा ऐसे ही भाव उत्पन्न किए जायँ, जो उसे प्रसन्न रक्खें, उसे उत्साहित करें, उसे सदाचारी और सुशील बनावें और सब प्रकारसे उसकी आत्मिक तथा नैतिक उन्नति करें। नगरोंमें रहनेवाले बालकोंकी अपेक्षा गाँवोंमें रहनेवाले बालक इसी लिए बलिष्ठ, प्रसन्न और सदाचारी होते हैं कि वे ऐसी परिस्थितिमें रहते हैं जहाँ उनका स्वास्थ्य नष्ट करनेवाली अथवा उनका आचरण भ्रष्ट करनेवाली बातें अपेक्षाकृत बहुत ही कम होती हैं। अनाथालयमें रहनेवाले बालकोंके सम्बन्धमें देखा गया है कि जब वे किसी ऐसे गृहस्थके घर जा पहुँचते हैं जहाँ दिन रात लड़ाई झगड़ा होता रहता है या इसी प्रकारकी और बुरी बातें होती रहती हैं, तब वहाँ उनका पुराना सुन्दर आचरण बिलकुल नष्ट हो जाता है और वे भी दुष्ट, पापी तथा दुराचारी हो जाते हैं। अनाथालयमें रहकर वे जो सद्गुण और सद्भाव उपार्जित करते हैं, वे थोड़े ही दिनोंमें दुष्टोंकी संगतिमें रहनेके कारण सदाके लिए बिलकुल नष्ट हो जाते हैं और फिर उनका किसी प्रकार सुधार नहीं हो सकता।

किसी व्यक्तिके दुष्ट और पापी होनेका मुख्य कारण यही होता है कि उसमें बाल्यावस्थासे ही किसी न किसी प्रकार कुछ दुर्गुण आ जाते हैं, जो समय पाकर भीषण रूप धारण कर लेते हैं और ये दुर्गुण प्रायः घरके लोगोंसे ही प्राप्त किए जाते हैं। जिस गृहस्थीमें सदा घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, कलह, स्वार्थसाधन, छल, कपट और झूठ आदिका साम्राज्य देखनेमें आता हो, उस गृहस्थीके बालक भला कैसे सद्गुणी और सदाचारी हो सकते हैं? गेहूँसे हमेशा गेहूँ और जौसे हमेशा जौ ही पैदा होगा। किसी बालकके सामने सदा झूठ बोलकर हम उसे कभी सत्यवादी नहीं बना सकते। जहाँ ईर्ष्या और द्वेष हो वहाँ प्रेम और सद्भावका कभी प्रवेश नहीं हो सकता। जहाँ लोभ ही लोभ हो वहाँ स्वार्थत्यागका क्या काम? और जहाँ निर्दयता हो वहाँ सहानुभूतिसे क्या मतलब?

बोस्टनके डा० वोरसेस्टरका दृढ विश्वास है कि सूचनाओंके द्वारा बहुत सहजमें दुष्ट बालकोंका चरित्र सुधारा जा सकता है। उनका मत है कि जिस समय बालक सोया हुआ हो, उस समय उसे बहुत धीरे धीरे अच्छे अच्छे उपदेश देने चाहिएँ। उससे कहना चाहिए कि तुम अपने अमुक अमुक दोष छोड़ दो और अपना आचरण अमुक प्रकारसे सुधारो। वे कहते हैं कि सोए हुए बालकोंसे धीरे धीरे जो बात कही जाती है उससे उनकी निद्रा तो भंग नहीं होती; परन्तु जो कुछ उनसे कहा जाता है उसे वे सुन बहुत अच्छी तरह लेते हैं। केवल सुनते ही नहीं, बल्कि समझ भी लेते हैं और उनके अनुसार कार्य भी करते हैं। जो बात उनसे कहना हो, वह बहुत धीरे धीरे, कई बार, कई प्रकारसे और बहुत समझा बुझाकर कहनी चाहिए। वे कहते हैं कि इस क्रियासे मैंने बहुतसे बालकोंकी बुरी आदतें छुड़ाई हैं और उन्हें अच्छे मार्गपर लगाया है। डरनेवाले लड़कोंने डरना छोड़ दिया है,

झूठ बोलनेवाले लड़कोंने झूठ बोलना छोड़ दिया है, क्रोधी बालकोंने क्रोध करना छोड़ दिया है, यहाँ तक कि जो बालक हकलाकर बोला करते थे उन्होंने हकलाना भी छोड़ दिया है। अब इससे अधिक और क्या चाहिए ?

मनुष्य जैसी परिस्थितिमें रहता है, वैसा ही वह हो भी जाता है। हमारे मनमें जो भाव उठते हैं वही मानो हमारे लिए सबसे बड़ी परिस्थिति उत्पन्न करते हैं। इसलिए भावों और विचारोंका हमपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव इतना अधिक और निश्चित होता है कि यदि हम चाहें तो स्वयं अपनी इच्छासे अपने मनमें अनेक उत्तम भाव उत्पन्न करके अनेक प्रकारसे अपना बहुत कुछ लाभ कर सकते हैं, यहाँ तक कि अपना भाग्य भी बदल सकते हैं। यदि हम अपने मनमें दृढतापूर्वक पवित्रताका भाव स्थापित कर रक्खें, तो आसपासके लोगोंके अपवित्र भाव हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। बल्कि यदि हमारी इच्छाशक्ति बलवती हो, तो हम अपने पवित्र भावोंके द्वारा दूसरोंके अपवित्र भाव भी नष्ट कर सकते हैं। यदि हममें सत्य और न्यायकी दृढ धारणा हो, तो हम दूसरोंके असत्य और अन्यायका बहुत सहजमें अन्त कर सकते हैं।

अपने मनमें सुन्दर भाव उत्पन्न करके और दृढ निश्चयपूर्वक हम अपना चरित्र तो सुधार ही सकते हैं, पर साथ ही हम अपने अनेक रोग भी दूर कर सकते हैं। यह मत हमारा नहीं उन्हीं डा० वोरसेस्टरका है। दुखियों और पतितोंके लिए इससे अधिक शुभ संवाद और क्या हो सकता है ? हममें जो ईश्वरीय अंश है, उसे हमें जाग्रत करना चाहिए और उसीसे सब काम लेना चाहिए। कभी कभी ऐसा भी देखा जाता है कि जिस व्यक्तिने अपना आधेसे अधिक जीवन अनेक प्रका-

रके पापों और अनाचारोंमें व्यतीत किया है वही किसी महात्मा, सज्जन मित्र या स्त्रीकी संगतिसे सुधरकर बहुत ही साधु और सच्चरित्र हो जाता है । ऐसी अवस्थामें उसे देखकर लोग प्रायः कहा करते हैं कि अमुक व्यक्तिका उसपर इतना अच्छा प्रभाव पड़ा है कि वह सुधर गया । परन्तु यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो वह प्रभाव कहीं बाहरसे आकर उसपर नहीं पड़ता । स्वयं उसमें एक शक्ति सदासे प्रस्तुत रहती है, जो पहले तो सोई हुई होती है परन्तु जो उपयुक्त अवसर पाते ही जाग्रत हो जाती है और उसे राक्षससे देवता बना देती है ।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपने आपको परम अभागा समझते हैं और जिन्हें और लोग भी अभागा ही समझते हैं । परन्तु यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय, तो जान पड़ेगा कि उन्होंने स्वयं ही अपने आपको परम अभागा बना रक्खा है । यदि वे अपने मनसे अभाग्यका विचार निकाल दें और अपने आपको भाग्यवान् समझ उसीके अनुसार आचरण करने लगें, तो वे शीघ्र ही सचमुच भाग्यवान् हो सकते हैं । अर्थात् उन्हें अपने हृदयसे नाशक विचारोंको निकालकर दूर कर देना चाहिए और उनके स्थानपर अच्छे विचारोंकी स्थापना करनी चाहिए । इसका परिणाम यह होगा कि वह शीघ्र ही सुयोग्य और कर्मठ हो जायगा और भाग्यवानोंकी भाँति सम्पन्न तथा सुखी हो सकेगा ।

विकासवादके प्रसिद्ध आचार्य डार्विन साहबका मत है कि प्रत्येक मानसिक अवस्थाका हमारे शरीरपर कुछ न कुछ परिणाम होता है और हमारी वह मानसिक अवस्था हमारे किसी न किसी अंगपर प्रभाव डालकर उसमें किसी न किसी प्रकारका विकार उत्पन्न करती है । अर्थात् यदि

हम अपने मनमें कोई भाव लावें, तो उसका हमारी आकृति आदिपर भी उसीके अनुसार कुछ प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ यदि हम क्रोध करें, तो हमारे मुँहसे कठोर वाक्य निकलने लगते हैं, आँखें लाल हो जाती हैं, होंठ फड़कने लगते हैं और इसी प्रकारकी दूसरी अनेक बातें होने लगती हैं। इसी प्रकार यदि हम एकाग्रचित्तसे ईश्वर-चिन्तन करने बैठें, तो हमारी आकृति बहुत ही गम्भीर और शान्त हो जाती है। मतलब यह कि हमारे मनकी जैसी अवस्था होती है, वैसी ही हमारी शारीरिक अवस्था भी ही जाती है। दूषित भावोंसे आकृति भी दूषित हो जाती है, और उत्तम भावोंसे आकृति भी सौम्य तथा सुन्दर हो जाती है। यही कारण है कि बहुधा लोग भारी भारी दुष्टोंको देखते ही उनकी आकृतिसे उनकी दुष्ट प्रकृतिका अनुमान कर लेते हैं। इसलिए प्रत्येकको उचित है कि वह अपने मनमें सदा उत्तम भाव रक्खे और दूषित भावों तथा विचारोंको पास भी न फटकने दे।

मनुष्यके मनमें जो भाव उत्पन्न होते हैं, वे आपसे आप भी उत्पन्न होते हैं और असंख्य बाहरी साधनोंसे भी प्राप्त होते हैं। हम दूसरोंकी बातचीत और आचरण आदिसे भी भाव ग्रहण करते हैं और पुस्तकोंसे भी। हम घटनाओंसे भी भाव ग्रहण करते हैं और चित्रोंसे भी। हम अपने मित्रोंसे भी भाव ग्रहण करते हैं और शत्रुओंसे भी। वीरोंसे भी भाव ग्रहण करते हैं और कायरोंसे भी। उनमेंसे बहुतसे भाव अच्छे होते हैं और बहुतसे बुरे; परन्तु वे सब भाव चाहे अच्छे हों या बुरे, हमपर अपना कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य छोड़ जाते हैं। यदि हम अधिक संख्यामें बुरे भाव ग्रहण करते हैं, तो हम भी बुरे हो जाते हैं और यदि अच्छे भाव ग्रहण करते हैं तो अच्छे हो जाते हैं। इसी तरहसे आदमी अच्छे या बुरे बनते हैं।

परन्तु मनुष्योंका अच्छा या बुरा बनना यहीं समाप्त नहीं हो जाता। प्रत्येक मनुष्यमें एक ईश्वरीय अंश होता है जिसे साधारण भाषामें लोग आत्मा, मनोदेवता आदि कहते हैं। हमारी आत्मामें सदैव इतनी शक्ति रहती है कि यदि हम उसकी थोड़ीसी सहायता करें और उसे जाग्रत करके उसके अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न कर दें, तो हम चाहे कितने ही बुरे क्यों न हों बहुत ही सहजमें और बहुत ही शीघ्र सज्जन, सच्चरित्र और सुखी हो सकते हैं। हमारा चरित्र बाहरसे देखनेमें चाहे कितना ही अधिक कलंकित क्यों न जान पड़ता हो; परन्तु फिर भी हमारे अन्दर एक ऐसी शक्ति होती है जो सदा पवित्र और निष्कलंक रहती है और जो हमें भी नए सिरसे निष्कलंक और परम पवित्र बना सकती है। प्रत्येक पतित व्यक्ति यदि चाहे तो इसी शक्तिके द्वारा अपने सब पापोंसे मुक्त होकर सज्जन सच्चरित्र बन सकता है और उसे ऐसा बनना भी चाहिए।

१४—मानसिक चिन्ता

चिन्ता चिता समानास्ति
बिन्दुमात्रं विशेषतः ।

किसीने कहा है कि चिन्ता और चितामें केवल एक बिन्दुका अन्तर है और नहीं तो दोनों बराबर हैं । बल्कि चिताकी अपेक्षा चिन्ता और भी अधिक भयंकर होती है । क्योंकि चिता तो केवल मृत शरीरोंको ही जलाती है, पर चिन्ता जीवित व्यक्तियोंको ही दिन रात जलाया करती है।

एक और विद्वानका मत है कि कुछ लोग ऐसे होते हैं जो तीन प्रकारके कष्टोंसे पीडित रहते हैं । एक तो उन कष्टोंसे जो अबतक उन्हें हुए थे, दूसरे उन कष्टोंसे जो इस समय उन्हें भोगने पड़ते हैं और तीसरे उन कष्टोंसे जिनकी वे भविष्यमें आशा करते हैं । मतलब यह कि इस समय उन्हें जो कष्ट भोगने पड़ते हैं वे तो भोगने ही पड़ते हैं, पर साथ ही वे पिछले तथा भावी कष्टोंका ध्यान करके अपने ऊपर व्यर्थ ही और भी अनेक कष्ट बुला लेते हैं ।

यदि कोई व्यक्ति संसारसे चिन्ताका नाश कर देता, तो वह संसारका इतना अधिक उपकार करता जितना अनेक बड़े बड़े महात्माओं और आविष्कर्ताओं आदिने मिलकर भी न किया होगा । प्रायः सभ्य जातियोंके लोग उन जंगलियोंकी दशापर बहुत दया दिखलाते हैं जो कल्पित देवों और दानवोंके भयसे सदा भयभीत रहते हैं; परन्तु यदि ऐसे लोग स्वयं अपने आसपास रहनेवाले सभ्य लोगोंकी दशापर विचार करें, तो उन्हें वह दशा भी बहुत शोचनीय और दयाके योग्य जान पड़ेगी ।

प्रायः शिक्षित और सभ्य लोग दिन रात अनेक प्रकारकी ऐसी भीषण चिन्ताओंसे ग्रस्त रहते हैं कि उन्हें न तो भोजन ही अच्छा लगता है और न रातको पूरी नींद ही आती है। वह चिन्ता उनके सारे सुखों और सारे आनन्दोंका नाश कर देती है, यहाँ तक कि उनका स्वास्थ्य भी बिलकुल नष्ट कर देती है और उनके जीवनका अधिकांश बहुत ही कष्टपूर्ण बना देती है। यह डाइन चिन्ता जन्मसे मरण तक उनके साथ लगी रहती है और कभी उनका पीछा नहीं छोड़ती। यहाँ तक कि ब्याह शादी तथा आनन्दपूर्ण उत्सवोंके समय भी वह उनका पीछा नहीं छोड़ती। हर जगह, हर मौकेपर, हर घरमें, हर दूकानपर, जहाँ देखो वहाँ, वह अपना विकराल आकार लिए उपस्थित रहती है।

इस चिन्ताके कारण मानव बुद्धिका जो भीषण नाश होता है उसका सहजमें अनुमान नहीं किया जा सकता। इसने बड़े बड़े बुद्धिमानोंको मूर्ख बनाया है, बड़े बड़े वीरोंको कायर कर दिया है, बड़े बड़े उत्साहियोंको निरुत्साह कर दिया है, बड़े बड़े आशावादियोंको निराश कर दिया है और इसी प्रकारकी न जाने कितनी अधिक बुराइयाँ और खराबियाँ की हैं। सृष्टिके आदिसे अब तक मनुष्य जातिकी जितनी अधिक हानि इस चिन्ताके कारण हुई है, उतनी कदाचित् और किसी कारण नहीं हुई है।

यह चिन्ता लोगोंको अनेक प्रकारके पाप और दुष्कर्म करनेके लिए विवश करती है। उन्हें शराबी और नशेबाज बना देती है और उनका ईमान तक बिगाड़ देती है। लोग इसके विकराल स्वरूपसे इतना अधिक घबराते हैं कि वे इससे बचनेके लिए अपनी आत्मा और अपना शरीर तक बेच डालते हैं और संसारमें कोई काम करनेके योग्य नहीं रह जाते। और तमाशा यह है कि इतने पर भी यह दुष्टा उनका पीछा नहीं

छोड़ती। बल्कि यों कहना चाहिए कि वे स्वयं ही इससे अपना पीछा नहीं छुड़ा सकते । इसी चिन्ताके कारण हर साल हजारों आदमी आत्महत्या करते हैं और लाखों पापी तथा अत्याचारी बन जाते हैं। परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी हम लोग चिन्ता करना नहीं छोड़ते, बराबर उसे अपने पीछे लगाए रहते हैं। यदि किसी प्रकार किसी दूसरे लोकसे कोई व्यक्ति इस लोकमें आ सके और वह हम लोगोंकी दशा देखे, तो शायद यही समझेगा कि हम लोग चिन्ताको ही सबसे अधिक प्रिय समझते हैं और कभी उसे अपने हृदयसे अलग करना नहीं चाहते ।

प्रायः सभी लोग यह बात बहुत अच्छी तरह समझते हैं कि जो व्यक्ति अपनी शक्तियोंसे पूरा पूरा लाभ उठाकर सफल और सुखी होना चाहता हो, उसे इस चिन्ता राक्षसीके चंगुलसे निकलकर दूर रहना चाहिए। क्योंकि यही सफलता और सुखकी सबसे बड़ी शत्रु है। परन्तु फिर भी समझमें नहीं आता कि वे क्यों इससे अपने आपको मुक्त नहीं कर पाते। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि वे अनेक भावी आपत्तियोंकी झूठी कल्पना करके सदा चिन्तित रहते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि यह चिन्ता केवल मानसिक शान्ति और शारीरिक बल तथा योग्यता आदिका ही नाश नहीं करती बल्कि स्वयं जीवनका बहुत बड़ा अंश नष्ट कर देती है। परन्तु जब फिर भी वे चिन्ता करते हुए पाए जाते हैं, तो विवश होकर यही कहना पड़ता है कि वे चिन्ताको ही सबसे अधिक चाहते हैं और जान बूझकर उसके फेरमें पड़े रहते हैं। यह चिन्ता हमारे हाथ पैर खूब कसकर बाँध देती है और हमारी दुर्दशाओंको देखकर प्रसन्न होती है। हम परम दुखी हो जाते हैं और अपना सारा जीवन नष्ट कर बैठते हैं; परन्तु फिर भी उससे मुक्त होनेका कोई उपाय नहीं करते ।

हम जानते हैं कि हमारा अमुक नोकर चोर है और जब अवसर पाता है तभी हमारा कुछ न कुछ माल उड़ा ले जाता है। लेकिन फिर भी यदि हम उसे अपने यहाँ नौकर रक्खे रहते हैं तो फिर हम बेवकूफ नहीं हैं तो और क्या हैं ? यही दशा सदा चिन्तित रहनेवालोंकी समझनी चाहिए। हमारे मानसिक गृहमेंसे यह चिन्तारूपी चोर सदा कुछ न कुछ चुराया करता है सदा हमारी कुछ न कुछ हानि करता रहता है; परन्तु फिर भी हम उसे मस्तिष्कसे निकाल बाहर करनेका साहस नहीं करते, यहाँ तक कि उसे निकाल बाहर करनेका कभी विचार भी नहीं करते। घर या दूकानका नौकर यदि चोर होता है, तो वह केवल रुपया पैसा या छोटी मोटी चीजें ही चुराया करता है; परन्तु चिन्ता तो हमारी सारी शक्तियोंका नाश करती है और जो बातें हमारे जीवनको वास्तविक जीवन बना सकती हैं, उन्हीं बातोंके मूलमें कुठाराघात करती है। भला ऐसे भारी शत्रुको दिन रात अपने मस्तिष्कमें स्थान दिए रहना मूर्खता-पूर्ण आत्मघात नहीं तो और क्या है ?

हमें उन जंगलियोंकी दशापर तो बहुत दया आती है जो उपासना तथा पूजन आदिके उद्देश्यसे अपने शरीरके अंग छेदते या काटते हैं अथवा इसी प्रकारके और अनेक कार्य करते हैं जिनसे बहुत अधिक शारीरिक कष्ट होते हैं; परन्तु क्या स्वयं हमारी दशा भी ठीक उन्हीं जंगलियोंकी सी नहीं है ? हम भी तो जान बूझकर नित्य ऐसी क्रियाएँ करते रहते हैं जिनसे हमें बहुत अधिक मानसिक वेदना होती है। हम मानो जबरदस्ती वह वेदना मोल लेते हैं। अभी जिन बातोंके होनेमें हफ्तों महीनों बल्कि बरसोंकी देर होती है, उनके लिए हम आजही-से घोर चिन्ता करने लगते हैं। उनमेंसे बहुतसी बातों तो ऐसी

होती हैं जो कभी प्रत्यक्ष रूपसे घटित ही नहीं होतीं और जिनका अस्तित्व केवल हमारे मस्तिष्कमें ही होता है।

बहुतसी स्त्रियाँ ऐसी होती हैं जो दिन रात अनेक प्रकारकी व्यर्थ चिन्ताएँ किया करती हैं। यदि उनके बच्चे कहीं दो चार दिनके लिए बाहर चले जाते हैं अथवा घंटे दो घंटेके लिए कहीं बाहर खेलनेके लिए निकल जाते हैं, तो फिर वे दम भर भी चैन नहीं लेतीं। उनके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी उलटी सीधी कल्पनाएँ किया करती हैं, उठ उठकर इधर उधर झाँका करती हैं, घरके लोगोंपर बिगड़ा करती हैं और जो आता है उसीसे या तो उनके सम्बन्धमें पूछा करती हैं और या उन्हींका जिक्र किया करती हैं। उन्हें सदा यही भय लगा रहता है कि कहीं मेरे बच्चेको नजर न लग जाय, कहीं वह गिर न पड़े, कहीं गाड़ी घोड़ेके नीचे न आ जाय। यद्यपि वे बच्चे नित्य बाहर जाते और नित्य सकुशल घर लौट आया करते हैं और उनके साथ कभी इस प्रकारकी कोई दुर्घटना नहीं होती; परन्तु फिर भी वे नित्य इसी प्रकारकी चिन्ताएँ करके मानसिक कष्ट भोगा करती हैं। यदि कहींसे कोई तार आ गया तो फिर क्या पूछना है। चाहे वह पढ़ा जाय और चाहे न पढ़ा जाय, चाहे उसमें कैसी ही खबर क्यों न हो; परन्तु वे तारका नाम सुनते ही रोने लगती हैं। बल्कि इसी डरसे वे वह तार किसीसे पढ़ाती भी नहीं कि उसमें किसीकी मृत्युका समाचार होगा। बस इसी प्रकारकी बेसिरपैरकी चिन्ताओंसे वे दिन रात अपने आपको परेशान रखती हैं।

दिनभर व्यर्थकी चिन्ताएँ करनेके कारण हमारी बहुतसी शारीरिक शक्ति यों ही नष्ट हो जाती है और सन्ध्याके समय हम इतने शिथिल हो जाते हैं कि हमारे शरीरमें बिलकुल दम नहीं रह जाता। हम अपनी

इस शिथिलताके अनेक प्रकारके कारणोंकी कल्पना करने लगते हैं और मानो चिन्ताओंपर और अधिक चिन्ताका बोझ लाद लेते हैं। ऐसे ही लोगोंको बुढ़ापा भी बहुत जल्दी आ घेरता है और वे बहुत शीघ्र और समयके पहले दुर्बल तथा असमर्थ हो जाते हैं। ऐसे लोग न तो अपने जीवनमें कोई अधिक परिश्रमका काम करते हैं और न कोई भारी विपत्ति ही सहते हैं। परन्तु फिर भी दिन रात व्यर्थकी बहुत अधिक चिन्ताएँ करते रहनेके कारण वे अपनी शारीरिक शक्तियोंका इतना अधिक नाश कर लेते हैं कि समयसे बहुत पहले वृद्ध, दुर्बल और असमर्थ हो जाते हैं।

विलायतमें एक स्त्री थी जिसने अपने ऊपर आ सकनेवाली और सम्भावित विपत्तियोंकी कल्पना करके उनकी एक बहुत बड़ी सूची तैयार की थी। वह प्रायः उसी सूचीका पारायण किया करती थी और नित्य यही सोचकर चिन्तित रहा करती थी कि आज इनमेंसे अमुक विपत्ति मुझपर आवेगी और आज मुझे अमुक विपत्तिका सामना करना पड़ेगा। बस वह नित्य इसी प्रकारकी चिन्ताएँ किया करती थी। संयोगसे एक बार उसकी वह सूची खो गई और बरसों तक उसका कहीं पता न लगा। कई बरस बाद वह सूची फिर उसे मिल गई। परन्तु उसे बहुत अच्छी तरह देखनेपर भी उसे एक भी ऐसी विपत्ति न दिखाई दी जो इन कई बरसोंके बीचमें उसपर आई हो। मतलब यह कि उसने जितनी विपत्तियोंकी कल्पना की थी, उनमेंसे एक भी वास्तवमें घटित नहीं हुई थी। उन विपत्तियोंका उसके मस्तिष्कके अतिरिक्त और कहीं अस्तित्व न था। वह व्यर्थ ही उनसे डरा करती थी और व्यर्थ ही चिन्तित रहा करती थी। यदि आप भी चाहें तो इसकी परीक्षा करके देख सकते हैं। जितनी विपत्तियों आदिके आनेकी आप सम्भा-

चना करते हों, उन सबकी एक सूची बनाकर रख छोड़िए और कुछ दिनों बाद उसे निकालकर देखिए। उनमें शायद ही बहुत थोड़ीसी ऐसी विपत्तियाँ होंगी, जो वास्तवमें आपपर आई होंगी। शेष सब विपत्तियाँ वास्तविक नहीं बल्कि केवल कल्पित ही होती हैं। किसी बड़े शहरमें जाकर देखिए। आपको सैकड़ों हजारों आदमी इधरसे उधर परेशान और बदहवास घूमते हुए दिखाई देंगे। उनकी आकृतिसे ही ऐसा जान पड़ेगा कि मानो सारे संसारकी चिन्ता उन्हींके सिर आकर पड़ी है। यदि वे रेल गाड़ी या ट्राम गाड़ीमें बैठे होंगे तो बार बार सिर बाहर निकालकर झाँकते हुए दिखाई देंगे और अपना गन्तव्य स्थान सामने न देखकर ऐसी आकृति और चेष्टा करते हुए दिखाई देंगे मानो वे उसकी गतिको और बढ़ाना चाहते हैं। रास्तेमें वे ऐसे बदहवास होकर दौड़ते हुए दिखाई देंगे कि उनके धक्केसे कहीं कोई बालक गिर पड़ेगा तो कहीं किसी गरीबके सिरका बोझा। उनकी हर एक बातमें जल्दबाजी और चिन्ता दिखाई देगी और उनके चेरेपर बल पड़े हुए होंगे। ये सब लक्षण बहुत ही चिन्तापूर्ण और अस्वाभाविक जीवनके हैं। परन्तु हमारा जीवन वास्तवमें इस बुरी तरहसे व्यतीत होनेके लिए नहीं बनाया गया है। उसमें तो एक विशेष प्रकारकी निश्चिन्तता, एक विशेष प्रकारकी स्वाभाविकता, और एक विशेष प्रकारका सौन्दर्य होना चाहिए। परन्तु आजकलके अधिकांश लोगोंके जीवनमें ये बातें नामको भी नहीं पाई जातीं और इसी लिए वे लोग उतना और वैसा काम भी नहीं कर सकते जितना और जैसा काम उन्हें करना चाहिए।

काम करनेसे आज तक कोई नहीं मरा; परन्तु चिन्ताने हजारों लाखों आदमियोंके प्राण ले लिए हैं। कोई काम करनेसे हमारी उतनी अधिक शारीरिक हानि नहीं होती जितनी अधिक उस

कामसे भयभीत होनेमें होती है। प्रत्यक्ष रूपमें वह काम करनेसे पहले हम अपने मस्तिष्कमें हजारों बार उसका अभिनय कर जाते हैं और वह भी साधारण रूपसे नहीं बल्कि ऐसे रूपसे जो हमें बहुत अधिक अप्रिय और कटु जान पड़ता है। इसका परिणाम यही होता है कि जब प्रत्यक्ष काम करनेका अवसर आता है उससे बहुत पहले ही हम अपने आपको इतना अधिक शिथिल कर लेते हैं कि फिर वह काम करनेके योग्य ही नहीं रह जाते।

यह बात तो निश्चित ही है कि जब आदमीका मन ठिकाने नहीं रहता, तब वह कोई काम ठीक तरहसे और पूरा पूरा नहीं कर सकता। किसी कामको आरम्भ करनेसे पहले हमारे मस्तिष्क और शरीरमें पूरा पूरा बल होना चाहिए। यदि हमारा मन ठिकाने नहीं होगा, तो न तो हम कोई बात अच्छी तरह सोच सकेंगे और न समझ सकेंगे। सोचने और समझनेका काम हम अच्छी तरह तभी कर सकेंगे, जब हमारा मस्तिष्क बिलकुल स्वच्छ रहेगा और उसमें चिन्ता आदिका नाम भी न रहेगा। बड़े बड़े वैज्ञानिकों और डाक्टरोंने अनेक प्रकारके अनुसन्धान करके यह सिद्ध किया है कि जो लोग सदा बहुत अधिक चिन्ता किया करते हैं, उनके रक्तमें एक विशेष प्रकारका विष उत्पन्न हो जाता है जो हमारे सारे शरीरके स्वास्थ्यके लिए बहुत अधिक घातक और हानिकारक होता है। बहुत अधिक चिन्ता करनेका सबसे बुरा परिणाम यह होता है कि मनुष्यकी सोचने समझनेकी सारी शक्ति नष्ट हो जाती है। प्रायः ऐसे आदमी देखनेमें आते हैं जो किसी कारणसे अपना सर्वस्व नष्ट कर देते हैं और तब उनकी दशा बिलकुल पागलोंकीसी हो जाती है। उनकी सोचने समझनेकी शक्ति बिलकुल नष्ट हो जाती है और वे कोई काम करनेके योग्य नहीं रह जाते। इसका मुख्य कारण यही है कि वे दिन

रात चिन्ता करते करते अपने सोचने और समझनेकी शक्तिका बिलकुल नाश कर बैठते हैं और तब उनकी अवस्था दिनपर दिन इतनी अधिक हीन होती जाती है कि उनके फिरसे उठनेकी कोई सम्भावना नहीं रह जाती। उसी दशामें वे निराश होकर उन चिन्ताओंसे मुक्त होनेके लिए मद्यपान करने लगते हैं अथवा और किसी प्रकारका नशा करने लगते हैं। मानो धीरे धीरे सुलगती हुई आग और जोरसे सुलगाई जाने लगती है जो अन्तमें समस्त मानसिक और शारीरिक शक्तियोंको भस्म करके ही छोड़ती है।

जो व्यक्ति अपने जीवनमें कभी कोई काम अच्छी तरह या पूरे तौरसे न कर सका हो, उसे सबसे पहला काम यह करना चाहिए कि वह चिन्तासे अपने आपको मुक्त कर ले। हमारे सुख और उन्नतिमें जितनी अधिक बाधक छोटी छोटी चिन्ताएँ हुआ करती हैं, उतनी अधिक बाधक और कोई बात या चीज नहीं होती। घोड़ा मेहनत करनेसे उतना ज्यादा परेशान नहीं होता जितना मक्खियोंसे परेशान रहता है। मेहनत उसे चिन्तित नहीं करती, पर मक्खियाँ उसे चिन्तित कर देती हैं। फिर गाड़ी खींचनेसे वह उतना नहीं घबराता जितना बार बार रासके खींचे जाने और चाबुकके हिलनेसे घबड़ाता है। इसी तरह आदमी भी बड़े बड़े कामोंसे उतना परेशान नहीं होता जितना व्यर्थकी छोटी मोटी चिन्ताओंसे। इसलिए प्रत्येक समझदार आदमीका यह मुख्य कर्तव्य है कि वह अपने आपको सदा सब प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त रक्खे और व्यर्थकी बातोंकी फिक्र करके अपने आपको परेशान न करे। क्योंकि यही चिन्ता एक ऐसी चीज़ है जो हमारी शक्तियोंका भी नाश करती है और हमारे सुखका भी।

बहुतसे लोग ऐसे हुआ करते हैं जो सदा कुछ न कुछ चिन्ता करते रहनेको ही अपना परम कर्तव्य समझते हैं। इसी तरहकी एक वृद्धा स्त्री थी जिसने अपने डाक्टरसे कहा था कि डाक्टर साहब, अब तो मेरा दिमाग बिलकुल काम नहीं करता। यदि मैं किसी बातकी चिन्ता करना चाहूँ तो चिन्ता ही नहीं कर सकती। बात यह थी कि वह स्त्री सदासे बहुत अधिक चिन्ता करती आई थी और चिन्ता करनेकी ही अभ्यस्त थी; परन्तु चिन्ता करते करते उसका मस्तिष्क इतना अधिक दुर्बल हो गया था कि वह अब चिन्ता करनेके योग्य ही न रह गई थी। परन्तु बहुत दिनोंसे उसे चिन्ता करनेका जो अभ्यास पड़ा हुआ था उसके कारण वह इतनी विवश थी कि अब बिना चिन्ता किए उससे रहा ही न जाता था और चिन्ता करनेमें असमर्थ होना उसे एक प्रकारका रोग जान पड़ता था। यही दशा और भी बहुतसे लोगोंकी हुआ करती है। वे समझते हैं कि सदा किसी न किसी बातकी चिन्ता करते रहना हमारा कर्तव्य है। वे सोचते हैं कि जो आदमी चिन्ता न कर सकता हो वह आदमी ही क्या? ऐसे लोगोंको यह जान रखना चाहिए कि चिन्ता मनुष्यकी शक्तियोंका सबसे अधिक नाश करनेवाली है और उससे हर एक आदमीको जहाँ तक हो सके पीछा छुड़ानेका प्रयत्न करना चाहिए।

बहुतसी आपत्तियाँ ऐसी होती हैं कि यदि पहलेसे उनकी अधिक चिन्ता की जाय, तो यों चाहे वे विपत्तियाँ कभी न आनेको हों; परन्तु केवल चिन्ता करनेके कारण ही वे विपत्तियाँ आपसे आप आ जाती हैं। उदाहरणार्थ रोग है। यदि किसी रोगकी बराबर कुछ समय तक चिन्ता की जाय, तो और कोई कारण न होने पर भी केवल चिन्ताके कारण ही वह रोग हो जाया करता है। यदि आप यह चिन्ता करते

रहें कि कहीं हमें बुखार न आ जाय, तो इस प्रकारकी अधिक चिन्ताका परिणाम यही होगा कि आपको बुखार आ जायगा। भीषण संक्रामक रोगोंके सम्बन्धमें तो यह बात और भी अधिक चरितार्थ होती है। जब कभी प्लेग या हैजा आदि फैलता है, तब बहुतसे लोग पहलेसे केवल उसकी चिन्ता करनेके कारण ही उन रोगोंसे पीड़ित हो जाते हैं और व्यर्थ ही असमयमें मृत्युके मुखमें चले जाते हैं। यह बात इतनी स्पष्ट है कि इसकी अधिक व्याख्या करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती और इसलिए हम अपने पाठकोंसे केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि वे और सब अवसरोंपर तो निश्चिन्त रहा ही करें; परन्तु ऐसे अवसरोंपर वे चिन्तासे मुक्त रहनेका और भी अधिक प्रयत्न किया करें।

एक बार प्रोफेसर गेट्रसने इस सम्बन्धमें स्वयं अपने ऊपर परीक्षा की थी। उन्होंने अपना एक अँगूठा खड़ा किया और दस मिनट तक अपना सारा ध्यान उसीपर जमाए रक्खा। परिणाम यह हुआ कि दस ही मिनटमें वह अँगूठा खूनसे बिलकुल भर गया और उसका ताप दूसरे अँगूठेकी अपेक्षा दो डिग्री बढ़ गया। इससे यह सिद्धान्त स्थिर होता है कि यदि हम अपने किसी विशेष अंगपर अपनी सारी विचार-शक्ति लगा दें और उस अंगके रोगी होनेकी कल्पना करते रहें, तो थोड़े ही समयमें वह अंग उसी रोगसे पीड़ित हो जायगा जिस रोगकी हम उसके सम्बन्धमें कल्पना करते रहेंगे।

बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जो व्यर्थ ही अपने सम्बन्धमें अनेक प्रकारके रोगोंकी कल्पना कर लिया करते हैं। वे समझते हैं कि हमको अमुक रोग है और बहुत दिनों तक किसी रोगकी कल्पना करते रहनेका परिणाम यह होता है कि अन्तमें उनको वही या उससे मिलता जुलता

कोई रोग हो ही जाता है। कुछ न कुछ शिकायत तो प्रायः सभीको बनी ही रहा करती है। किसीको भोजन ठीक तरहसे नहीं पचता, किसीको कभी कब्जकी शिकायत रहती है, कभी किसीका दिमाग ठीक तरहसे काम नहीं करता और कभी किसीको ठीक तरहसे नींद नहीं आती। जो लोग ऐसी छोटी छोटी बातोंकी कभी परवाह नहीं करते, उनकी शिकायत तो प्रायः समय पाकर आपसे आप दूर हो जाया करती है; परन्तु कुछ लोग ऐसे होते हैं जो ऐसी शिकायतोंके कारण दिन रात चिन्तित रहते हैं। वे समझते हैं कि हम बहुत बड़े रोगसे पीड़ित हैं। हमारा अमुक रोग अकेला ही नहीं है, बल्कि वह एक दूसरे रोगके कारण है और इन दोनों रोगोंके मिलनेसे एक तीसरा नया रोग पैदा हो गया है, आदि आदि। यही सोचकर वे कहीं रातका खाना छोड़ देते हैं, तो कहीं बहुत कम और बहुत थोड़ी चीजें खाने लगते हैं। वे समझते हैं कि अमुक पदार्थ तो हमें पच ही नहीं सकता और अमुक पदार्थ खानेसे हमारी यह हानि होगी और अमुक पदार्थ खानेसे हमारा यह रोग बढ़ेगा अथवा यह नया रोग उत्पन्न होगा। ऐसे लोग जन्मभर डाक्टरों, हकीमों और वैद्योंकी चिकित्सा किया करते हैं और फिर भी सदा बीमारके बीमार ही बने रहते हैं। एक कहावत है कि वहमकी दवा लुकमानके भी पास नहीं है। फिर भला वे अच्छे हों तो क्योंकर हों? उन्हें वास्तवमें तो कोई रोग होता ही नहीं। रोग तो उनके मस्तिष्कमें हुआ करता है जो सदा यही समझता है कि हमें अमुक रोग है और अमुक व्याधि है। ऐसी समझका तो कोई इलाज हो ही नहीं सकता, इसलिए वे कुछ समयमें सचमुच भारी रोगी हो जाते हैं और फिर कभी किसी प्रकार अच्छे हो ही नहीं सकते। परन्तु यदि ऐसे लोग किसी प्रकार व्यर्थकी चिन्ताओंसे अपना पीछा छुड़ाकर सदा प्रसन्न

रहना सीख सकें, आहार विहार आदि ठीक तरहसे करने लगें, खुली हवामें रहने लगें तो उनके सब रोग बहुत सहजमें दूर हो सकते हैं।

चिन्ताका हमारी पाचन-शक्तिपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है और जब पाचन-शक्ति अपना काम ठीक तरहसे नहीं करती, तो फिर शरीरके और सब अंग भी कुछ न कुछ दूषित और शिथिल हो जाते हैं। अधिक चिन्ता करनेसे आदमीके बाल भी बहुत जल्दी और समयसे बहुत पहले सफेद हो जाते हैं, बल्कि बहुधा बिलकुल झड़ जाते हैं। एक और प्रभाव यह होता है कि चेहरेपर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और आदमी थोड़ी अवस्थामें ही अधिक बुड्ढा जान पड़ने लगता है। चिन्ताके कारण मनुष्य केवल अपने आपको बुड्ढा समझने ही नहीं लग जाता बल्कि वह सचमुच बुड्ढा हो जाता है। सब प्रकारकी चिन्ताओंसे अधिक निकृष्ट चिन्ता वह होती है, जो किसी कार्यमें विफल होनेके कारण होती है। उससे मनुष्यकी भावी उच्चाकांक्षाओंका नाश हो जाता है, आगे कार्य करनेके लिए उत्साह नहीं रह जाता और वह समस्त उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है जिसके लिए मनुष्य चिन्ता करता है। अतः किसी उद्योगमें विफल होनेपर कभी चिन्तित या निराश न होना चाहिए, बल्कि दोबारा नए उत्साहसे उस काममें लग जाना चाहिए और उसमें सफलता प्राप्त करनेके नए उपाय ढूँढ़ निकालने चाहिए। इस प्रकार मनुष्य अनेक हानियोंसे भी बच जाता है और अन्तमें अपना कार्य भी सिद्ध कर लेता है।

बहुतसे लोग ऐसे होते हैं, जो सदा केवल पिछली बातोंका स्मरण कर करके चिन्तित रहा करते हैं। अपने गत जीवनमें उन्हें जितनी कठिनाइयों और विपत्तियोंका सामना करना पड़ा हो, उन सबको वे सदा अपनी दृष्टिके सामने रखते हैं और उन्हींको याद करके सदा दुखी

और चिन्तित रहा करते हैं। उनकी समझमें यह मोटी सी बात नहीं आती कि बीती हुई बातोंके लिए पछतावा करनेसे कुछ भी लाभ नहीं होता। अपनी पिछली भूलों, दोषों, विफलताओं और विपत्तियों आदिका ध्यान करते करते उनकी दृष्टि इतनी संकुचित हो जाती है कि वे सदा पीछेकी ओर ही देखते रह जाते हैं। आगेकी ओर देखनेका उनको न तो कोई अवसर ही मिलता है और न उनकी रुचि ही होती है। उनका भूत जीवन तो पहले ही नष्ट हो चुका हुआ होता है पर अपनी मूर्खताके कारण वे अपना भविष्य भी बुरी तरहसे चौपट कर लेते हैं। उनकी दृष्टि सदा जीवनके अन्धकारपूर्ण अंशपर ही रहती है, उसके प्रकाश-पूर्ण पार्श्वकी ओर देखना वे जानते ही नहीं। यदि ऐसे लोगोंका सारा जीवन दुःखमय ही बना रहे तो इसमें सिवा उनके और किसका दोष है?

— जितने ही अधिक समय तक कोई अप्रिय चित्र हमारे मनमें बना रहता है उतना ही अधिक वह दृढ़ और स्थायी हो जाता है और फिर उसे निकाल बाहर करना उतना ही अधिक कठिन हो जाता है। इस-लिए अप्रिय बातोंका स्मरण जहाँ तक हो सके, तुरन्त ही अपने हृदयसे निकाल बाहर करना चाहिए। व्यर्थकी चिन्ता करनेसे आज तक कभी किसीको कोई लाभ नहीं हुआ और न भविष्यमें कभी कोई लाभ हो सकता है। कोरी चिन्ता करके आज तक कभी कोई अपनी दशा नहीं सुधार सका। हाँ, सैकड़ों हजारों बल्कि लाखों आदमियोंने अपनी दशा और भी अधिक बिगाड़ ली है। इसलिए प्रत्येक समझदार मनुष्यको उचित है कि वह कभी किसी प्रकारकी चिन्ता न किया करे। केवल चिन्ता करनेसे कभी कोई काम पूरा नहीं हो सकता। संसारके सभी काम किसी गुप्त और बहुत बलवती शक्तिके अधीन हुआ करते हैं और उस शक्तिपर हमारा कोई अधिकार नहीं होता। हमारा अधिकार तो

केवल अपने परिश्रम और प्रयत्न पर ही होता है। हम यदि संसारमें कोई काम कर सकते हैं, तो केवल परिश्रम और प्रयत्न करके ही कर सकते हैं। परन्तु जब हम चिन्ता ही चिन्ता करने लगते हैं, तब मानों हम अपनी वह शक्ति ही नष्ट कर देते हैं जिसके द्वारा हम किसी प्रकार सफलता प्राप्त कर सकते हैं। चिन्ता तो हमारी मानसिक शक्तियोंका भी नाश करती है और शारीरिक शक्तियोंका भी।

इन सब बातोंका विचार करते हुए हमें यही उचित है कि हम सदाके लिए व्यर्थकी चिन्ता करना छोड़ दें और सदा प्रसन्न और निश्चिन्त रहनेका अभ्यास डालें। कुछ लोगोंमें यह आदत हुआ करती है कि वे अपने सभी मित्रों और परिचितों आदिसे सदा अपनी विपत्तियों और कष्टों आदिका ही जिक्र करते रहते हैं। यह बात बहुत ही बुरी है और सदाके लिए त्याग देनेके योग्य है। अपनी विपत्तियों आदिको हमें सदाके लिए बिलकुल भूल जाना चाहिए। बार बार जिक्र करते रहनेसे तो उनकी स्मृति ज्योंकी त्यों बनी रहती है। जहाँ तक हो सके सदा इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारा स्वास्थ्य ठीक रहे। क्योंकि अस्वस्थोंकी अपेक्षा स्वस्थ व्यक्ति चिन्ताओंसे शीघ्र मुक्त हो सकते हैं। चिन्ताका अधिक विकास प्रायः अस्वस्थताकी या स्वास्थ्यकी असाधारण अवस्थामें हुआ करता है। यदि हम स्वस्थ होंगे, पवित्रतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत किया करेंगे और अपने विवेकके विरुद्ध कभी कोई काम न करेंगे, तो हमें जल्दी कभी चिन्तित ही न होना पड़ेगा। साथ ही हमें सदा प्रसन्न रहनेका भी अभ्यास रखना चाहिए। जो लोग सदा और सब अवस्थाओंमें प्रसन्न रह सकते हैं, चिन्ता उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। यदि कभी कोई अप्रिय बात हो भी जाती है, तो तुरन्त

उसकी ओरसे अपना ध्यान हटाकर दूसरी ओर लगा लेते हैं और स्वयं निश्चिन्त तथा प्रसन्न रहते हैं।

ज्यों ही अपने सामने कोई चिन्ता या भय दिखलाई दे, त्यों ही हम उनकी ओरसे अपनी दृष्टि हटा लें और अपने मनमें उत्साह, आशा तथा विश्वासका संचार करें। जो बातें हमारी प्रसन्नता और सफलताके लिए बाधक हों, उन्हें अपने पास भी न फटकने देना चाहिए। चिन्ताओंसे बचनेका सबसे अच्छा उपाय यही है कि हम सदा अपने मनमें उसके विरोधी भावको स्थान दिया करें, अर्थात् हम सदा निश्चिन्त और प्रसन्न रहा करें। जहाँ निश्चिन्तता और प्रसन्नता रहती है, वहाँ चिन्ता और दुःखका कभी प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। इसलिए सब लोगोंको सदा प्रसन्न और निश्चिन्त रहना चाहिए। दुःख और चिन्ताको अपने पास न आने देना चाहिए। संसारमें सुखी और सफल-मनोरथ होनेके लिए यही दोनों बातें सबसे अधिक आवश्यक होती हैं।

१५—भय

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कश्चन।

—तैत्तिरीय उपनिषद्, अनु० ९

न बिभेति यदाचार्यं यदा चास्मान्न बिभ्यति।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥

किसीने कहा है कि भय आदमियोंको दूसरोंका गुलाम बना देता है। एक और विद्वानका मत है कि भयसे मनुष्यकी मानसिक, नैतिक और आत्मिक शक्तियोंका नाश हो जाता है, बल्कि उसकी मृत्यु तक हो जाती है।

प्रश्न हो सकता है कि भय क्या है। यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो भय एक मानसिक भ्रमके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। उसमें कोई वास्तविकता है ही नहीं। परन्तु फिर भी हम देखते हैं कि सयाने आदमियोंके लिए भय वही काम करता है जो बच्चोंके लिए भूत करता है। वास्तवमें भूतका कोई अस्तित्व नहीं होता, पर उसका नाम लेते ही बच्चे काँप उठते और रोने लगते हैं। भयका भी वास्तवमें कोई अस्तित्व नहीं होता। परन्तु सयाने लोग उस बिना अस्तित्ववाली चीजसे उतने ही भयभीत रहते हैं जितना कि किसी वास्तविक भीषण पदार्थसे।

भय भी मानव-जीवनका नाश करनेवाला एक बहुत बड़ा और भीषण साधन है। इससे मनुष्यकी समस्त शक्तियोंका नाश हो जाता है। इससे मनुष्यका स्वास्थ्य नष्ट होता है, शारीरिक बल घटता है और मानसिक शक्तियोंका नाश होता है। इससे आशाका नाश होता है, उत्साहका अन्त हो जाता है और मन इतना अशक्त हो जाता है कि वह फिर कोई नई बात सोचने या समझनेके योग्य ही नहीं रह जाता।

भयकी अवस्थामें जो काम किया जाता है, वह कभी ठीक और पूरा नहीं होता। जिस समय मनुष्य भयभीत होता है उस समय वह कभी कोई बड़ा काम कर ही नहीं सकता। भय सदा मनुष्यकी दुर्बलता और कायरताका सूचक होता है। जब आदमी भयभीत हो जाता है, तब वह कठिन अवसर आ पड़नेपर कभी बुद्धिमत्तापूर्वक काम नहीं कर सकता। बात यह होती है कि भयकी दशामें मनुष्य कभी अच्छी तरह सोच विचार ही नहीं सकता।

जब आदमीको अपने विफल-मनोरथ होनेका भय होता है, तब उसका सारा उत्साह नष्ट हो जाता है और उसे अपने सामने भीषण कष्ट या दरिद्रताके दृश्य दिखाई देने लगते हैं। उस दशामें वह मानो कष्ट और दरिद्रताको आपसे आप अपनी ओर आकृष्ट करने लगता है। उसका सारा कारबार नष्ट हो जाता है और वह किसी कामके योग्य नहीं रह जाता। यदि सच पूछिए तो ये सब बातें तो बहुत पीछे होती हैं; परन्तु इन सब बातोंसे पहले एक और बहुत बड़ी बात होती है और वह बात यह है कि उसकी सारी मानसिक शक्तियोंका दिवाला निकल जाता है और उसकी सारी योग्यताएँ तथा सारे गुण जवाब दे देते हैं। परन्तु यदि हम किसी विकट अवसरपर भयभीत न हो जायँ, अपने मनमें उत्साह तथा साहस रक्खें और ठीक तरहसे दूरदर्शितापूर्वक अपना काम करते चलें, तो शायद ही हमें कभी विफल-मनोरथ होना पड़े। परन्तु यदि हम भयभीत हो जायँगे, तो उन समस्त गुणों और शक्तियोंसे हाथ धो बैठेंगे, जिनकी सफलता प्राप्त करनेके लिए परम आवश्यकता होती है।

किसी आनेवाली घटना आदिसे भयभीत होना मानो उसके सामने पराजय स्वीकृत कर लेना है। यदि हम अपने किसी शत्रुको दूरसे

देखते ही उसके सामने अपना सिर झुका देंगे, तो भला हम उसपर कैसे विजय प्राप्त कर सकेंगे! इससे भी अधिक निकृष्ट और नाशक भय वह होता है जो बिना किसी घटना आदिके हुए ही पहलेसे केवल उसकी कल्पना या अनुमान करके ही किया जाता है। बहुतसे लोगोंकी यह आदत हुआ करती है कि वे सदा यही समझकर भयभीत रहा करते हैं कि हमपर अमुक विपत्ति आना चाहती है, हमारी अमुक हानि हुआ चाहती है, हमें अमुक रोग हुआ चाहता है, हमारे परिवारपर अमुक विपत्ति आना चाहती है, आदि आदि। मतलब यह कि वे सदा अनेक प्रकारके बुरे बुरे चित्र बनाकर अपनी दृष्टिके सामने रखा करते हैं और उन्हें देख देखकर डरा करते हैं। वे प्रायः कहा करते हैं कि कोई नहीं कह सकता कि मनुष्यपर कब कौनसी विपत्ति आ जायगी। इसलिए प्रत्येक व्यक्तिको सदा सब प्रकारकी विपत्तियोंके लिए तैयार रहना चाहिए। इस प्रकारकी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शितासे तो ईश्वर ही रक्षा कर सकता है। संसारकी और कोई शक्ति तो इसके भीषण प्रभावसे मनुष्यको नहीं बचा सकती।

किसी आपत्तिके आनेसे पहले ही उसका ध्यान करके डर जानेसे शारीरिक शक्तियोंका जितना अधिक ह्रास होता है, उतना कदाचित् और किसी कारणसे नहीं होता। इसलिए भावी विपत्तियोंसे भयभीत होनेसे बढ़कर मूर्खतापूर्ण और कोई बात नहीं हो सकती। क्यों कि जिन विपत्तियोंसे हम भयभीत होते हैं, वे विपत्तियाँ वास्तवमें तो उस समय उपस्थित होती ही नहीं, उनका अस्तित्व केवल हमारी कल्पनामें होता है और वह कल्पना भी प्रायः बिलकुल निराधार और निर्मूल हुआ करती है। क्योंकि जो विषय प्रस्तुत या उपस्थित ही न हो, वह निराधार और निर्मूल नहीं तो और क्या है। पहलेसे ही किसी बातसे भयभीत

होनेका एक और दुष्परिणाम यह होता है कि जब वह बात वास्तवमें आकर हमारे सामने उपस्थित होती है, तब हमारे पहलेसे ही भयभीत रहनेके कारण उसका परिणाम हमारे लिए और भी अधिक भयंकर हो जाता है। मान लीजिए कि हम पहलेसे ही बुखारसे बहुत डरते हैं और सोचते हैं कि बुखारमें हमें बहुत अधिक कष्ट होता है, इतना अधिक कष्ट होता है कि प्राणान्तसा होने लगता है। साथ ही हम यह भी समझते हैं कि अमुक ऋतुमें अथवा अमुक प्रकारका बुखार बहुत अधिक घातक होता है और उससे आदमी जल्दी बचता ही नहीं। अब यदि हम कभी दैवसंयोगसे उसी ऋतुमें अथवा उसी ज्वरसे पीड़ित हुए, तो हमारा भय अधिक बढ़ जाता है और हम उसका मुकाबला करनेके लिए बिलकुल समर्थ नहीं रह जाते। इस बातका स्वभावतः यही परिणाम होता है कि हमारे लिए वह ज्वर बहुत अधिक घातक सिद्ध होता है और सम्भव है कि हमारे विश्वासके अनुसार ही वह हमारे प्राण भी ले ले।

भयसे मनुष्यकी आयु बहुत अधिक क्षीण हो जाती है। क्यों कि उससे हमारे समस्त अंगोंके कार्योंमें बहुत बड़ी बाधा पहुँचती है और हमारा स्वास्थ्य बहुत खराब हो जाता है। सदा बहुत अधिक भयभीत रहनेवाले लोग समयसे बहुत पहले केवल बुड्ढे ही नहीं हो जाते बल्कि समयसे बहुत पहले मर भी जाते हैं। प्रायः दुर्बल और भावुक मनुष्योंको भय बहुत सताया करता है। ऐसे लोग अपनी कल्पनाके द्वारा किसी विपत्ति या कष्टकी भयंकरता बहुत अधिक बढ़ा लिया करते हैं और समझने लगते हैं कि इसका अधिकसे अधिक जो बुरा परिणाम हो सकता वह सब हमपर हुए बिना न रहेगा। परन्तु जिन लोगोंका मन और शरीर बलवान् हुआ करता है, वे आनेवाली विपत्तियोंकी बहुत

कम चिन्ता किया करते हैं। वे प्रायः उनकी ओरसे लापरवाह रहा करते हैं और सोचते हैं कि जब कोई बात होगी तब देखा जायगा। वे यह भी समझते हैं कि जब वह विपत्ति आवेगी, तब हम अच्छी तरहसे उसका मुकाबला करेंगे। इस प्रकार सोचनेका परिणाम यह होता है कि उनमें विपत्तियों और रोगों आदिको सहने और उनका सामना करनेकी पूरी पूरी शक्ति बनी रहती है। पहले तो जल्दी वह विपत्ति या रोग आता ही नहीं और यदि कभी किसी कारणसे वह आ भी गया, तो वे अच्छी तरह उसका मुकाबला करते हैं और सहजमें उससे पार पा जाते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्तिको अपने मनकी इसी प्रकारकी अवस्था और स्थिति रखनी चाहिए और आनेवाली विपत्तियोंका कभी ध्यान भी न करना चाहिए।

बहुतसे माता पिता इतने मूर्ख होते हैं कि वे अपने छोटे छोटे बच्चोंमें आरम्भसे अनेक प्रकारके भयों और आशंकाओं आदिका संचार करते रहते हैं। सबसे पहले तो वे उन्हें भूत प्रेत आदिसे डराया करते हैं और कहा करते हैं कि देखो अमुक स्थानपर अकेले न जाना, अमुक स्थानपर नंगे सिर न जाना, अमुक स्थानपर हाथमें खानेकी कोई चीज लेकर न जाना, आदि आदि। फिर वे उन्हें यह कह कहकर डराया करते हैं कि अमुक समयमें नंगे न घूमना, अमुक समयमें धूपमें न घूमना, अमुक समयमें छतपर न जाना। वे कहते हैं कि अगर तुम ऐसा करोगे तो हम नहीं जानते और ऐसा करोगे तो तुम जानना। बेचारा अबोध बालक उन लोगोंकी इस प्रकारकी बातोंका और कुछ अर्थ तो जानता या समझता ही नहीं, वह केवल भयभीत होकर रह जाता है। इस प्रकार भयका दुःखदायक बीज बहुत आरम्भसे ही उसके कोमल हृदयमें बो दिया जाता है जिसका भीषण दुष्परिणाम उसे जन्म-

भर सहना पड़ता है। बचपनसे ही उनके सिरपर भयका जो भूत सवार करा दिया जाता है वह फिर जन्मभर उनका पीछा नहीं छोड़ता और सचमुच भूत बनकर उनके साथ लगा रहता है। यह भूत उन्हें कभी सुखी और प्रसन्न नहीं रहने देता। जिस समय माता पिता छोटे छोटे बालकोंको अनेक प्रकारकी बातोंसे भयभीत करते हैं, उस समय वे अपने मनमें तो यही समझते हैं कि हम बालकोंके साथ बड़ा उपकार कर रहे हैं, उनको बहुत अच्छी बातें बतला रहे हैं, उनके भावी जीवनका बहुत हित कर रहे हैं। परन्तु वास्तवमें उनके डरानेका परिणाम इसके बिलकुल विपरीत होता है। बालकके हृदयमें भयका संचार करना मानो किसी जीवित मांसमें जहरीला काँटा चुभाना है। वह जहरीला काँटा स्वयं तो जिस स्थानपर रहता है उस स्थानपर सदा पीड़ा उत्पन्न करता ही रहता है, पर साथ ही उसका विष अन्यान्य अंगोंमें भी संचार कर जाता है। इसलिए बालकोंको कभी किसी बातसे डराना नहीं चाहिए; बल्कि उनको निर्भय और निःशंक बनानेका प्रयत्न करना चाहिए।

जिस बालकको आरम्भसे किसी बातसे डराया न जायगा वह क्या जानेगा कि भय किसे कहते हैं? फिर वह अपना सारा जीवन निर्भय होकर और बहुत सुखसे व्यतीत करेगा। स्वयं प्रकृतिने हमारे लिए कभी भयकी सृष्टि नहीं की है। भय तो हमारे मस्तिष्कसे ही उत्पन्न होता है और उसी भयका हम छोटे बालकों तकमें बहुत आरम्भसे ही संचार कर देते हैं। एक बहुत बड़े डाक्टरका मत है कि बहुतसे छोटे छोटे बच्चे केवल इसी लिए मर जाते हैं कि उनके मनमें किसी न किसी प्रकारके भयका संचार कर दिया जाता है। यदि आरम्भसे ही समझ-

दारीसे काम लिए जाय और बच्चोंको सदा भयभीत होनेसे बचाया जाय, तो बहुतसे बच्चे अकाल मृत्युसे बच सकते हैं।

बच्चोंको बहुत अधिक डरा देना तो बहुत सहज है, पर पीछेसे उनके मनसे वह डर निकालना और शान्त तथा स्वस्थ करना बहुत ही कठिन काम है। मूर्ख माताएँ छोटे बच्चोंको ठीक रास्तेपर लानेका और कोई उपाय तो जानती ही नहीं, रह रहकर बात बातमें उन्हें डराया करती हैं। जहाँ बच्चा जरा भी किसी बातके लिए जिद करने लगता है, किसी बातके लिए मचलता है, या और किसी कारणसे रोने लगता है, वहाँ वे चट उसे डराकर शान्त करनेका प्रयत्न करती हैं। इस क्रियासे बालक चुप तो हो जाता है; परन्तु उसका वह चुप होना उसके बहुत अधिक भयभीत होनेके कारण होता है। यह भय तुरन्त ही बालकके स्वास्थ्यपर अपना भीषण प्रभाव तो डालता ही है; परन्तु इससे उसकी मानसिक अवस्थापर और भी अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है।

डॉक्टर हालकाम्ब कहते हैं कि भय एक ऐसा सूत्र होता है जो यदि जीवनके आरम्भमें आ जाय तो उसके अन्त तक बराबर चला चलता है। हम जन्मसे ही अपने चारों ओर भय तथा आशंका आदि देखते रहते हैं और जो माता हमें जन्म देती तथा हमारा पालन-पोषण करती है, वह भी हमें जन्म देनेसे महीनों बल्कि हफ्तों पहलेसे बहुत ही भयभीत रहती है। इस प्रकार हमारा जन्म ही मानो भयसे आरम्भ होता है। फिर हम अपने माता पिता और घरके बड़े बूढ़ोंसे डरते हैं, अपने शिक्षकों आदिसे डरते हैं, अपने साथियोंसे डरते हैं, भूत प्रेत आदिसे डरते हैं, कायदे कानूनोंसे डरते हैं, सजाओं और जेलोंसे डरते हैं और डाक्टरों तथा चिकित्सकों आदिसे डरते हैं। जब हम सयाने होते हैं

तब हमारा जीवन घोर चिन्तामें बीतता है और यह चिन्ता भी भयका ही एक छोटा मोटा रूप हुआ करता है। अपने काम धन्धोंमें हम विफलताओं आदिसे डरते हैं, अपनी भूलोंसे डरते हैं, अपने शत्रुओंसे डरते हैं, दरिद्रतासे डरते हैं, लोकापवादसे डरते हैं, दुर्घटनाओंसे डरते हैं, रोगोंसे डरते हैं, मृत्युसे डरते हैं और मृत्यु उपरान्त होनेवाली यातनाओं तथा नरक आदिके विचारोंसे डरते हैं। इस प्रकार जन्मसे मरण-पर्यन्त वास्तविक और कल्पित सभी प्रकारके भय हमारे पीछे लगे रहते हैं। ये भय केवल कल्पित ही नहीं हुआ करते, बल्कि गत मानव समाजके मिथ्या विश्वासों और झूठी कल्पनाओं आदिके संकलित और समुच्चयात्मक रूप हुआ करते हैं।

जब कभी किसी बड़े बंकका दिवाला निकल जाता है, तब बहुतसे लोग ऐसे बंकोंमेंसे भी जिनकी अवस्था बहुत अच्छी होती है और जिनका शीघ्र दिवाला निकलनेकी कोई सम्भावना नहीं होती, अपना अपना रुपया निकालनेके लिए दौड़ पड़ते हैं। यह भी हम लोगोंके भयभीत होनेका एक बहुत बड़ा प्रमाण है। इस भयके कारण हम कभी अच्छे अच्छे बंकोंका भी दिवाला निकाल देते हैं और इस प्रकार अकारण ही बहुतोंकी बहुत बड़ी हानि कर बैठते हैं। यद्यपि उस समय भयभीत होनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती; परन्तु फिर भी अपनी आदतसे लाचार होते हैं और व्यर्थ ही डर जाते हैं। दिवाला तो किसी कारणसे एक बंकका निकलता है; परन्तु हम लोग अपनी मूर्खताके कारण उसके साथ साथ और भी कई बंकोंका दिवाला निकाल देते हैं। इस प्रकार थोड़ेसे लोगोंके भयभीत हो जानेके कारण कभी कभी सारे समाजकी बहुत बड़ी हानि हो जाती है। फिर सारे समाजमें इसी तरहकी बातें होने लगती हैं, जिनका प्रभाव अन्यान्य नगरों तथा पेशों

आदिपर भी पड़ता है और उसके परिणामस्वरूप कुछ समय तक समाजपर बराबर विपत्तियोंपर विपत्तियाँ आती रहती हैं।

अब एक और प्रकारके भयको लीजिए। बहुतसे लोगोंको सदा इस बातका भय लगा रहता है कि और लोग हमारे बारेमें क्या सोचते होंगे, क्या समझते होंगे और क्या कहते होंगे। वे अपने जीवनमें पग पगपर यही सोचकर सदा भयभीत रहते हैं। बहुतसे लोग ऐसे होते हैं जो संसारकी और किसी बातसे उतना नहीं डरते जितना दूसरोंके हँसी उड़ानेसे डरते हैं। ऐसे लोग केवल इसी लिए अपनी बहुत बड़ी बड़ी हानियाँ कर बैठते हैं और बहुत कुछ शारीरिक तथा मानसिक कष्ट उठाते हैं कि जिसमें उनको किसी बातपर कोई हँसे नहीं, उनका मजाक न उड़ावे।

अमेरिकाका एक रक्तवर्ण इंडियन था जिसका मित्र एक डाक्टर था। एक बार उस डाक्टरने अपने इंडियन मित्रको अपने यहाँ यों ही कुछ बात चीत करनेके लिए बुलाया। जिस समय वह इंडियन वहाँ पहुँचा उस समय उस डाक्टरके कई ऐसे मित्र वहाँ बैठे हुए थे जो वहाँके पागलखानेके बोर्डके सदस्य थे। उन सदस्योंने यों ही हँसी हँसीमें उस इंडियनसे पूछा कि आपका दिमाग तो दुरुस्त है न? इतना सुनते ही वह इंडियन बेतरह घबराया। उसने अपने मित्रसे पूछा—क्या तुम मुझे पागलखाने भेजना चाहते हो? बस इतना कहते ही उसकी बोली बन्द हो गई, वह बेहोश हो गया और कुछ ही घंटोंके बाद मर गया।

एक बार एक डच चित्रकार एक ऐसे कमरेमें गया जिसमें बहुतसी ठठरियाँ आदि रक्खी हुई थीं। वहाँ वह उन ठठरियोंके चित्र बनानेके लिए

बुलाया गया था। चित्र बनाते बनाते वह थक गया और वहीं थोड़ी देरके लिए सो गया। इतनेमें भीषण भूकम्प आया जिससे वह जाग पड़ा। उस समय भूकम्पके कारण उन ठठरियोंको हिलते हुए देखकर वह इतना भयभीत हुआ कि उससे वहाँ ठहरा न गया और वह एक खिड़कीमेंसे नीचे बाहरकी ओर कूद पड़ा। यद्यपि नीचे कूदनेमें उसे कुछ भी चोट नहीं आई थी; परन्तु फिर भी उन हिलती हुई ठठरियोंको देखकर वह इतना भयभीत हो गया था कि वह थोड़ी ही देर बाद मर गया।

कई बार ऐसा देखा गया है कि युद्ध क्षेत्रमें लड़नेवाले सिपाही बिना गोली गोला लगे केवल भयसे ही मर गए हैं। किसी प्रकार उन्हें यह सन्देह हो गया कि हमें गोली लग गई। यद्यपि वास्तवमें उन्हें गोली बिलकुल नहीं लगी थी; परन्तु फिर भी वे तुरन्त उसी प्रकार मर गए जिस प्रकार लोग गोली लगनेके कारण मर जाते हैं। इस प्रकारकी एक घटना एक बार न्यू ऑर्लियन्समें हुई थी। एक बार एक बहुत हट्टा कट्टा हब्शी अस्पतालमें पहुँचाया गया। जो लोग उसे उठाकर अस्पताल ले गए थे, उन्होंने रास्तेमें उसे यह कहकर बहुत डरा दिया था कि लड़ाईमें तुम्हें जो गोली लगी थी, वह तुम्हारे अन्दर चली गई है जिसके कारण तुम्हारे शरीरके अन्दर अन्दर कहींसे बहुत तेज खून बह रहा है। यद्यपि वह हब्शी शरीरसे बहुत हृष्ट पुष्ट था और उसका रंग बिलकुल काला था तथापि मारे भयके उसका रंग बिलकुल सफेद हो गया। उसके हाथ पैर बिलकुल काँप रहे थे और ऐसा जान पड़ता था कि वह थोड़ी ही देरमें मर जायगा। उसके शरीरमें ऊपरसे कहीं खून निकलता हुआ नहीं दिखलाई देता था। उसे गोली अवश्य लगी थी, क्यों कि उसने अपने पहननेके कोटमें गोलीका छेद देखा था। रास्तेमें लोगोंने

उससे कह दिया था कि गोली तुम्हारे अन्दर पहुँच गई है, जिससे तुम्हारे अन्दर अन्दर बहुत खून बह रहा है। बस, इसी लिए वह बहुत अधिक घबरा गया था और मृतप्राय हो रहा था। परन्तु बहुत अच्छी तरह जाँच करनेपर पता चला कि गोली उसके शरीरके अन्दर नहीं पहुँची है। क्योंकि शरीरके ऊपर गोलीका कहीं कोई निशान नहीं था। बात यह हुई थी कि गोली उसे लगी अवश्य थी; परन्तु उसके बटनके साथ लगकर चिपटी हो गई थी और इसी लिए शरीरमें प्रविष्ट नहीं हुई थी। जब उसका कोट झटकारा गया तब उसमेंसे वह गोली निकल कर जमीन पर गिर पड़ी। अब उस हब्शीको दृढ विश्वास हो गया कि मुझे कहीं गोली नहीं लगी है। वह तुरन्त ही बिलकुल भला चंगा हो गया और मुरदनीके जितने चिह्न उसके शरीरपर प्रकट हुए थे वे सब तुरन्त नष्ट हो गए। वह चट टेबुलपरसे उतर पड़ा और हँसता हुआ अपने घर चला गया। यह वही हब्शी था जो पाँच मिनट पहले बिलकुल मृतकोंकीसी दशाको पहुँच रहा था और जो यदि और कुछ देर तक उसी अवस्थामें पड़ा रहता, तो अवश्य मर गया होता।

नेपोलियन प्रायः ऐसे अवसरोंपर भीषण प्लेगके रोगियोंके पास अस्पतालमें जाया करता था जब कि अच्छे अच्छे डाक्टर भी वहाँ जानेसे डरते थे। वहाँ जाकर वह उन रोगियोंको स्पर्श करता था और उनकी अवस्था देखता था। वह कहा करता था कि जो आदमी प्लेगसे नहीं डरता, वही प्लेगका नाश कर सकता है।

मनुष्यको सुखी और सफल होनेके लिए निर्भय रहना इतना अधिक आवश्यक है कि उसे छोटी अवस्थासे विद्यालयोंमें ही सदा निर्भय रहनेकी शिक्षा दी जानी चाहिए। जिस मनुष्यमें अनेक दोष और त्रुटियाँ हों, उसमें यदि यथेष्ट साहस हो, तो उन दोषों और त्रुटियोंका मार्जन हो

जाता है। परन्तु जो मनुष्य सदा भयभीत रहता है, वह वास्तवमें मनुष्य ही नहीं कहा जा सकता। जहाँ कहीं जरा भी भयभीत होनेकी सम्भावना हो, वहाँ पहलेसे ही अपने मनमें साहस उत्साह और आशा आदिक संचार कर लेना चाहिए। संसारमें कोई ऐसा भय नहीं है जो निर्भयत और साहसके सामने ठहर सके। डाक्टर ड्यूकका मत है कि भयसे पागलपन, लकवा, गंजापन, दाँतोंका गिरना, बालोंका पकना, गर्भपात, तथा अनेक प्रकारके चर्मरोग हो जाते हैं। हमें जिस चीजके खानेसे खाँसी, कब्ज या इसी प्रकारका और कोई रोग हो जाता है हम वह चीज खाना छोड़ देते हैं। इसलिए हमें भयका भी उसी प्रकार परित्याग कर देना चाहिए। क्योंकि इससे भी अनेक प्रकारके रोग होते हैं। उन्हीं डाक्टर ड्यूकका यह भी मत है कि जब किसी समाजमें कोई भीषण संक्रामक रोग फैलता है, तब बहुतसे लोग केवल भयभीत होनेके कारण ही उन रोगोंके शिकार हो जाते हैं। अतः जिस प्रकार हम भीषण संक्रामक रोगोंसे बचनेके लिए सचेत और सतर्क रहते हैं, उसी प्रकार हमें भयभीत होनेसे भी सदा बचते रहना चाहिए। डाक्टर हालकाम्बका मत है कि भय स्वयं ही एक भीषण संक्रामक रोग है। जो मनुष्य बहुत अधिक भयभीत हो जाते हैं, उनके शरीरमें और किसी संक्रामक रोगके कीटाणुओंके प्रविष्ट होनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। भय ही उनके लिए उस संक्रामक रोगका काम कर जाता है। लोग जितने ही अधिक भयभीत होते हैं, उतना ही अधिक कोई संक्रामक रोग समाजमें फैलता है। अभी कुछ दिन हुए रूसमें भीषण रूपसे हैजा फैला था। उस समय अस्पतालोंमें हैजेके ऐसे बहुतसे रोगी लाए जाते थे जिनमें ऊपरसे देखनेसे हैजेके प्रायः सभी लक्षण दिखाई पड़ते थे; परन्तु जब उनकी भली भाँति परीक्षा की जाती थी, तो पता चलता था कि उनके

शरीरमें हैजेके कीटाणुओंका कहीं नाम भी नहीं है और उनका सारा रोग केवल भयजन्य ही है। इसलिए वहाँके अधिकारियोंको एक घोषणा-पत्र निकालकर लोगोंको इस बातके लिए सचेत करना पड़ा था कि लोग व्यर्थ ही भयभीत न हों। वहाँ यह भी देखनेमें आता था कि जिन लोगोंको सचमुच हैजा हो जाता था, वे भी पन्द्रह मिनटके अन्दर ही मर जाते थे। इसका कारण यही था कि वह पहलेसे ही इतने अधिक भयभीत होते थे कि रोगका आक्रमण होते ही, बल्कि यों कहना चाहिए कि उससे बहुत पहले ही, अपनी सारी रोगनिवारिणी शक्ति खो बैठते थे। इसी लिए समझदारोंको यह सिद्धान्त स्थिर करना पड़ा था कि स्वयं हैजेसे तो बहुत ही थोड़े आदमी मरे; परन्तु भयके कारण बहुत अधिक आदमी मर गए।

बहुतसे लोग अपने धार्मिक विश्वासके अनुसार समझा करते हैं कि मृत्युके उपरान्त आत्माको अनेक प्रकारके भीषण कष्ट भोगने पड़ते हैं और उन कल्पित कष्टोंका वर्णन सुनकर वे लोग बहुत पहले यहींसे कष्ट भोगने लग जाते हैं। बहुतसे लोग ज्योतिषियों और भड्डरों आदिकी भविष्यद्वाणियाँ सुनकर ही बहुत चिन्तित तथा भयभीत हो जाते हैं। यदि किसी व्यक्तिसे कहा जाय कि तीस या पैंतीस वर्षकी अवस्थामें तुम्हारा भाई, स्त्री, या लड़का मर जायगा, तो बरसों पहलेसे उसके चित्तकी जो अवस्था होगी उसकी कल्पना करना सहज नहीं है। इस भयके कारण उसके मन तथा शरीरकी क्या दशा होगी, यह ईश्वर ही जाने। इस प्रकारकी बहुतसी भविष्यद्वाणियाँ केवल इसलिए ठीक उतरती हैं कि जिस बातकी कल्पना या अनुमान बहुत दिनों तक बराबर किया जाता है, वह बात प्रायः अपनी मानसिक प्रवृत्तिके कारण ही आपसे आप हो जाया करती है। लार्ड बायरन जब छोटी अवस्थाके

थे तभी उनसे किसीने कह दिया था कि तुम सैंतीस वर्षकी अवस्थामें मर जाओगे। इस अवस्था तक पहुँचनेसे बरसों पहलेसे वे सदा चिन्तित रहा करते थे। अन्तमें जब वे सैंतीस वर्षके हुए, तब अपने उसी विश्वासके कारण बीमार पड़े और तब उन्हें अपनी मृत्यु और भी निश्चित जान पड़ने लगी। अपने इसी विश्वासके कारण वे रोगको सहन करनेमें असमर्थ हो गए और अन्तमें मर भी गए। इसी प्रकारकी और सैकड़ों हजारों बातें बतलाई जा सकती हैं, जिनसे केवल जंगली और अशिक्षित ही नहीं बल्कि सभ्य और शिक्षित लोग भी सदा भय-भीत रहा करते हैं और उस भयके परिणामस्वरूप अनेक प्रकारके कष्ट भोगते हैं। इस प्रकारके मिथ्या विश्वास अशिक्षितोंमें और भी अधिक होते हैं। शिक्षाके प्रचारसे इस प्रकारके मिथ्या विश्वास बहुत कम होते जा रहे हैं और अब शीघ्र ही इनका बिलकुल अन्त हो जाना चाहिए।

यदि मानव समाजमेंसे किसी प्रकार मिथ्या भय और आशंकाएँ आदि निकाल दी जा सकें, तो उसका बहुत बड़ा कल्याण हो और उसकी उन्नतिकी गति बहुत अधिक बढ़ जाय। भयका यह भीषण बन्धन ही मानव समाजकी उन्नति और कल्याणमें बहुत बड़ा बाधक हो रहा है। इससे अनेक प्रकारके कष्ट, अनेक प्रकारकी हानियाँ, अनेक प्रकारकी दुर्घटनाएँ, अनेक प्रकारकी विफलताएँ तथा इसी प्रकारकी और बहुतसी ऐसी बातें होती हैं जो मनुष्योंको बिलकुल दास बनाए रखती हैं। प्रत्येक शिक्षित और समझदार व्यक्तिका यह कर्तव्य है कि वह लोगोंके मनसे इस प्रकारके भय दूर करनेका प्रयत्न करे और सब लोगोंको यह समझावे कि मनुष्य अपने भाग्यका स्वयं ही विधाता है और उसे कभी किसी बातसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है। जो बातें

हमारी सुख समृद्धिमें बाधक होती हैं उन्हें हम स्वयं ही दूर कर सकते हैं। ईश्वर हमपर विपत्तियोंके पहाड़ नहीं गिराता, बल्कि हम स्वयं ही अपने लिए विपत्तियोंको निमन्त्रित करते हैं। ईश्वरने तो हममें एक ऐसी शक्ति उत्पन्न कर दी है, जिससे हम सब प्रकारकी विपत्तियोंका नाश कर सकते हैं और उसी शक्तिके द्वारा हम सब प्रकार सुखी, सम्पन्न तथा सफल-मनोरथ हो सकते हैं।

१६—आत्म-संयम

कामक्रोधौ लोभमोहौ देहे तिष्ठति तस्कराः ।
ज्ञानरत्नापहाराय तस्माज्जाग्रत जाग्रत ॥
बंधुरात्माऽत्मनस्तस्य येनाऽत्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥
सर्वोपायात्तु कामस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः ।
कार्यः श्रेयोऽर्थिना तौ हि श्रेयो घातार्थमुद्यतौ ॥
यश्च नित्यं जितक्रोधो विद्वानुत्तमपूरुषः ।
क्रोधमूलो विनाशो हि प्रजानामिह दृश्यत ॥

श्रीमती ओलिफेण्टका कथन है कि यदि मुझपर यह प्रमाणित कर दो कि तुम अपनी इच्छाओं और विचारोंको अपने वशमें रख सकते हो, उनका दमन कर सकते हो, तो मैं कहूँगी कि तुम सुशिक्षित आदमी हो और यदि तुममें यह बात नहीं है, तो फिर तुम्हारी सारी शिक्षा किसी कामकी नहीं है ।

जो व्यक्ति स्वयं अपने आपपर शासन नहीं कर सकता, वह कभी कोई बड़ा काम नहीं कर सकता । इसी आत्म-संयमके कारण हजारों लाखों ऐसे आदमियोंका जीवन सदाके लिए नष्ट हो जाता है, जो बहुत सुशिक्षित होते हैं, अच्छी अच्छी आकांक्षाएँ रखते हैं और अनेक प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न होते हैं ।

लोग प्रायः जरा जरासी बातपर बहुत गरम हो जाया करते हैं और क्रोधमें आकर अपनी बड़ी बड़ी हानियाँ और बड़े बड़े अपराध कर बैठते हैं । किसी जेलखानेमें जाकर वहाँके कैदियोंसे पूछें, तो उनमेंसे बहुतेरे आपको बहुत पश्चात्ताप करते हुए मिलेंगे । वे कहेंगे कि हमने

अमुक अवसरपर समझदारीसे काम नहीं किया; एक आदमीसे लड़ बैठे, एक लड़केको मार बैठे, उसीका हमें इस समय यह परिणाम भोगना पड़ रहा है। मिजाजकी वह गरमी तो शायद एक मिनट भी नहीं रहती, पर उसका परिणाम महीनों बल्कि बरसों तक भोगना पड़ता है। फिर कोई प्रतिकार नहीं हो सकता और पश्चात्ताप मात्र हाथ रह जाता है। इसी प्रकार बहुतसे लोग जरासा गुस्सेमें आकर सदाके लिए अपनी बड़ी नौकरी या मर्यादा आदि खो बैठते हैं। बरसोंकी बनी बनाई बात दम भरमें बिगाड़ दी जाती है। बहुतसे दूकानदारोंकी दूकान केवल इसलिए नहीं चलती कि उनका स्वभाव बहुत क्रोधी या चिड़चिड़ा होता है। वे अपने ग्राहकोंसे बात बातमें झगड़ बैठते हैं, लोगोंको गालियाँ दे बैठते हैं, या उन्हें मार बैठते हैं। बहुतसे लोग आत्म-संयमके अभावके कारण अपनी वृद्धावस्था बहुत ही कष्टमय बना लेते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि छोटी छोटी बातोंके कारण ही हमारा बहुत नुकसान होता है; परन्तु फिर भी वे अपनी जबान और अपने मिजाजको काबूमें नहीं रख सकते। जब जो मुँहमें आता, तब वही कह देते हैं और इस प्रकार दूसरोंको अप्रसन्न कर देते हैं। वे न तो किसीके साथ रह सकते हैं और न किसीके साथ काम कर सकते हैं।

बहुतसे लोग क्रोध या क्षोभके समय बिलकुल राक्षसोंकासा रूप धारण कर लेते हैं। ऐसे लोग जब क्रुद्ध होते हैं तब अपने सामने जो कुछ पाते हैं उठा उठा कर फेंकने लगते हैं या जो सामने आता है उसीको मार बैठते हैं। यहाँ तक कि जो लोग उन्हें समझा बुझाकर शान्त करना चाहते हैं, उन्हें भी वे गालियाँ देने लगते हैं। ऐसे लोग छोटे छोटे बच्चों और पशुओं आदि तकको मारते मारते बेदम कर देते हैं। उनपर क्रोधका भूत ऐसा सवार रहता है कि उन्हें आगा पीछा या

अच्छा बुरा कुछ भी नहीं दिखाई देता। ऐसे लोग गुस्सा उतर जानेके बहुत देर बाद तक भी बिलकुल बेसुध और बेकामसे रहते हैं। उस समय वे न तो कुछ सोच सकते हैं, न कुछ समझ सकते हैं, न कुछ कह सकते हैं और न कुछ कर सकते हैं।

जब आदमीपर गुस्सेका भूत सवार होता है, तब वह कुछ समयके लिए बिलकुल पागलसा हो जाता है। वह अपने आपमें नहीं रह जाता और उसी भूतके वशमें हो जाता है। समझदार वही कहलायगा जो ठीक तरहसे सोच समझकर काम कर सकता हो। पर जो आदमी बिना अच्छा बुरा समझे बूझे कोई काम कर बैठता हो वह पागल नहीं तो और क्या कहा जायगा? ऐसी अवस्था बीत जानेके उपरान्त बहुतसे लोग प्रायः बहुत अधिक पश्चात्ताप भी करते हैं। पर उस समय पछतानेसे क्या होता है? पर तमाशा यह है कि फिर जब वैसा ही प्रसंग आता है तब वह पश्चात्ताप उनके किसी काम नहीं आता और वे फिर ज्योंके त्यों हो जाते हैं।

क्रोध, ईर्ष्या, घृणा आदिने मानव समाजका अब तक जो कुछ अपकार किया है, उसका ठीक ठीक चित्र किसी प्रकार नहीं खींचा जा सकता। लोग किसी जरासी बातके कारण किसीसे बहुत चिढ़ जाते हैं और बरसों उससे बदला लेनेकी चिन्तामें लगे रहते हैं। फिर जब उनको कोई उपयुक्त अवसर मिलता है तो वे अपने उस शत्रुकी जहाँ तक हो सकता है अधिकसे अधिक हानि करते हैं; यहाँ तक कि कभी कभी उसके प्राण भी ले लेते हैं।

बहुत दिनों तक अविश्रान्त शारीरिक श्रम करनेसे भी मनुष्यकी शारीरिक शक्तियोंका जितना अधिक क्षय या नाश नहीं होता उससे कहीं अधिक शक्तिका नाश एक बार बहुत ज्यादा गुस्सा आ जानेसे होता

है और जब वह गुस्सा उतर जाता है तब उस आदमीकी दशा कैसी शोचनीय, कैसी अनुतापदग्ध और कैसी अनुकम्पनीय हो जाती है! तेजसे तेज शराबकी बोतल भी हमारे शरीरकी उतनी अधिक हानि नहीं कर सकती जितनी अधिक हानि एक बारका आया हुआ गुस्सा करता है। यदि हम बरसों तक लगातार बहुत अधिक तमाखू या सिगरेट आदि पीते रहें तो भी हमारी उतनी अधिक शारीरिक हानि न होगी, जितनी ईर्ष्या और द्वेष आदिके कारण होती है। नित्य अफीम खानेसे भी उतनी अधिक हानि नहीं हो सकती जितनी चिढ़ने और कुढ़नेसे हुआ करती है। इस प्रकार हम आत्मसंयमके अभावमें अपनी आयुका अवश्य ही बहुत अधिक क्षय कर लेते हैं।

अमेरिकामें एक ऐसा परिवार था जिसके छोटे बड़े सब आदमी मिलकर लड़ने लग जाया करते थे और ऐसा लड़ते थे कि देखने सुन-नेवाले दंग रह जाते थे। वे सब आपसमें एक दूसरेको खूब नोचते खसोटते थे और कपड़े लत्ते फाड़ डालते थे। उनके चेहरे बिलकुल बदल जाते थे और वे पहचाने नहीं जाते थे। उन्हें देखनेसे ऐसा जान पड़ता था कि मानो बहुतसे शैतान आपसमें लड़ रहे हैं। भला इस प्रकारकी बातोंसे वैमनस्य, विरोध और शत्रुता बढ़नेके अतिरिक्त और क्या नतीजा निकल सकता है? ऐसे ही अवसरोंपर लोग अपने परिवारके किसी आदमीकी हत्या तक कर सकते हैं। यह बात दूसरी है कि लड़ाई शुरू होनेसे दस मिनट पहले चाहे वे उनका बाल तक बाँका न होने देना चाहते हों। जो लोग बहुत अच्छे और सज्जन होते हैं वे भी मारे क्रोधके इतने अन्धे हो जाते हैं कि उन्हें भला बुरा कुछ भी दिखाई नहीं देता। कभी कभी तो ऐसा होता है कि क्रोध आदि भीषण मनोविकार उत्पन्न होनेपर लोग बेहोश हो जाते हैं और दूसरोंकी

हानि करनेसे बहुत पहले स्वयं अपनी ही हानि कर बैठते हैं। कभी कभी हम क्रोध, घृणा, ईर्ष्या आदि करनेके उपरान्त मन ही मन यह सोचकर लज्जित तो अवश्य होते हैं कि हमने बहुत अनुचित काम किया, ऐसा हमें नहीं करना चाहिए। परन्तु ऐसे व्यापारोंसे हमारी जो शारीरिक और मानसिक हानियाँ होती हैं उनकी ओर कभी हमारा ध्यान ही नहीं जाता। हम यही समझते हैं कि क्रोध आता है और चला जाता है; परन्तु यह बात नहीं है। वह आते ही हमारे शारीरिक और मानसिक बलका बहुत भीषण रूपसे नाश करता है और जाते समय हमारे शरीरमें ऐसा विकट विष छोड़ जाता है जिसका परिहार जल्दी किसी प्रकार हो ही नहीं सकता। उस विषसे हमारी जो शारीरिक और मानसिक हानि होती है उसकी किसी प्रकार पूर्त्ति नहीं हो सकती।

जिस समय मनमें कोई ऐसा भीषण मनोविकार उत्पन्न होता है, जिसका हम दमन नहीं कर सकते, उस समय हमारे शारीरिक तत्त्वोंमें कई प्रकारके रासायनिक परिवर्तन होते हैं और उन परिवर्तनोंके कारण अनेक प्रकारके नाशक विष उत्पन्न होते हैं। पर हमारी शक्तियाँ तो सदा मौन रहती हैं, कुछ बोलना चालना तो जानती ही नहीं, इसलिए हमें यह पता ही नहीं चलता कि वे नाशक विष कितने भीषण रूपसे काम करते हैं। हम लोग बहुत दिनोंसे बराबर यही समझते हुए चले आ रहे हैं कि हमें जितने रोग होते हैं वे सब किसी न किसी शारीरिक अव्यवस्थाके कारण होते हैं और उनका नाश केवल औषधों आदिसे होता है। परन्तु यह बात हम लोगोंकी समझमें किसी प्रकार आती ही नहीं कि हमारे रोगोंका हमारी मानसिक अवस्थाओं और विकारोंके साथ भी बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। बल्कि यों कहना चाहिए कि बहुतसे रोग मानसिक विकारोंके कारण ही उत्पन्न होते हैं। बड़े बड़े

वैज्ञानिकोंने परीक्षा करके देखा है कि जब कोई भीषण मनोविकार उत्पन्न होता है तब रक्तमें एक प्रकारका विष उत्पन्न हो जाता है। भय, क्रोध, ईर्ष्या आदिके उपरान्त शरीर जो बहुत अधिक शिथिल हो जाता है उसका कारण यही विष होता है। वे मनोविकार तो सहजमें शान्त हो जाते हैं; पर अपने पीछे जो भीषण विष छोड़ जाते हैं उन्हीं विषोंके कारण हमारी बहुतसी शक्तियोंका नाश हो जाता है और हमारे शरीरमें शैथिल्यका संचार हो जाता है।

जब जब हमारे मनमें क्रोध, ईर्ष्या, भय आदि मनोविकार उत्पन्न होते हैं, तब तब इसी प्रकार हमारी शक्तियोंका नाश होता है और हमारे शरीरमें विषोंका संचार होता है। हमारी सब मानसिक तथा शारीरिक गतियाँ रुककर विपरीत दिशाकी ओर हो जाती हैं। हमारी प्रत्येक शक्ति उस मनोविकारका विरोध करती है; परन्तु हमपर जो भूत सवार होता है वह हमें कुछ सुनने समझने नहीं देता। यदि हम विचारकी दृष्टिसे देखें तो शीघ्र ही हमें पता चल जायगा कि भीषण मनोविकारोंका हमारे शरीर तथा मनपर कितना नाशक प्रभाव होता है और उस दशामें हम फिर कभी क्रोध, ईर्ष्या द्वेष या घृणा आदि करनेका साहस भी न करेंगे। समाजमें अधिकांश लोग जो अस्वस्थ या अधिक दुर्बल दिखाई देते हैं सो इसका कारण यही है कि वे भीषण मनोविकारों आदिके कारण धीरे धीरे अपने शरीरमें अनेक प्रकारके बहुत अधिक विष संचित कर लेते हैं जिनसे उनका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। प्रत्यक्षमें उन्हें अपने अस्वस्थ होनेका कोई कारण नहीं दिखाई देता। वे सोचते हैं कि हम अच्छेसे अच्छा खाते हैं, अच्छा पहनते हैं, सुखसे जीवन व्यतीत करते हैं; परन्तु फिर समझमें नहीं आता कि हम इतने दुर्बल और अस्वस्थ क्यों रहते हैं। परन्तु उनकी दुर्बलता और अस्वस्थताका मुख्य कारण यही होता है कि

उनके मनमें प्रायः अनेक प्रकारके भीषण और दुष्ट मनोविकार उत्पन्न होते रहते हैं, जो उनके स्वास्थ्यमें बहुत अधिक बाधा पहुँचाते रहते हैं। हमें यह बात बहुत अच्छी तरह समझ रखनी चाहिए कि जब तक हम भीषण मनोविकारोंसे अपना पीछा न छुड़ावेंगे और जब तक उनके परिणामस्वरूप अपने शरीरमें अनेक प्रकारके विष उत्पन्न करना न छोड़ेंगे, तब तक हम संसारके और सब प्रकारके उपाय करके भी कभी स्वस्थ तथा सबल नहीं हो सकते। स्वास्थ्य और सबलताका मूलमन्त्र यही है कि मनुष्य सदा प्रसन्न रहा करे और किसी प्रकारकी घटनाओंसे कभी क्षुब्ध न हो और अपने मनकी शान्ति कभी नष्ट न होने दे।

हमारे शारीरिक तथा मानसिक अंगोंकी रचना ही ऐसे ढंगसे की गई है कि उनका ठीक ठीक काम बहुत शान्तिकी अवस्थामें ही चल सकता है। जिस कलको बार बार झटका दिया जायगा, बार बार बुरी तरहसे हिलाया डुलाया जायगा, बार बार ठोका पीटा जायगा, वह कभी ठीक तरहसे पूरा पूरा काम नहीं कर सकेगी। पूरा और ठीक काम तभी होगा जब उसे बहुत ही शान्तिपूर्वक चुपचाप चलने दिया जाय और अनावश्यक रूपसे कभी छेड़ा न जाय। यही बात हमारे शारीरिक तथा मानसिक अंगोंकी है। वे तभी ठीक तरहसे और पूरा पूरा काम कर सकेंगे जब हम कभी उनकी शान्तिभंग न करेंगे और उन्हें चुपचाप अपना काम करने देंगे। पर यदि हम उन्हें बार बार तंग किया करेंगे, हर दम उन्हें छेड़ते रहेंगे और क्षुब्ध करते रहेंगे, तब वे कभी अपना काम ठीक तरहसे नहीं कर सकेंगे। उस दशामें हमारे शरीर और मस्तिष्कके सब कल-पुरजे बिगड़ जायँगे। हमें पता भी न लगेगा कि हमारा शरीर ठीक तरहसे क्यों नहीं संचालित हो रहा है और न हम उनकी किसी प्रकार मरम्मत ही कर सकेंगे। हाँ, हम

उनकी त्रुटियों और दोषोंसे सदा चिन्तित अवश्य रहेंगे और वह चिन्ता हमारे स्वास्थ्यमें और भी अधिक बाधक होगी।

जो व्यक्ति अपने मनको वशमें न रख सकता हो समझ लेना चाहिए कि उसकी शिक्षा बहुत ही त्रुटिपूर्ण हुई है। ऐसा व्यक्ति यही प्रमाणित करता है कि अपने जीवनमें वह बहुत ही थोड़े समयतक मनुष्य रहता है और शेष समयमें उसकी दशा पशुओं बल्कि राक्षसोंकीसी हो जाती है। उसका वही पशुभाव या राक्षसीभाव समय समयपर विकट रूप धारण कर लेता है जिसपर वह व्यक्ति किसी प्रकार अपना अधिकार नहीं दिखला सकता। वह स्वयं उस पशु या राक्षसके अधिकारमें चला जाता है और सब काम उसीके कहनेके अनुसार करने लगता है। वही पशु या राक्षस उसके मानसिक राज्यमें भीषण विद्रोह उत्पन्न कर देता है और जो चाहता है वही करने लग जाता है। स्वयं वह मनुष्य इतना अधिक दुर्बल होता है कि उसे अपने वशमें नहीं रख सकता और पशुभावको मनमाने तौरपर खुलके खेलने देता है। इसीको आत्म-संयमका अभाव कहते हैं।

परमात्माने प्रत्येक व्यक्तिमें एक ऐसी प्रबल और परम शुद्ध शक्ति स्थापित कर रक्खी है कि यदि वह चाहे तो दुष्टसे दुष्ट मनोविकारपर बहुत ही सहजमें विजय प्राप्त कर सकता है और उसे दबा सकता है। परन्तु इसके लिए सबसे पहले उसे उस शक्तिसे परिचित होनेकी आवश्यकता होती है और उससे काम लेना सीखना पड़ता है। जब एक बार मनुष्यको अपनी उस शक्तिका ज्ञान हो जाता है और वह उससे काम लेना सीख लेता है, तब कभी किसी परिस्थितिमें वह आपेसे बाहर नहीं हो सकता। उसके मनमें कभी किसी प्रकारका क्षोभ उत्पन्न नहीं

होगा और वह सदा शान्त, स्वस्थ तथा सन्तुष्ट रहेगा। उस दशामें वह कभी किसी दोष या कुप्रवृत्ति आदिका दास न बन सकेगा।

हममें जो गुण अथवा शक्ति न हो उस गुण या शक्तिको प्राप्त करनेके लिए हमें सबसे पहले यह कल्पना कर लेनी चाहिए कि वह गुण या शक्ति हममें मौजूद है। यह कल्पना करनेके उपरान्त हमें अपने जीवनका प्रत्येक व्यवहार ऐसा ही रखना चाहिए कि मानो वह गुण या शक्ति हममें बहुत पहलेसे वर्तमान है। कुछ दिनोंतक इसी प्रकारका आचरण करते रहनेसे परिणाम यह होगा कि वह गुण या शक्ति आपसे आप हममें आ जायगी और फिर हमें कभी उसके अभा-वका ध्यान भी न होगा। हमें अपने सामने सदा अपनी पूर्णताका आदर्श रखना चाहिए और यही समझना चाहिए कि हममें सब प्रकारके गुण वर्तमान हैं और किसी प्रकारका दोष हमपर कभी अधिकार नहीं कर सकता। हम जिस चीज तक पहुँचना चाहते हों या जो बात प्राप्त करना चाहते हों उसे अपनी सारी शक्तिसे अपनी ओर खींचकर इतना झुकाना चाहिए कि वह आपसे आप आकर हमारे पास तक पहुँच जाय। हम उसे अपनी ओर झुकानेके लिए जितना ही अधिक प्रयत्न करेंगे उतनी ही अधिक मात्रामें हम उसे प्राप्त कर सकेंगे।

यदि हम जरा जरा सी बातपर बहुत नाराज हो जाया करते हों, सबसे लड़ बैठते हों, लोगोंको मार बैठते हों अथवा इसी प्रकारका और कोई अनुचित कृत्य कर डाला करते हों तो हमें अपनी इस दुर्बलताका रोना कभी रोना नहीं चाहिए और न लोगोंसे यह कहते फिरना चाहिए कि भाई हम क्या करें हम बिलकुल लाचार हैं जब हमपर गुस्सा सवार होता है तब हम आपेमें नहीं रह जाते; बिलकुल बेबस हो जाते हैं। बल्कि हमें ऐसा भाव धारण करना चाहिए कि हम बहुतही धीर

गम्भीर और शान्त आदमी हैं और हमारी शान्ति कभी किसी प्रकार भंग की ही नहीं जा सकती। उस समय हमें अपने मनमें सदा यही समझते रहना चाहिए कि हमारा मिजाज बिलकुल गुस्सेवर नहीं है, हम सदा अपने आपको वशमें रख सकते हैं और कोई बात या घटना हमें क्षुब्ध नहीं कर सकती; हम कभी किसी बातसे नाराज नहीं होते न कभी चिढ़ते हैं। अपने मनमें सदा इस प्रकारके विचार रखनेका परिणाम यह होगा कि हम बहुत थोड़े समयमें बहुत शान्त, धीर और गम्भीर हो जाँयगे और तब किसी प्रकारकी उत्तेजना हमें क्षुब्ध न कर सकेगी।

जिन लोगोंमें झूठा अभिमान या स्वार्थपरता होती है वे अपेक्षाकृत अधिक शीघ्र नाराज हो जाते हैं या चिड़चिड़ा उठते हैं। परन्तु जिन लोगोंमें ये सब बातें नहीं होतीं वे जल्दी क्रोधके वशमें नहीं होते। जिस मनुष्यमें सचमुच मनुष्यता होगी वह न तो कभी झूठा अभिमान ही करेगा, न स्वार्थी ही होगा और न बातबातपर नाराज ही होगा। मनुष्यत्वके अभावमें ही ये सब बातें होती हैं। इसलिए प्रत्येक व्यक्तिको वास्तविक अर्थमें मनुष्य बननेका प्रयत्न करना चाहिए।

हम यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि जब आदमीका मिजाज गरम हो जाता है तब भीषण मनोविकारोंको वशमें रखना बहुत ही कठिन होता है, परन्तु साथ ही हम यह बात भी अच्छी तरह जानते हैं कि उन मनोविकारोंके वशमें होना और आपेसे बाहर हो जाना कितना अधिक हानिकारक और दुष्परिणाम उत्पन्न करनेवाला होता है। इससे आदमीकी अनेक शक्तियोंका तो वृथा नाश होता ही है, पर साथ ही वह लोगोंकी दृष्टिमें बहुत हास्यास्पद और निन्दनीय भी हो जाता है। जो व्यक्ति अपने मनको अपने वशमें नहीं रख सकता,

वह मानो यह सिद्ध करता है कि वह अपनी वृत्तियोंका, स्वामी नहीं बल्कि, दास है ।

क्षण भरके लिए भी, विचारशीलताके सिंहासनसे च्युत होना और पाशविक वृत्तियों तथा भावोंके वशमें हो जाना मनुष्यके लिए बहुत अधिक भयानक तथा घातक होता है; क्योंकि देखा गया है कि बहुत-से लोग अपने पशुभावको बढ़ाते बढ़ाते पागलपन तककी सीमाको पहुँच गए हैं । कमसे कम मनुष्यपदसे तो वे अवश्य ही गिर जाते हैं; और मनुष्यत्वसे गिरना भी एक प्रकारका पागलपन ही है । किसीको गालियाँ देना, किसीको मार बैठना, किसीको उठाकर पटक देना आदि पागलोंके ही काम हैं । समझदारीकी हालतमें कभी कोई ऐसे काम नहीं करता । क्रोध करना पागलपन तो अवश्य है, फिर चाहे वह स्थायी पागलपन न होकर अस्थायी ही क्यों न हो । इसी अस्थायी पागलपनकी झोंकमें लोग अपने अच्छे अच्छे मित्रोंसे सदाके लिए बिगाड़ कर बैठते हैं और अपने प्रिय सम्बन्धियों तकको खो देते हैं । छोटे छोटे बच्चे अपने अनुभवसे सीख लेते हैं कि आगको छूनेसे हाथ जलता है और तेज़ चाकूको छूनेसे उँगली कट जाती है; पर कैसे आश्चर्यकी बात है कि हम लोग बड़े सयाने और समझदार होकर भी और बराबर अनुभव करते रहनेपर भी यह बात नहीं सीखते कि स्वभावकी दुष्टतासे कितनी अधिक हानियाँ होती हैं ।

जो व्यक्ति विचारशील होता है और अपने मनको वशमें रखना जानता है वह यह बात अच्छी तरह जानता है कि अपने मानसिक शत्रुओंसे अपनी रक्षा किस प्रकार की जाती है । जब कभी क्रोध करनेका या इसी प्रकारका और कोई अवसर आता है तब वह कोई ऐसा काम नहीं करता जिससे वह क्रोध और भी बढ़े; बल्कि शान्तिपूर्वक ऐसा

उपाय करता है जिससे वह क्रोध शान्त हो और जलती हुई आग ठंडी हो जाय। जो भाव मनमें उठनेको हों, यदि उसके विरोधी भावको मनमें स्थान दिया जायगा तो वह पहला भाव आपसे आप और बहुत शीघ्र दब जायगा। जब कभी कहीं आग लगती है तब उसे बुझानेके लिए कोई मिट्टीका तेल लेकर नहीं दौड़ता, बल्कि पानी लेकर दौड़ता है। इसी प्रकार जब मिजाज गरम हो तब ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे वह गरमी और भी बढ़े, बल्कि ऐसा काम करना चाहिए जिससे शान्ति आवे। प्रायः ऐसा होता है कि जब कभी किसी लड़केका मिजाज गरम होता है, वह किसी बातपर बिगड़ता, चिढ़ता या जिद करता है तब उसे दबानेके लिए लोग शान्त नहीं करते बल्कि खुद भी बिगड़ने और चिढ़ने लग जाते हैं। इस प्रकार वे मानो आगको आगसे बुझाना चाहते हैं; साथ ही वे लड़केका मिजाज और भी बिगाड़ देते हैं। उचित यह है कि लड़केको शान्त होनेका उपदेश दिया जाय और उसकी वृत्तियोंको ठीक मार्गपर लगाया जाय। परन्तु ऐसा न करके बहुत लोग अपने मिजाजकी तेजी दिखाकर उसका मिजाज और भी बिगाड़ देते हैं और उसे बिगड़ना तथा नाराज होना ही सिखलाते हैं। इस प्रकारकी बातोंका बालकोंपर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है और उनका स्वभाव आरम्भसे ही बहुत खराब हो जाता है जिसे बादमें सुधारना बहुत ही मुश्किल हो जाता है।

जब हम किसीको कीचड़ या दलदलमें फँसा हुआ देखते हैं तब उसे बाहर निकालनेका प्रयत्न करते हैं, न कि स्वयं भी जाकर उसी कीचड़में फँस जाते हैं। परन्तु जब हम किसीको क्रुद्ध देखते हैं तब स्वयं भी क्रोध करने लग जाते हैं। ऐसे अवसरपर स्वयं कभी क्रोध नहीं करना चाहिए, बल्कि ऐसी बातें करनी चाहिए जिनसे दूसरेका क्रोध शान्त हो।

यदि कोई बिकट अवसर आने पर स्वयं भी क्रोध करनेके बदले दूसरेका क्रोध किसी प्रकार शान्त कर दिया जाय और तब बादमें उसे समझाया बुझाया जाय तो वह एक प्रकारसे अनुगृहीत होता है और आगेके लिए बहुत कुछ सँभलनेका प्रयत्न करता है । परन्तु यदि स्वयं भी उसके साथ क्रोध किया जाय तो उसका स्वभाव भी बिगड़ता है और अपना स्वभाव भी बिगड़ता है । हम मानो अपने आपको भी खराब करते हैं और औरोंको भी खराब करते हैं ।

आचार-व्यवहारमें सबसे अधिक आवश्यकता इस बातकी है कि मनुष्य अपने विचारों, भावों और वृत्तियों आदिको वशमें रक्खे। यदि वह ऐसा नहीं कर सकता है तो फिर वह किसी कामका आदमी नहीं है। परन्तु यदि वह अपने मिजाजको काबूमें रखना जानता है तो वह बहुत बड़ा बलवान् होता है और दूसरोंका बिगड़ा हुआ मिजाज बहुत जल्दी ठिकाने ला सकता है । कल्पना कीजिए कि कोई आदमी बहुत अधिक क्रोधकी दशामें आपके सामने आता है और ऐसी बातें करता है जिनसे आप बहुत उत्तेजित हों। परन्तु आप किसी प्रकार उत्तेजित नहीं होते और बहुत ही शान्त भावसे उसके सामने खड़े रहते हैं। अपनी इस धीरता और गम्भीरताका विचार करके स्वयं आपमें भी बहुत अधिक बल आता है और आपके सामने क्रोध करनेवालेको भी बहुत बड़ी शिक्षा मिलती है। अपने विचारोंपर प्रभुत्व प्राप्त करनेका यही दोहरा शुभ परिणाम होता है। अतः क्यों न आप भी प्रयत्न करें और क्यों न अपने विचारों तथा भावों आदिको अपने वशमें रखना सीखें। इससे आपके चरित्रमें इतना अधिक बल आवेगा जितना और किसी प्रकार आ ही नहीं सकता ।

१७--प्रसन्नता।

यदि संसारके सब लोगोंको यह बात अच्छी तरह मालूम हो जाय कि सदा हँसने और प्रसन्न रहनेका हमारे स्वास्थ्यपर कितना अच्छा प्रभाव पड़ता है तो फिर आधेसे अधिक डाक्टरों वैद्यों और हकीमों आदिके लिए मक्खियाँ मारनेके सिवा और कोई काम ही न रह जाय। हास्य वास्तवमें प्रकृतिकी सबसे बड़ी पुष्टाई है। हास्यसे बढ़कर बलवर्धक और उत्साहवर्धक और कोई चीज हो ही नहीं सकती। इससे हमारी त्रस्त तथा अस्वस्थ मनोवृत्ति शान्त और प्रसन्न होती है और रूखे तथा कंटकाकीर्ण व्यवहार मार्गकी भीषणता बहुत कुछ कम हो जाती है। हास्यसे ही हमारे शरीरमें नए जीवन और नए बलका संचार होता है और हमारे आरोग्यकी वृद्धि होती है।

कैलिफोर्नियामें एक स्त्री थी जो बहुत दिनों तक खिन्न और चिन्तित रहनेके कारण उन्निद्र आदि कई रोगोंसे पीड़ित हो गई थी। जीवन उसे एक भारसा जान पड़ने लगा था। अन्तमें उसने निश्चित किया कि चाहे हँसनेका कोई अवसर आवे चाहे न आवे, पर मैं नित्य दिनमें तीन बार अवश्य खूब खिलखिलाकर और पेटभरके हँसा करूँगी। तदनुसार उसने बात बातपर हँसना आरम्भ किया। यदि कभी हँसनेका कोई अवसर नहीं आता था तो वह अपने कमरेमें चली जाती थी और वहाँ एकान्तमें खूब अच्छी तरह हँसा करती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि उसका स्वास्थ्य बहुत शीघ्र सुधर गया और उसके सब रोग आपसे आप बिना किसी दूसरी चिकित्साके जाते रहे।

जीवन-पथमें प्रायः अनेक ऐसे ऊबड़ खाबड़ स्थान मिलते हैं जिनमें लोगोंको ठोकरें, धक्के और झटके लगते हैं। जो लोग हँसना और प्रसन्न रहना नहीं जानते वे उन ठोकरों और झटकों आदिसे बहुत कष्ट पाते हैं। परन्तु सदा प्रसन्न रहनेवाले लोगोंके लिए ऐसे अवसरपर आनन्द और हास्य मानो मुलायम गद्दोंका काम देते हैं और वे उन ठोकरों और धक्कों आदिको कुछ भी अनुभव नहीं करते। ऐसे लोगोंकी जीवन-यात्रा बहुत ही सुगम और सुखपूर्ण हुआ करती है। जब हम किसी अप्रिय घटना आदिके कारण अस्वाभाविक परिस्थितिमें पहुँच जाते हैं, तब हास्य और आनन्द हमें फिर तुरन्त अपनी स्वाभाविक परिस्थितिमें ले आता है। जीवनमें जितने क्षत आदि होते हैं उन सबके लिए हास्य बढ़िया मरहमका काम देता है। इससे हमारा स्वास्थ्य भी सुधरता है और आयु भी बढ़ती है। जो लोग सदा प्रसन्न रहते और हँसी खुशीमें अपना समय बिताते हैं वे उन लोगोंकी अपेक्षा कहीं अधिक दीर्घजीवी होते हैं, जो दिन रात रोनी सूरत बनाए रहते हैं, सदा चिन्तित और दुःखी रहते हैं और कभी प्रसन्न होना जानते ही नहीं।

अस्वाभाविक अवस्थामेंसे स्वाभाविक अवस्थामें आनेके लिए खूब जी खोलकर हँसनेकी अवश्यकता होती है। हास्य एक प्रकारका ऐसा व्यायाम है जिससे हमारी समस्त मनोवृत्तियोंको एक नया बल प्राप्त होता है और हमारी सारी थकावट, सारी शिथिलता दूर हो जाती है।

स्पार्टाके भोजनालयमें वहाँके सुप्रसिद्ध नेता लाइकरगसने हास्य देवताकी एक मूर्त्ति स्थापित कर रक्खी थी, क्योंकि उसका मत था कि हास्यमें हमारी पाचनशक्तिको बढ़ानेका जितना अधिक गुण है उतना और किसी पदार्थमें नहीं है।

आजकलका सभ्य जीवन और सांसारिक परिस्थिति कुछ ऐसी हो रही है कि लोगोंको हँसनेका बहुत ही कम अवसर मिलता है। सबसे पहले तो अधिक हँसना और वह भी सार्वजनिक समाजमें हँसना ही असभ्यताका चिह्न समझा जाता है, दूसरे आजकल जीवन-निर्वाहकी समस्या इतनी कठिन हो रही है कि लोग दिन रात उसीके कारण चिन्तित रहते हैं और हँसनेका उन्हें अवसर ही नहीं मिलता। युवावस्थाका आरम्भ होते ही हँसीका मानो अन्त हो जाता है। आजकलके नवयुवक पढ़ने लिखने और किताबें रटनेमें ही इतने अधिक व्यस्त रहते हैं कि उन्हें हँसनेकी छुट्टी ही नहीं मिलती। जब पढ़ लिखकर तैयार होते हैं और संसारमें प्रवेश करते हैं तब जीविकाके निर्वाहकी चिन्ता इतनी बलवती होती है कि हँसनेकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। इसी लिए कहना पड़ता है कि आजकलके लोग हँसना भूलतेसे जा रहे हैं। यदि उनके सामने कभी कोई विशेष प्रसन्नताकी बात हुई भी तो वे जरासा मुस्कराकर ही रह जाते हैं। शरीरके सब अंगोंको हिला देनेवाला अट्टहास तो वे जानते ही नहीं और यदि जानते भी हों तो वैसी हँसी हँसनेकी गिनती असभ्यतामें की जाती है। लोगोंको दिन रात काम धन्धे और धन कमानेकी चिन्ता लगी रहती है और हँसीमें गँवानेके लिए उनके पास समय ही नहीं होता। वे जानते ही नहीं कि बहुत अधिक सोचने आदिके कारण दिमागमें जो उलझनें और गाँठें पड़ जाती हैं, उन्हें सुलझाने और दूर करनेके लिए हास्यसे बढ़कर और कोई उपाय है ही नहीं। दिन रातकी चिन्ताके कारण शरीर और मस्तिष्कमें जो शिथिलता आ जाती है उसे दूर करनेका हास्यसे बढ़कर और कोई उपाय है ही नहीं। यदि जीवन वास्तविक दृष्टिसे कभी जीवन हो सकता है तो हँसी खुशीसे ही हो सकता है। दुःखी और खिन्न रहना तो मृत्युका चिह्न है।

जो लोग खिलखिलाकर और खूब हँसना बिलकुल भूल गए हों उन्हें उचित है कि वे किसी कमरेमें जाकर अन्दरसे किवाड़ा बन्द कर लिया करें और वहाँ खूब मजेमें जी खोलकर कुछ देर तक हँसा करें। उस कमरेकी तसबीरें देखकर हँसा करें, मेज कुरसी आदि देखकर हँसा करें, शीशा देखकर हँसा करें और हर एक चीजको देखकर हँसा करें। हँसनेसे उनका बन्द बन्द खुल जायगा, सारे शरीरकी थकावट उतर जायगी और वे बिलकुल हलके और ताजे हो जायँगे। उन्हें अपने शरीरमें नए बल और नए जीवनका संचार होता हुआ जान पड़ेगा।

लिंकन सदा अपने टेबुलपर हास्य विनोदकी एक न एक पुस्तक रक्खा करता था। जब कभी वह काम करते करते कुछ थक जाता था, कुछ खिन्न हो जाता था अथवा उसे जी धँसता हुआ जान पड़ता था, तब वह उसी पुस्तकको उठाकर उसके कुछ प्रकरण या पृष्ठ पढ़ जाता था। इससे उसकी सारी शिथिलता और सारा खेद दूर हो जाता था और वह बड़े आनन्दसे फिर अपने काममें लग जाता था।

हास्य, चाहे किसी प्रकारका हो, सदा बहुत अधिक लाभदायक हुआ करता है। उसे ईश्वरकी सबसे बड़ी देन समझना चाहिए। उससे हमें अनेक प्रकारके लाभ होते हैं। हमारा स्वास्थ्य सुधरता है, हमारी मनोवृत्तियाँ शुद्ध होती हैं और हमारे प्रयत्नोंमें उससे सफलता होती है। बहुतसे लोग केवल इसी लिए सफलता नहीं प्राप्त कर सकते कि वे हँसी खुशीमें अपना जीवन नहीं बिता सकते और सदा दुःखी तथा खिन्न रहते हैं। वे अपने आसपासका वातावरण बिलकुल विषाक्त कर लेते हैं और अपनी शक्तियोंका बुरी तरहसे नाश कर लेते हैं और इसी लिए वे सफल नहीं हो सकते। यदि वे किसी प्रकार हँसने और प्रसन्न

रहनेका अभ्यास डाल सकें तो वे अपनी परिस्थितिमें फिर सुधार कर सकते हैं और फिर जीवनमें अच्छी सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

डा० सैंडर्सनका मत है कि बलवर्धक औषधोंसे हमारे शरीरको जो बल प्राप्त होता है वह कृत्रिम होता है और पीछेसे उससे कई प्रकारकी हानियाँ और दोष भी उत्पन्न होते हैं। परन्तु आनन्दपूर्ण वृत्तिमें स्वाभाविक बलवर्धक गुण तो है ही, साथ ही पीछेसे उससे किसी प्रकारका अपकार या हानि नहीं होती। आनन्दपूर्ण वृत्तिका शुभ परिणाम शरीरके प्रत्येक अवयवपर पड़ता है। इससे आँखोंमें चमक आती है, मुखपर कान्ति आती है, चालमें कोमलता आती है और हमारे शरीरमें जीवनका आधार जितनी सूक्ष्म शक्तियाँ हैं उन सबका बहुत अच्छा पोषण और वृद्धि होती है। इसके कारण शरीरमें रक्तका बहुत स्वतन्त्रतापूर्वक संचार होता है, स्वास्थ्यकी वृद्धि होती है और रोगका नाश होता है।

संसारमें कोई ऐसी औषध नहीं है जो उपयोगितामें आनन्दपूर्ण वृत्तिका मुकाबला कर सके। जो व्यक्ति सदा प्रसन्न रहता हो और खूब हँसता हो वह हजार दवाओंकी एक दवा है। बहुतसे लोग केवल इसी लिए बेदम और अधमरेसे रहते हैं कि वे अपनी वृत्ति आनन्दपूर्ण नहीं रख सकते। हमारे जीवन और स्वास्थ्यके लिए जितनी अधिक उपयोगी आनन्दपूर्ण वृत्ति होती है, उतनी अधिक उययोगी और कोई चीज नहीं होती। जिन खेल तमाशों आदिमें हँसीका बहुत ज्यादा मसाला होता है उनमें दर्शकोंकी संख्या भी अपेक्षाकृत बहुत अधिक होती है। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्योंको अपना जीवन धारण करनेके लिए हास्यकी बहुत अधिक आवश्यकता है। जब हम कोई ऐसा खेल तमाशा देखकर आते हैं जिसमें बहुत अधिक हँसी होती है तब हमारी शारीरिक तथा मानसिक अवस्थामें कितना अधिक परिवर्तन

हुआ रहता है ! जिस समय हम वह खेल देखनेके लिए जाते हैं उस समय बिलकुल थके हुए होते हैं और हममें किसी प्रकारका उत्साह नहीं होता; परन्तु जब हम वह हास्यपूर्ण खेल देखकर घर लौटने लगते हैं उस समय मानो हममें एक नया जीवन आ जाता है। हमारे मनमें उत्साह और प्रफुल्लता भरी रहती है और शरीरमें बहुत अधिक बल जान पड़ता है। इसकी परीक्षा आप सहजमें ही कर सकते हैं। दिनभर कठिन परिश्रम करनेके उपरान्त जब आप थके माँदे घरपर आते हैं तब आपके शरीरमें दम नहीं रहता। पर जहाँ आपने लड़के बच्चोंके साथ कुछ देरतक हँस हँसकर बातें कीं, या मित्रमंडलीमें बैठकर थोड़ा हँसी मजाक किया, वहाँ आपकी सारी थकावट दूर हो जाती है और आप फिर तरो ताजा हो जाते हैं। थोड़ी देर तक खूब अच्छी तरह हँसनेसे उतनी ही शिथिलता दूर होती है जितनी रातभर खूब अच्छी तरह सोनेसे होती है। इसलिए प्रत्येक व्यक्तिको अपने जीवनके नित्यक्रममें हँसी मजाकको भी पूरा स्थान देना चाहिए। मान लिया कि हमको जीविकानिर्वाह करनेके लिए दिन रात कठिन परिश्रम करना पडता है; परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम दिन रात मुहर्रमी सूरत बनाए बैठे रहा करें और कभी अपना चित्त प्रसन्न ही न करें।

आनन्दपूर्ण वृत्तिमें हमारे स्वास्थ्यको सुधारनेकी जो शक्ति है वह तो है ही, पर साथ ही उसमें हमारे नैतिक आचरणको सुधारनेकी भी बहुत बडी शक्ति है। सुन्दर और निर्दोष परिहाससे आज तक कभी किसीका चरित्र नहीं बिगड़ा, हाँ सुधर हजारों लाखों आदमियोंका गया है। परिहास भी मनुष्यके लिए उतना ही आवश्यक है जितना भोजन। एक बड़े फ्रान्सीसी चिकित्सकका मत है कि हमें बच्चोंको बहुत ही छोटी अवस्थासे सदा प्रसन्न रहनेकी आदत डालनी चाहिए। वह कहता है

कि अपने बच्चोंको सदा प्रसन्न रहने और जोर जोरसे हँसनेके लिए प्रोत्साहित करते रहो। खूब अच्छी तरह और जोरसे हँसनेसे सीना फैलता है और रक्तका खूब अच्छी तरह संचार होता है। कभी कभी और जरासा मुस्कराकर ही न रह जाना चाहिए बल्कि खूब जोरसे और ऐसी हँसी हँसनी चाहिए जिससे सारा मकान गूँज उठे।

हम लोग ऐसी बातें सीखनेकी ओर तो बहुत ध्यान देते हैं जो हमारे रोजगारमें काम आती हैं, पर ऐसी बातोंकी ओर बहुत काम ध्यान देते हैं जिनसे हमारा स्वास्थ्य सुधरता है और हमारे स्वास्थ्यको सुधारनेवाली चीजोंमें परिहासका बहुत ऊँचा स्थान है। यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो बालकोंको लिखना पढ़ना सिखानेकी अपेक्षा भी कहीं अधिक आवश्यकता इस बातकी है कि उन्हें सदा प्रसन्न रहनेकी शिक्षा दी जाय और वृत्तिको आनन्दपूर्ण बनाना सिखलाया जाय। यह तो जीवनकी सबसे पहली और बहुत बड़ी आवश्यकता समझी जानी चाहिए। आनन्दपूर्ण वृत्तियोंको सदा और जहाँतक अधिक हो सके बढ़ानेका प्रयत्न किया जाना चाहिए।

बालकोंके प्रति हमारा सबसे पहला कर्तव्य यह है कि हम उनकी स्वाभाविक प्रसन्नताका पूरा पूरा विकास होने दें और उन्हें सदा खूब जी खोलकर अच्छी तरह हँसने दें। बल्कि समय समयपर हम स्वयं ही ऐसे अवसर उपस्थित करें कि वे भी खूब हँसें और हम भी उनके साथ साथ हँसें। बहुतसे लोग लड़कोंको जोर जोरसे हँसनेके लिए मना किया करते हैं और ज्यादा हँसनेपर उन्हें डाँटते डपटते रहते हैं। यह बहुत ही बुरी बात है। बालक स्वभावतः हँसना और प्रसन्न रहना चाहते हैं। उन्हें हँसनेसे रोकना मानो उनके शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकासमें बाधा डालना है। यदि हम किसी बालकको लगातार

कुछ समयतक हँसनेसे रोकते रहें तो उसके हृदयसे आनन्द बिलकुल निकल जायगा और तब उसके लिए इसका परिणाम बहुत ही घातक होगा। बहुतसी माताएँ अपने बालकोंको हँसने और शोर करनेसे रोकती हैं और इस प्रकार वे उनकी स्वाभाविकता नष्ट कर देती हैं। वे बालकोंको छोटी अवस्थामें ही वयस्कों और वृद्धोंका सा आचरण करनेके लिए बाध्य करती हैं। परन्तु वे अपने अज्ञानके कारण बालकोंकी बहुत बड़ी और ऐसी हानि करती हैं जिसकी पूर्ति कभी और किसी प्रकार नहीं हो सकती।

एक प्रसिद्ध लेखकका मत है कि जिन बालकोंकी वृत्ति आनन्दपूर्ण नहीं होती, वे बड़े होने पर कुछ भी नहीं होते। जिन वृक्षोंमें कलिया नहीं होतीं उनमें कभी फल भी नहीं लग सकते।

बालक स्वभावसे ही सदा प्रसन्न रहना और हँसना चाहते हैं और यदि घरमें उनकी यह आकांक्षा पूरी न हो तो फिर उनका घरमें रहना कठिन हो जाता है। उन्हें जब अवसर मिलता है तब वे हँसने और प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिए बाहर निकल जाते हैं। बहुत से वयस्क आदमी भी सन्ध्या या रातके समय आनन्द प्राप्त करनेके लिए घरसे बाहर निकल जाते हैं। जब कभी किसी बालक या वयस्कको आनन्द प्राप्तिके लिए घरसे बाहर निकलते हुए देखो तो समझ लो कि घरमें उसके लिए आनन्दकी यथेष्ट सामग्री प्राप्त नहीं हो सकती। जिस घरमें आनन्दकी यथेष्ट सामग्री उपस्थित रहती है, वह घर न तो बालक छोड़कर जाना चाहते हैं और न वयस्क ही वहाँसे टलना चाहते हैं। जहाँ जिसे आनन्द मिलेगा वह वहीं रहेगा। इसलिए प्रत्येक घर आनन्दका इतना बड़ा केन्द्र होना चाहिए कि न तो बच्चे ही उसे छोड़कर कहीं जाना चाहें और न वयस्क ही।

हमारे लिए भी और हमारे बाल-बच्चोंके लिए भी हँसीसे बढ़कर अच्छी और सस्ती और कोई दवा ही नहीं हो सकती। यह दवा सबको बहुत बड़ी बड़ी मात्राओंमें दी जानी चाहिए। इससे वह खर्च तो बच ही जायगा जो बार बार डाक्टरोंको बुलाने और दवाएँ आदि खरीदनेमें पड़ता है; साथ ही उनके आचार विचारमें भी बहुत अधिक पवित्रता आ जायगी। उस समय न तो देशमें इतने जेलखानोंकी ही आवश्यकता रह जायगी, न इतने पागलखानोंकी, न इतने अस्पतालों और न इतने खैरातखानोंकी ही आवश्यकता रह जायगी।

बालकोंके लिए प्रसन्नता और आनन्दकी उतनी ही अधिक आवश्यकता होती है जितनी नए पौधोंके लिए अच्छी और उपजाऊ जमीनकी। यदि आरम्भिक परिस्थितियाँ उपयुक्त और अनुकूल न हों, तो पौधे या तो बिलकुल ही सूख जाते हैं और या उनमें ऐसे दोष आ जाते हैं जो बादमें उनके बड़े वृक्ष होनेपर किसी प्रकार दूर नहीं किए जा सकते। पौधोंकी रक्षा और वृद्धि आदिके सम्बन्धमें जो कुछ करनेकी आवश्यकता होती है वह आरम्भमें ही होती है। आरम्भिक त्रुटियोंका सुधार बादमें नहीं हो सकता। ठीक यही बात बच्चोंके सम्बन्धमें भी है। यदि बाल्यावस्थामें ही उनकी शक्तियोंका पूरा पूरा विकास न हो सका तो फिर बड़े होने पर वे कुछ भी नहीं हो सकते। सदा प्रसन्न रहनेसे सब शक्तियोंका पूरा पूरा विकास होता है और उनको उन्नत करनेकी सम्भावनाएँ बहुत बढ़ जाती हैं। जिन बालकोंकी आनन्दपूर्ण वृत्तिका बाल्यावस्थामें ही नाश कर दिया जाता है, वही बड़े होनेपर मुरदोंकासा जीवन व्यतीत करते हैं। उनका समस्त सार और रस तो आरम्भमें नष्ट कर दिया जाता है। फिर उनके जीवनमें यदि जीवनकी वास्तविक झलक न दिखाई दे, तो इसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है।

१८—दुःख—विस्मरण।

संसारमें ऐसी बहुतसी अप्रिय बातें हुआ करती हैं, जिनका स्मरण मात्र करनेसे आदमीको बहुत दुःख हुआ करता है। उन बातोंका स्मरण आते ही मनुष्यको बहुत अधिक क्षोभ होता है, उसका चित्त चंचल हो उठता है और उसके मनका उत्साह और बल जाता रहता है। यदि सब लोग ऐसी बातोंकी स्मृति सदाके लिए बिलकुल भुला सकते होते, तो सबका बहुत अधिक कल्याण हो जाता। यदि हम अपने मनमें केवल वही सुन्दर विचार और प्रिय स्मृतियाँ रख सकते जिनसे हमें उत्साह और बल मिलता तो हम लोगोंके जीवनकी उपयोगिता और क्षमता कई गुनी अधिक हो जाती।

कुछ लोग ऐसे हुआ करते ह जो दुर्भाग्यवश सदा अप्रिय बातें ही स्मरण रक्खा करते हैं। वे जब आपसे मिलेंगे तब एक न एक रोना रोते हुए ही मिलेंगे। या तो वे अपनी किसी ऐसी पुरानी बातका जिक्र करेंगे जिससे उनके साथ साथ आपका चित्त भीं दुःखी हो और या किसी कल्पित भावी आपत्तिकी ही चर्चा करने लगेंगे जिससे आप भी कुछ चिन्तित और भयभीत हो जायँ। वे आपसे कहेंगे कि एक बार उनके साथ एक बहुत भीषण दुर्घटना हो गई थी, एक बार वे मरते मरते बचे थे, एक बार उनका बहुत बड़ा नुकसान हो गया था, एक बार वे बहुत ज्यादा बीमार पड़ गये थे, एक बार उनके बहुत प्रिय सम्बन्धीकी मृत्यु हो गई थी, आदि आदि। वे अच्छी बातों और प्रिय अनुभवोंका तो कभी कोई जिक्र ही न करेंगे; जब जिक्र करेंगे तब

ऐसी ही बातोंका जिक्र करेंगे जिन्हें सुनकर आपको भी कुछ दुःख हो। और वे स्वयं तो परम दुःखी होकर वह बात कहेंगे ही। मतलब यह कि उन्हें सदा बुरी बातें ही याद रहेंगी और अच्छी बातें इस प्रकार भूल जायँगे कि मानो कभी हुई ही नहीं थीं। और यदि कभी कोई अप्रिय बात हो गई होगी तो वह उनके किए विस्मृत हो ही न सकेगी।

परन्तु कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनका आचरण इसके ठीक विपरीत होता है। वे सदा प्रिय बातों और अच्छी घटनाओंका ही जिक्र करेंगे और अपने जीवनकी वही बातें आपको सुनावेंगे जिनमें उनको सबसे अधिक आनन्द आया होगा और जिसे सुनकर आप भी बहुत प्रसन्न होंगे। यह बात नहीं है कि उन्हें कभी विपत्तियों या कष्टोंका सामना करना ही न पड़ा हो। नहीं उनके जीवनमें भी अनेक दुर्घटनाएँ हुई होंगी, उनकी भी अनेक बार हानियाँ हुई होंगी, अनेक बार उन्हें दुःख या शोकसागरमें निमग्न होना पड़ा होगा। परन्तु उनकी वृत्ति ही इतनी शुभ और आनन्दपूर्ण होगी कि वे कभी उनका जिक्र करना पसन्द ही न करेंगे और जब कुछ कहेंगे तब अच्छी बातोंके सम्बन्धमें ही कहेंगे। उनकी बातोंसे आपको ऐसा जान पड़ेगा कि मानो उनके साथ कभी कोई दुर्घटना हुई ही नहीं, कभी उनपर कोई आपत्ति आई ही नहीं और कभी उन्हें दुःखी या चिन्तित होना ही नहीं पड़ा। आपको ऐसा जान पड़ेगा कि मानो संसारमें उनका कोई शत्रु है ही नहीं, जितने लोग हैं वे सब उनके मित्र हैं और उनपर पूर्ण कृपा रखते हैं। ऐसे ही लोग होते हैं जो औरोंको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं और जिनके साथ सब लोग प्रेम तथा मित्रता रखते हैं।

बात यह है कि जिसके मनमें सदा उदार, प्रेमपूर्ण और आनन्दमय विचारोंकी स्थिति रहती है, वे ही दूसरोंसे अपने सम्बन्धकी अच्छी और प्रिय बातें कहा करते हैं। और जो लोग अपने मनमें संकीर्ण कठोर विचार रक्खेंगे वे इतने पतित हो जाँयगे कि सदा स्वयं दुखी रहने और दूसरोंको दुखी करनेके अतिरिक्त और कुछ कर ही न सकेंगे।

कुछ लोगोंके मन गूदड़वालोंकी दूकानके समान हुआ करते हैं। उनमें कुछ चीजें तो अवश्य अच्छी और कीमती हुआ करती हैं, पर वे बहुतसे कूड़े कर्कटमें मिली हुई होती हैं। उनमें किसी प्रकारकी व्यवस्था या क्रम नहीं होता। उनमें अच्छी और बुरी सभी तरहकी बातें हुआ करती हैं। वे कभी कोई चीज निकालकर बाहर फेंकना जानते ही नहीं। क्योंकि उन्हें डर लगा रहता है कि कहीं कोई ऐसी चीज न फेंक दी जाय जो कभी पीछे काम आनेके योग्य हो। इसी वृत्तिके कारण उनका मन गूदड़खानेकी तरह बिलकुल भरा हुआ होता है, उसमें अनेक प्रकारके विचारोंके ढेर लगे रहते हैं। उन विचारोंमेंसे अधिकांश विचार बिलकुल रद्दी और बेकाम होते हैं; परन्तु फिर भी वे उनके मनमें रहते अवश्य हैं। यदि ऐसे लोग समय समय पर अपना मानसिक भंडार बराबर साफ करते रहा करें, उसमेंसे रद्दी और वाहियात चीजें निकालकर फेंकते रहा करें, अच्छी और कामकी चीजोंको व्यवस्थापूर्वक सजाकर रक्खा करें, तो उन्हीं चीजोंका मूल्य बहुत कुछ बढ़ सकता है और वह मूल्य इस प्रकार बढ़ सकता है कि वे बहुतसे नए और अच्छे काम कर सकते हैं। जिन लोगोंका मन सदा अव्यवस्थित रहेगा और जिसमें अनेक प्रकारकी निरर्थक बातें भरी रहेंगी, वह कभी कोई अच्छा काम न कर सकेगा।

अपने मनमें कभी किसी प्रकारका कूड़ा कर्कट इकट्ठा न होने देना चाहिए। जिन विचारोंकी हमको कोई आवश्यकता न हो और जिनका हमारे लिए कोई अर्थ न हो, उन विचारोंका भार हमें कभी वहन नहीं करना चाहिए। हमें अपनी जीवनयात्राका निर्वाह बहुत ही हलके फलके होकर करना चाहिए। बहुतसे लोग हमेशा इसीलिए घाटेमें रहते हैं कि वे कभी कोई चीज निकालकर बाहर फेंकना ही नहीं जानते। हमें इस विचारसे कभी कूड़ा कर्कट इकट्ठा नहीं करना चाहिए कि यह कभी न कभी हमारे काम आवेगा। वह कूड़ा कर्कट कभी काम तो आता ही नहीं, उलटे बहुतसा स्थान रोकता और गन्दगी फैलाता है और कभी कभी उसके कारण हमें अपनी बहुत ही जरूरी और कामकी चीजोंसे भी हाथ धोना पड़ता है। इसलिए हमें सदा अपना सारा कूड़ा कर्कट निकालकर बाहर फेंकते रहना चाहिए और रद्दी या बेकार चीजोंको कभी अपने यहाँ जमा न होने देना चाहिए। इस प्रकारका अभ्यास मनुष्यको बहुत अधिक लाभ पहुँचाता है।

कभी कभी हमें ऐसे लोग भी मिला करते हैं जिनके मन किराएकी गाड़ीकेसे हुआ करते हैं, किराएकी गाड़ीपर कभी तो आपको बड़ा भारी विद्वान् सज्जन महात्मा बैठा हुआ मिलेगा और कभी कोई चोर जुआरी शराबी या बदमाश दिखाई देगा। गाड़ीवानको जो सवारी पहले मिलेगी उसीको वह बैठा लेगा, उसे इस बातसे कोई मतलब नहीं कि यह किराएदार भला आदमी है या लुच्चा। ठीक यही दशा इन लोगोंके मनकी भी होती है। वे कभी यह सोचनेका कष्ट नहीं उठाते कि अमुक विचार अच्छा है या बुरा, हानिकारक है या लाभदायक। जब जो उनके सामने आता है तब वही ग्रहण कर लेते हैं। न उनमेंसे कुछ चुनते हैं और न छाँटते हैं। ऐसे मनकी दशा

स्पंजकीसी होती है। उसके सामने जो तरल पदार्थ आता है उसीको वह सोख लेता है। स्वभावतः ऐसा मन कभी दूषित और नाशक विचारोंसे रहित पवित्र और स्वच्छ नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें बहुतसी निन्दनीय और गिरानेवाली बातें भी आ आकर भर जाती हैं।

चरित्रकी श्रेष्ठतामें एक सबसे बड़ी बात यह होती है कि मन व्यवस्थित रहता है और किसी प्रकारका दुष्ट भाव उसमें प्रवेश नहीं होता। चरित्रकी श्रेष्ठता अच्छे काम करनेसे होती है और जिस समय मनमें अप्रिय या दुष्ट विचार भरे होते हैं उस समय मनुष्य कोई अच्छा काम कर ही नहीं सकता। जब तक मस्तिष्क शुद्ध और स्वच्छ नहीं रहता तब तक मनमें किसी प्रकारका उत्साह या सामर्थ्य आदि आ ही नहीं सकता। जो लोग अपनी शक्तिके अनुसार अधिकसे अधिक और अच्छेसे अच्छा काम करना चाहते हैं, उन्हें उचित है कि वे सदा पूर्ण प्रसन्न रहा करें और अपने मनमें शुद्ध सुन्दर तथा उन्नत विचार रक्खा करें। जो बात तुम्हारे मनमें किसी प्रकारका क्षोभ या अशान्ति उत्पन्न करती हो, तुम्हें दुखी और अप्रसन्न करती हो, तुम्हारे मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता उत्पन्न करती हो अथवा तुम्हारी मानसिक स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दतामें बाधक हो, उस बातको कभी अपने मनमें आने ही न दो। और यदि तुम ऐसा न करोगे तो फिर वह बात ही प्रबल होकर तुम्हें किसी कामका न रक्खेगी, वह तुम्हारी सब योग्यताओं और शक्तियोंका नाश कर देगी।

यह श्रेष्ठ और सुन्दर मानसिक मन्दिर हमें इसलिए नहीं दिया गया है कि हम इसमें तुच्छ, नीच और बुरे विचार भरते रहें। यह तो देवताओंका निवासस्थान है, इसमें केवल उच्च विचार तथा कमनीय कामनाएँ ही रहनी चाहिएँ।

यदि हम तुच्छ और निन्दनीय विचारोंके सामने अपने देव भावको दब जाने दें, तो यह हमारे लिए बहुत ही लज्जाकी बात है। मनको सदा अप्रिय और दुःखद विचारोंसे भरा रखना भी उतना ही बुरा है जितना कि चोरी आदि दुष्कर्म करना। जब मनुष्यको अपने आपका और अपनी योग्यताका पूरा पूरा ज्ञान हो जाता है और वह अपने बल तथा सामर्थ्य आदिसे भली भाँति परिचित हो जाता है, तब वह अपने उन मानसिक शत्रुओंको कभी अपने पास भी नहीं फटकने देता जो साधारण अवस्थाओंमें जन्मसे मृत्यु तक उसके पीछे लगे रहते हैं और उसे कुछ भी काम नहीं करने देते। मनुष्य सदा सौन्दर्य, सत्यता, प्रेम, प्रसन्नता और पूर्णता प्रकट करनेके लिए बनाया गया है, इनके विपरीत भाव प्रकट करनेके लिए नहीं।

जो व्यक्ति अपने मनसे अप्रिय और निरर्थक बातें सदाके लिए निकालकर बाहर नहीं फेंक सकता, वह कभी ठीक ढंगसे और अच्छी तरह जीवन व्यतीत करना नहीं जानता। अप्रिय और निरर्थक विचार ही हमारी उन्नतिमें बाधक होते हैं और हमें कभी सुखी तथा प्रसन्न नहीं रहने देते। चाहे हमसे कितनी ही बड़ी भूल या अपराध क्यों न हुआ हो, हमें उसे सदाके लिए भूल जाना चाहिए। कभी गड़े हुए मुरदोंको उखाड़ते नहीं रहना चाहिए, कभी बीती हुई बातोंका सोच नहीं करना चाहिए। यदि हमें याद ही रखना हो तो वह शिक्षा याद रखनी चाहिए जो हमें उस भूल या अपराधके कारण प्राप्त होती है। यदि हमसे कोई भारी भूल हो जाय, तो उससे हमें एक ही लाभ उठाना चाहिए और वह लाभ यह है कि हम उससे शिक्षा प्राप्त करते हुए और आगे बढ़ें। अपनी हानियों, दोषों और विफलताओंके लिए कुढ़ने और चिन्तित रहनेका कभी कोई शुभ परिणाम हो ही नहीं सकता।

इसलिए अप्रिय विचार या अनुभवसे सदा अपना पीछा छुड़ाना चाहिए और जिस प्रकार हम किसी चोर या बदमाशको अपने घरसे निकाल देते हैं, उसी प्रकार इन दुष्ट विचारोंको भी निकाल देना चाहिए। जो बातें हमारी शान्ति तथा सुखकी शत्रु हों, उन बातोंको कभी अपने मनमें स्थान नहीं देना चाहिए।

यदि तुम्हारे मनमें दूसरोंके प्रति किसी प्रकारके तुच्छ या बुरे भाव हों, यदि तुम्हारे मनमें किसीसे बदला चुकानेका भाव हो, यदि तुम किसीके साथ ईर्ष्या दोष या घृणा रखते हो, तो इन नाशक विचारोंको अभी और सदाके लिए अपने मनसे निकाल बाहर करो। अपने आपसे कहो कि मनमें इस प्रकारके दूषित और निकृष्ट विचार रखना मनुष्यत्व नहीं है, पशुत्व है। इस प्रकारके भाव नीच मनुष्योंके योग्य हैं और उन्हींको शोभा देते हैं। जो मनुष्य संसारमें प्रतिष्ठापूर्वक रहना और कोई अच्छा काम कर दिखलाना चाहता हो, उसके लिए ये विचार कभी उपयुक्त नहीं हैं।

यदि जूतेमें कोई काँटा निकल आवे तो वह चलनेमें तबतक कष्ट देता रहता है जबतक वह निकाल न दिया जाय। इसी प्रकार यदि मनमें ईर्ष्या, क्रोध, दुःख, चिन्ता या इसी प्रकारका और कोई दूषित विचार हो तो वह तबतक हमें कष्ट देता रहता है जबतक हम उसे निकाल बाहर न करें। हम बिना अपनी भारी मानसिक तथा शारीरिक हानि किए किसीके साथ ईर्ष्या, द्वेष या घृणा आदि कर ही नहीं सकते। इस प्रकारके दूषित विचार हमारी वृत्तियोंको बहुत ही कठोर कर देते हैं और हमें पशुके तुल्य बना देते हैं। परन्तु यदि हम अपने मनमें कृपा और प्रेमका भाव रक्खें, उदारतापूर्वक दूसरोंकी सहायता किया करें, सबके साथ सद्व्यवहार रक्खें, तो हमारा जीवन उन्नत होता है,

चरित्र सुन्दर होता है और प्रवृत्ति श्रेष्ठ होती है। हमारे जीवनपर हमारी मानसिक प्रवृत्तिसे ही रंग चढ़ता है। हम उसीके अनुसार अच्छे या बुरे बनते हैं। हमारे जैसे आदर्श होते हैं वैसे ही हम स्वयं भी होते हैं। जो लोग श्रेष्ठ और सज्जन होते हैं, वे कभी दूसरोंको तुच्छ और घृणित नहीं समझते। ऐसे लोग न तो दूसरोंके आचरणोंकी आलोचना करते हैं, न उनके उद्देश्यों या विचारों आदिमें शंकाएँ करते हैं और न कभी उन्हें नीच या स्वार्थी समझते हैं। दूसरोंके सम्बन्धमें व्यर्थ बुरे भाव रखनेका परिणाम यह होता है कि मस्तिष्कमें एक प्रकारका विष उत्पन्न हो जाता है, जो हमें सदा पीड़ित रखता है, हमें शान्त नहीं रहने देता और हमारा चरित्र नष्ट कर देता है। सदा बुरी और अप्रिय बातोंका ध्यान रखनेसे शक्ति और योग्यता क्षीण होने लगती है और आदमी कोई अच्छा काम करनेके योग्य नहीं रह जाता। इसलिए ऐसी बातोंको सदाके लिए मनसे निकाल देना ही हमारे लिए सबसे अच्छा है।

हमें सदा और सब बातोंका विचार छोड़कर अपनी उन्नतिकी ओर ध्यान रखना चाहिए और अपना चरित्रबल बढ़ानेका प्रयत्न करना चाहिए। हमारे साथ जितनी व्यर्थ और हानिकारक बातें लगी हों और जो हमारी उन्नतिमें बाधक हों उनसे हमें सदा बचना चाहिए। हमें अपनी सारी शक्ति अपनी उन्नति और सुधारमें लगानी चाहिए। मूल और मुख्य बातको छोड़कर निरर्थक और तुच्छ बातोंकी ओर ध्यान देना और इस प्रकार अपनी भारी हानि करना बड़ी भारी मूर्खता है।

हमें अपना हृदय सदा विशाल, उदार और सहानुभूतिपूर्ण रखना चाहिए। यदि कभी किसीने हमारा कोई अपराध किया हो या हमें कोई हानि पहुँचाई हो तो हमें उचित है कि हम उसे सदाके लिए भूल जायँ और कभी उसका ध्यान भी न करें और न किसीके साथ कोई द्वेष

या वैर रक्खें। हमें अपने मनमें सदा यही समझना चाहिए कि अधिकांश लोगोंका हृदय दयापूर्ण होता है और वे कभी किसीको जान बूझकर कोई हानि नहीं पहुँचाते। हमें सदा लोगोंके सामने अपना उदारतापूर्ण पार्श्व उपस्थित करना चाहिए। लोग हमारे सम्बन्धमें जो चाहे कहें और जो चाहें करें, पर हमें सदा प्रसन्न रहना चाहिए और सबके साथ दया तथा सहानुभूतिका व्यवहार करना चाहिए। इस प्रकारके व्यवहारका आपके लिए जो शुभ परिणाम होगा वह तो होगा ही, साथ ही उन लोगोंपर और भी अधिक उत्तम प्रभाव होगा जिनके साथ आप इस प्रकारका व्यवहार करेंगे। इससे आपके परम शत्रुओंके चरित्र और व्यवहार आदिमें बहुत ही शुभ परिवर्तन होगा और वे आपके परम अनुगृहीत तथा मित्र बन जायँगे। परन्तु यदि आप दूसरोंसे बदला लेनेकी चिन्तामें रहेंगे या उन्हें हानि पहुँचावेंगे, तो आपका भी पतन होगा और उन लोगोंका भी जिनसे आप बदला चुकावेंगे। सब लोग उसी व्यक्तिके साथ प्रेम करते हैं और उसीकी प्रशंसा करते हैं, जो सब लोगोंके साथ हँसी खुशीसे मिलता है, सबके साथ प्रेम और दयाका व्यवहार करता है और सबकी भलाई करके उन्हें उन्नत करना चाहता है।

यदि कभी किसीने हमारे साथ कोई अनुचित व्यवहार किया हो, तो हम उसे क्यों स्मरण रक्खें? यदि हम ऐसी बातोंको विस्मृत करके घृणाके स्थानपर प्रेम करने लगें, निन्दाके स्थानपर प्रशंसा करने लगें, हानि पहुँचानेके स्थानमें सहायता देने लगें, तो उसका परिणाम हमारे लिए भी और दूसरोंके लिए भी कितना शुभ होगा। भलाईसे सदा बुराईका नाश होता है, उच्चके सामने नीच नहीं ठहर सकता। बुराईसे भलाई कहीं अच्छी और बढ़कर है।

एक स्त्री थी जिसे अनेक प्रकारके कष्ट भोगने पड़े थे और अनेक प्रकारकी पीड़ाएँ सहनी पड़ी थीं। उसने स्वयं अपने अनुभवसे एक अवसरपर कहा था—" अन्तमें मुझे निश्चय करना पड़ा कि अपने दुःखोंके कारण कभी औरोंको दुखी नहीं करूँगी। ऐसे अवसरोंपर भी जब कि मुझे बहुत रोना आता था मैं अपने आपको सँभालकर हँसा करती थी और लोगोंके साथ परिहास किया करती थी। जब कभी मुझपर कोई विपत्ति आती थी तब मैं हँसती थी। जो कोई मेरे पास आता था वह मेरे सामनेसे हँसता हुआ और अच्छे विचार लेकर जाता था। परिणाम यह हुआ कि आनन्दसे आनन्दकी उत्पत्ति हुई। यदि मैं अपने भाग्यको बैठी बैठी रोया करती तो मुझे वह प्रसन्नता कभी प्राप्त न होती जो इस समय प्रसन्न रहनेके कारण प्राप्त है।"

कभी कभी ऐसा होता है कि विफलता, हानि, अपमान या कष्ट आदिके कारण कोई व्यक्ति बहुत ही दुखी, निरुत्साह और खिन्न हो जाता है और अपना कर्तव्य छोड़ बैठता है। उस समय यदि कोई प्रसन्नचित्त व्यक्ति आकर उसे प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता है तो वह अपने सारे कष्ट भूल जाता है और फिर नए उत्साहसे अपने काममें लग जाता है। थोड़ी ही देरमें उसकी सब परिस्थितियाँ बिलकुल बदल जाती हैं और उसकी सारी कठिनाइयाँ, सारे कष्ट दूर हो जाते हैं। ऐसा क्यों होता है इसी लिए कि एक उच्च भावके सामने नीच या तुच्छ भाव नहीं ठहर सकता। उच्च भाव आकर उस नीच भावको निकाल बाहर करता है। यदि हम उच्च भावोंकी इस शक्तिसे भली भाँति परिचित हो जायँ, तो फिर कभी हमारे लिए दुखी, खिन्न या चिन्तित होनेका कोई कारण ही न रह जाय और हम सब प्रकारके दुःखों और चिन्ताओंको मनमें उनके विपरीत और उच्च भाव लाकर निकाल बाहर करें। यही प्रसन्न और सुखी रहनेका सबसे अच्छा उपाय है।

जो बातें हमें दुखी और चिन्तित रखती हैं, उन्हें यदि हम आरम्भमें ही विस्मृत कर दें, तो हमारे चित्तपर कभी उनका कोई स्थायी प्रभाव हो ही नहीं सकता। हम तभी उनके वशमें होते हैं जब कि हम उन्हें स्मरण रखते हैं। उन्हें अपने मनमें स्थान देने, बार बार उनका ध्यान करनेसे ही वे हमारे मनमें डेरा डाले रहते हैं और सदा काँटोंकी तरह चुभते रहते हैं। इस प्रकारकी बातोंसे पीछा छुड़ानेका सबसे अच्छा उपाय यही है कि हम अपना मन सत्यसे पूर्ण रक्खें और कभी सत्पथसे विचलित न हों। जब हमारे सब काम सत्यतासे युक्त होंगे, जब हमारा विवेक शुद्ध होगा, तब संसारकी कोई बात हमें दुखी, चिन्तित या खिन्न न कर सकेगी। जो लोग सदा सुखी रहना चाहते हों, उन्हें सबसे पहले सत्यका अनुसरण करना चाहिए।

१९—जैसी करनी वैसी भरनी

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्मसूत्रैर्ग्रथितो हि लोकः॥

यह बात तो संसारके सभी लोग बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि जमीनमें जो चीज बोई जायगी वही पैदा होगी। यदि हम जौ बोएँगे तो जौ उत्पन्न होगा और गेहूँ बोएँगे तो गेहूँ उत्पन्न होगा। यदि हम इमलीका पेड़ लगावें तो उसमें आम फलनेकी आशा नहीं कर सकते और यदि बबूल बोएँ तो उससे गुलाबके फूल प्राप्त करनेकी आशा नहीं कर सकते। लेकिन आश्चर्य तो इस बातका है कि इतना सब कुछ बहुत अच्छी तरह जानते हुए भी जब नित्य प्रतिके व्यवहारोंसे काम पड़ता है अथवा जब मानसिक क्षेत्रमें कुछ बोने और उसके फल प्राप्त करनेकी अवस्था आती है, तब हम लोग यह सीधा सादा सिद्धान्त, प्रकृतिका यह दृढ और स्थायी नियम, बिलकुल भूल जाते हैं।

यदि हम बरसों तक अपने मस्तिष्कमें दुःख और असन्तोषके बीज बोते रहे हों, तो किस सिद्धान्तपर हम सुखी और सन्तुष्ट होनेकी आशा कर सकते हैं? यदि हम बराबर रोगके ही बीज बोते रहे हों, तो हम किस प्रकार स्वस्थ रहनेकी आशा करते हैं?

यदि कोई खेतिहर अपने खेतमें बोए तो जौ और आशा रक्खे गेहूँकी तो क्या हम उसे पागल न कहेंगे? परन्तु हम बीज तो बोते हैं भयका, चिन्ताका, सन्देहका और फिर भी जब हमें शान्ति नहीं मिलती तब हम चकित होते हैं। परन्तु हमें अपने मनमें यह बात बहुत अच्छी तरह समझ रखनी चाहिए कि खेतोंकी बोआई और उपजकी ही भाँति

हमारे विचारोंकी भी उपज या सृष्टि होती है। हमारे विचार भी बीज और फलके ही रूपमें होते हैं। जैसा बीज होता है वैसी ही फसल भी होती है। जो व्यक्ति जिस प्रकारके बीज बोता है उसके सामने उसी प्रकारकी विचारोंकी फसल आती है। अपने विचारोंके अनुसार ही वह फसल या तो भारी होती है या हलकी और अच्छी होती है या खराब।

जो व्यक्ति विफलताके विचार वपन करता है, वह ठीक उसी प्रकार सफलताकी फसलकी आशा नहीं कर सकता, जिस प्रकार कोई कृषक नागफनी बोकर गेहूँकी फसलकी आशा नहीं कर सकता। जो व्यक्ति सदा आशा, स्वास्थ्य, शुद्धता, सत्यता और सम्पन्नताके विचार वपन करता है उसके लिए इन्हीं सब चीजोंकी फसल भी तयार होती है। परन्तु जो व्यक्ति इनके विपरीत विचारोंका वपन करता है वह उसी प्रकारके फल भी प्राप्त करता है। अच्छे विचारों और अच्छी आशाओंका फल भी बहुत अच्छा होता है। इसके विपरीत बुरे विचार और कदा-शाएँ उन्नतिमें बाधक होती हैं और अच्छे फलोंका नाश कर देती हैं।

यदि हम यह बात अच्छी तरह समझ लें कि संसारके अन्य सब प्रकारके नियमोंकी भाँति हमारे मानसिक नियम भी बिलकुल वैज्ञानिक हैं तो हमारे जीवनकी बहुतसी समस्याओं और कठिनाइयोंका आपसे आप अन्त हो जाय। हमारे मस्तिष्कमें उत्पन्न होनेवाला प्रत्येक विचार एक बीजका काम करता है और अपने ही रूपकी फसल उत्पन्न करता है। वह फूल भी हो सकता है और काँटा भी, घास भी हो सकता है और गेहूँ भी। हम अपने मस्तिष्कमें जिस प्रकारके बीज वपन करते हैं, उसी प्रकारके फलोंसे युक्त हमारा आचरण और जीवन होता है। अगर हम हवा बोएँगे तो अवश्य ही अन्धड़का सामना करना पड़ेगा।

यदि हम सम्पन्नताके बीज वपन करेंगे तो हम सम्पन्न तथा सुखी होंगे। यदि हम तुच्छ और दुष्ट विचारोंके बीज वपन करेंगे तो हम दुखी तथा चिन्तित रहेंगे। मतलब यह कि हमारे विचार बीज हैं और हमारा जीवन फसल है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें देखते ही लोग समझ जाते हैं कि ये स्वार्थी, दुष्ट, नीच या वाहियांत आदमी हैं। ऐसा क्यों होता है? इसी लिए कि उनके विचारोंकी ही छाया उनकी आकृतिमें दिखलाई देती है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी आकृतिसे ही शान्ति, गम्भीरता और पवित्रता टपकी पड़ती है। ऐसे लोगोंको देखते ही हम समझ लेते हैं कि इनके विचार बहुत ही पवित्र और उन्नत हैं। मतलब यह कि सारे संसारमें यह नियम पूर्ण रूपसे देखनेमें आता है कि जो चीज जैसी होती है उससे ठीक वैसी ही चीज उत्पन्न होती है।

यदि कोई आदमी चाकू लेकर अपने ही शरीरमेंसे माँसके टुकड़े काटने लगे, तो वह पागल समझा जायगा और पागलखाने भेज दिया जायगा। परन्तु आजकल संसारमें समझदार कहलानेवाले लोग ऐसे ही होते हैं जो घृणा, द्वेष, ईर्ष्या और क्रोध आदिके नुकीले और तेज धार-वाले विचारोंसे दिन रात अपने मस्तिष्कके अंग प्रत्यंग काटा करते हैं और फिर भी अपने आपको समझदार ही समझते रहते हैं। हम अपने मस्तिष्कमें उत्पन्न तो करते हैं विषपूर्ण विचार और फिर जब उनके फल भी विषपूर्ण लगते हैं, तब बहुत घबराते और दुखी होते हैं और अपने भाग्य, समाज, समय या परमेश्वर आदिको दोषी ठहराने लगते हैं।

यदि हम अपने आपको अपनी कामनाओं और इच्छाओंके हाथ बेच देंगे तो उसका फल भी हमारे लिए वैसा ही होगा। जो व्यक्ति सदा स्वार्थपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं, जो लेना ही लेना जानते हैं देनेका नाम भी नहीं जानते, उनका जीवनपथ यदि बुरी तरहसे कंटकाकीर्ण हो तो

इसमें उन्हें किसी प्रकारका आश्चर्य न होना चाहिए। हम जो कुछ बोते हैं, वहीं पाते हैं और जो कुछ देते हैं वहीं हमें मिलता है। बात यह है कि हम लेना तो बहुत कुछ चाहते हैं, पर उसका मूल्य कुछ भी नहीं देना चाहते और कोई चीज बिना पूरा पूरा मूल्य चुकाए मिल नहीं सकती। प्रकृतिकी दूकानमें सब चीजें नगद ही बिका करती हैं, उधारका वहाँ काम नहीं है। हम जिस चीजका जितना ही दाम देते हैं वह हमें उतनी ही मात्रामें मिलती है। यदि हम दाम दें कम, या बिलकुल ही न दें और चीज चाहें ज्यादा, तो हमें स्वभावतः निराश होना पड़ेगा। पर इसके लिए हमें किसी दूसरेकी शिकायत नहीं करनी चाहिए। हम जो कुछ लेना चाहते हों उसके लिए या तो हमें पूरा पूरा दाम देना चाहिए और या चुपचाप बैठना चाहिए।

अब वह समय आ रहा है जब कि लोग यह बात अच्छी तरह समझने लग जायँगे कि सफलता और सम्पन्नताकी फसल प्राप्त करनेके लिए विफलता और दरिद्रताके बीज बोनेसे काम न चलेगा। उस समय लोग वही बोएँगे जिसकी फसल वह चाहते होंगे। यदि वे सुख सौन्दर्य और प्रेमकी फसल उत्पन्न करना चाहेंगे, तो दया सहानुभूति और सद्व्यवहारके बीज बोएँगे। क्योंकि वे इस बातसे भली भाँति अवगत होंगे कि यदि हम ईर्ष्या, द्वेष और घृणा आदिके बीज बोएँगे तो हमारे लिए इसके फल भी इसी प्रकारके उत्पन्न होंगे।

अब वह समय आ रहा है जब कि सब लोग पूर्ण वैज्ञानिक रीतिसे जीवन व्यतीत करेंगे। वे समझ लेंगे कि जीवनमें सुख, शान्ति और सामर्थ्य प्राप्त करनेका एक ही उपाय है और वह यह कि मस्तिष्क क्षेत्रमें विचार रूपमें इसी प्रकारके बीज बोए जायँ। उस समय सब लोगोंको विचाररूपी

बीजों और फसलोंका भी ठीक उतना ही अच्छा और ठीक ठीक ज्ञान होगा जितना आजकल साधारण कृषकोंको अन्नके बीजों और फसलोंका होता है।

हमारा शरीर हमारे मनकी प्रतिच्छाया मात्र है, वह इसके सिवा और कुछ नहीं है। यदि मनुष्यके मनमें सुन्दर और प्रेमपूर्ण विचार हों, तो अवश्य ही उसका शरीर और आकृति भी ठीक इन्हीं भावोंके अनुसार होगी। मनमें निरन्तर एक प्रकारका विचार रखनेसे हमारे शरीरका संघटन भी ठीक वैसा ही हो जाता है। यदि कोई चोर कहीं जाकर चोरी करता है, तो उसे समझ रखना चाहिए कि वह केवल दूसरोंकी ही हानि नहीं करता है बल्कि स्वयं अपनी भी बहुत बड़ी हानि करता है। वह जिसके यहाँ चोरी करता है, उसे तो थोड़ी बहुत अड़चनमें ही डालकर छोड़ देता है पर स्वयं अपने आपपर वह एक बहुत ही जहरीले हथियारसे आघात करता है। हमारे शरीरका संघटन ही ऐसा है कि हम बिना अपनी बहुत बड़ी हानि किए दूसरोंकी छोटी मोटी हानि भी नहीं कर सकते। यदि हम अपना भला चाहते हों, तो हमें अवश्य ही दूसरोंका भी भला करना चाहिए। हम बिना अपने आपको चोट पहुँचाए अपने पड़ोसीको एक थप्पड़ भी नहीं मार सकते। अपकारका सबसे बड़ा फल तो स्वयं अपकार करनेवालेको ही मिलता है; परन्तु जिसके साथ वह अपकार किया जाता है उसे तो यों ही थोड़ा बहुत फल मिलकर रह जाता है। यदि हम किसी अपकार करनेवालेका विरोध करते हैं और बदलेमें उसके साथ वैसा ही अपकार करना चाहते हैं, तो मानो अपनी शक्तिका नाश करते हुए संसारमें दोषों, अपराधों और बुराइयोंकी वृद्धि करते हैं। परन्तु यदि हम अपने शत्रुके साथ भी प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं, तो स्वयं बलवान् बननेके अतिरिक्त उस शत्रुको सदाचारी बनाते और उन्नत करते हैं।

छोटा बच्चा किसी अंगारेपर हाथ रख देता है और जब वह अंगारा उसका हाथ जला देता है तो उसे सदाके लिए यह शिक्षा मिल जाती है कि आगको नहीं छूना चाहिए—इसे छूनेसे शरीर जल जाता है। अज्ञानके कारण अभी हम लोगोंकी दशा भी बच्चोंकीसी ही है। जब बार बार घृणा, ईर्ष्या, द्वेष आदि करनेपर हमें भली भाँति यह विदित हो जायगा कि सब प्रकारके दुष्ट विचारोंका स्वयं हमारे लिए ही बहुत बुरा परिणाम होता है, तब हम भी उन विचारोंसे उसी प्रकार दूर भागने लगेंगे जिस प्रकार हाथ जलनेके बाद बच्चा आगसे बचता है। बदला चुकानेवाला सौदा हमेशा बहुत ही महँगा पड़ता है; इतना महंगा पड़ता है कि कभी कोई समझदार आदमी वह सौदा करना पसन्द नहीं करेगा।

चाहे इस समय हम अपनी वर्तमान अवस्थासे सन्तुष्ट न हों, परन्तु वह वास्तवमें हमारी ही पहलेकी करनीका फल है। हमारे सामने नित्य जैसी करनी वैसी भरनीका प्रमाण आता रहता है। जो कुछ हमने कल किया है उसीका फल हमें आज भोगना पड़ता है। इसलिए अपनी वर्तमान अवस्थासे दुखी होना अपनी मूर्खताके प्रमाणके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यदि आज दिन हमारी अवस्था अच्छी नहीं है, तो हमें समझ लेना चाहिए कि यह हमारी कलकी करनीका ही फल है जो आज हमें मिल रहा है। और यदि हम यह चाहते हों कि कल फिर हमें इस दुर्दशाका सामना न करना पड़े तो हमें आजसे ही अपने आपको सुधारना चाहिए और कोई ऐसा काम न करना चाहिए जिसके लिए फिर कल हमें पश्चात्ताप करना पड़े। हमें बीज बोनेके समय ही होशियार रहना चाहिए। जब बीज बो चुके हों और फसल काटनेकी बारी आवे, उस समय रोना मूर्खता नहीं तो और क्या है? हमारे मनमें उत्पन्न होनेवाला प्रत्येक विचार एक ऐसा बीज है जो ठीक अपने अनुरूप फल उत्पन्न करता है। बहुतसे लोग अपनी

फसलमें काँटे और रद्दी घास पात देखकर बहुत घबराते और दुखी होते हैं। परन्तु यदि वे अपने जीवनक्रमपर भली भाँति विचार करें, यदि वे अपने कार्यों और विचारों आदिका विश्लेषण करें, तो उन्हें शीघ्र ही ज्ञात हो जायगा कि जो फल उनके सामने आए हैं वे स्वयं उन्हींके बोए हुए हैं। यदि वे ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, स्वार्थ आदिके दुष्ट बीज न बोते, तो उन्हें कभी इस प्रकारके कड़वे और जहरीले फल न मिलते। और जब उन्हें यह बात अच्छी तरह मालूम हो जाय तो कमसे कम भविष्यके लिए उन्हें यह दृढ निश्चय कर लेना चाहिए कि अब हम सदा परोपकार, दया, सहानुभूति, आनन्द और प्रेमके वही बीज बोएँगे जिनके फलोंसें हम स्वयं भी सुखी हो सकेंगे और दूसरोंको भी सुखी कर सकेंगे।

वह समय दूर नहीं है जब कि लोग निर्दयता, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, स्वार्थपरता आदि दूषित विचारोंको मनमें स्थान देनेसे उतना ही डरेंगे जितना कि आजकल वे जलती हुई आगमें हाथ डालनेसे डरते हैं। हमारी भावी सन्तान कभी अपने मनमें किसी प्रकारके बुरे भाव न आने देगी। वह ईर्ष्या, द्वेष और घृणा आदिके घातक अस्त्रोंसे कभी आत्मघात न करेगी और दुष्ट विचारोंसे सदा बहुत ही भयभीत रहा करेगी, क्योंकि उस समय वह यह बात बहुत अच्छी तरह समझ लेगी कि मनुष्यका सर्वस्व नष्ट करनेके लिए दुष्ट विचार भी उतने ही समर्थ हैं जितनी समर्थ अग्नि है। परमात्मा करे ऐसा ही हो।

समाप्त.